8

महामहोपाध्यायपण्डितप्रवरगोविन्दठक्कुरविरचितः

पूजाप्रदीपः

एम० ए०, पी० एच० डी०, डी० लिट्, आचार्याद्युपाध्यलङ्कृतेन
श्री श्रीधरत्रिपाठिना
सम्पादितः

मिथिलाविद्यापीठप्रधानेन श्रीधरत्रिपाठिना प्रकाशितः

शकाब्द : 1910 संवत् 2045 ऐशवीयाब्द : 1988

मिथिलाविद्यापीठग्रन्थमाला

प्राचीनग्रन्थावली

द्वात्रिंशत्तमं पुष्पम्

Mithila Institute Series　　　　Ancient Texts No. 32

PŪJĀ PRADĪPA

of

M. M. GOVINDA THĀKURA

Edited by

Dr. Shridhar Tripathi M.A., Ph. D. D., Litt.

Vyākaraṇa Vedāntāchārya, Purāṇa Shāstrī, Dip-in-Ed.

Published by

Dr, Shridhar Tripathi

Director

Mithila Research Institute, Darbhanga.

1988

Copies of this volume can be had of the Director, Mithila Institute of Post-Graduate Studies and Research in Sanskrit Learning, Maheshanagar, Darbhanga on payment of Rs. 85.50 by M. O. or Postal Order or Cash.

First Edition—500

Printed by Shree Lakshmi Press, Muzaffarpur and published by Dr Shridhar Tripathi, Director, Mithila Institute of Post-Graduate Studies and Research in Sanskrit Learning, Darbhanga.

THE GOVERNMENT OF BIHAR established the *Mithila Institute* of Post-Graduate Studies and Research in Sanskrit Learning at Darbhanga in 1951 with the object, *inter-alia*, to promote advanced studies and research in Sanskrit learning, to bring together the traditional pandits with their profound learning and the modern scholars with their technique of research and investigations, to publish works of permanent value to scholars. This Institute is one of the five others planned by this Government as a token of their homage to the tradition of learning and scholarship for which ancient Bihar was noted. Apart from the Mithila Institute, three others have been established and have been doing useful work during the last three or four years—Nalanda Institute of Research and Post-Graduate Studies in Buddhist Learning and Pali at Nalanda, K. P. Jayaswal Research Institute at Patna, and the Bihar Rashtra Bhasha Parishad for research and advanced studies in Hindi at Patna. In the establishment of the Mithila Institute the State Government received a generous donation from the Maharajadhiraja of Darbhanga for construction of the building on a plot of land also donated by him.

As part of this programme of rehabilitating and re-orientation of ancient learning and scholarship, the editing and publication of this volume has been undertaken with co-operation of scholars in Bihar and outside. The Government of Bihar hope to continue to sponsor such projects and trust that this humble service to the world of scholarship and learning would bear fruit in the fulness of time.

विषय-सूची

क्रमसंख्या	विषय का नाम	पृष्ठसंख्या
	आमुख—	क — घ
१.	प्रमाणपरिच्छेद—	१ — ४४
२.	सामान्यपूजापरिच्छेद—	४५ — ६३
३.	सरस्वतीपूजापरिच्छेद—	६४ — ७६
४.	श्रीमन्त्रपूजापरिच्छेद—	७७ — ८६
५.	भुवनेश्वरीपूजापरिच्छेद—	८७ — ९२
६.	त्वरितात्रिपुरान्नपूर्णापूजापरिच्छेद—	९३ — ९६
७.	दुर्गापूजापरिच्छेद—	९७ —१०३
८.	त्रिपुरापूजापरिच्छेद—	१०४—१०८
९.	गणेशपूजापरिच्छेद—	१०९—१२२
१०.	सोमपूजापरिच्छेद—	१२३—१२४
११.	सूर्यपरमात्मपूजापरिच्छेद—	१२५—१३०
१२.	अग्निपूजापरिच्छेद—	१३१—१३४
१३.	शिवपूजापरिच्छेद—	१३५—१५०
१४.	चण्डेशपूजापरिच्छेद—	१५१—१५२
१५.	गायत्रीपूजापरिच्छेद—	१५३—१५७
१६.	विष्णुपूजापरिच्छेद—	१५८—२१२

आमुख

महामहोपाध्याय गोविन्द ठाकुर की अमर कीर्ति प्रस्तुत पूजाप्रदीप वेद के अङ्गभूत कल्पसंज्ञक वेदाङ्ग की परम्परा में एक प्रामाणिक पुस्तक मानी जा सकती है। वेदाङ्गों में कल्पहस्त के रूप में मान्यता प्राप्त अङ्ग है "कल्पः हस्तोऽथ पठ्यते" (पा० शि०) कल्पग्रन्थों में इतिकर्त्तव्यता का निर्देश किया गया है। ब्राह्मणग्रन्थों के आधार पर श्रौतकर्मों के प्रतिपादन के लिए श्रौतसूत्रों तथा स्मार्त्तगृह्यकर्मों के लिए गृह्यसूत्रों की रचना हुई जिनसे श्रुति-स्मृतिसम्मत यज्ञों एवं संस्कारकर्मों का सम्पादन अनादिकाल से होता आ रहा है। उन्हें भारतीय संस्कृति का मूल कह सकते हैं। वेद की अनेक शाखाएं हैं जिनके आधार पर सूत्रग्रन्थ भी अनेक हैं। ग्रन्थों की विविधता के कारण कल्पसंज्ञक वेदाङ्ग भी विपुलकाय विराजता है। पुराणों में भी विविध कृत्यों की इतिकर्त्तव्यता का निर्देश किया गया है। उनके अतिरिक्त आगम ग्रन्थों में भी विविध कृत्यों का निर्देश उपलब्ध होता है। वे ग्रन्थ मूल रूप से संहिता के रूप में विद्यमान हैं। महाकाल संहिता, शिव संहिता आदि संहिताग्रन्थों की विशेष प्रामाणिकता है। तन्त्रग्रन्थों का उद्भव उन आगम संहिताओं से माना जाता है। उनसे भी विविध उपासनाओं एवं अनुष्ठानों की इतिकर्त्तव्यता का निर्देश प्राप्त होता है। अतः श्रौत, स्मार्त्त, पौराणिक तथा तान्त्रिक पावन धाराओं से कर्ममार्ग प्रशस्त होता हुआ कर्मों के अनुष्ठाताओं की सिद्धि एवं सफलता में प्रधान हेतु बनता है। नित्य नैमित्तिक एवं काम्य भेदों से त्रिविध कर्मों के सम्पादन के लिए उनके ही आधार पर चार पद्धतियाँ प्रचलित हैं यथा—श्रौतपद्धति, स्मार्त्तपद्धति, पौराणिक-पद्धति और तान्त्रिक-पद्धति। अधिकारी भेद से भिन्न-भिन्न पद्धतियों से कर्मसम्पादन की प्रक्रिया चलती रहती है।

पूजाप्रदीप एक तान्त्रिक पद्धति है। तन्त्रग्रन्थों के अनुसार इसमें पूजा की पद्धति बतायी गयी है। तन्त्र के अनुसार अन्तःपूजा तथा वाह्यपूजा का विधान है। अन्तः पूजा भावनात्मक होती है जबकि वाह्यपूजा द्रव्यात्मक होती है। अतः प्रथमतः उनकी शुद्धि का विधान किया जाता है। "वहाँ देवो

भूत्वा देवं यजेत" का सिद्धान्त मान्य है। अतः शरीर में मन्त्रात्मक देवों के न्यास की तन्त्रों में प्रधानता बतायी गयी है। तान्त्रिक पद्धतियों में न्यासकर्म का मुख्य रूप से विधान किया जाता है। पूजा के क्रम का तीन रूपों में आश्रयण किया जाता है। "सृष्टि होती है, उसकी स्थिति रहती है और अन्त में संहार होता है" यही धारा सदा चलती रहती है। उसको ही प्रतीक मानकर तान्त्रिक पद्धतियों में भी कर्मों का प्रतिपादन सृष्टिक्रम, स्थितिक्रम एवं संहारक्रम से किया जाता है। आगमग्रन्थों में सूक्ष्म तत्त्व की मान्यता है। मन्त्रों के सूक्ष्म भाग का बीजमन्त्र के रूप में प्रतिपादन किया जाता है। वे प्रायः अक्षरात्मक होते हैं। आचारों की प्रमुखता है, उनके आधार पर ही मालाओं की रचना बतायी गयी है। उन ग्रन्थों में मुद्राओं का भी एक अपना महत्त्व बताया गया है। कहा गया है कि उनसे देवता प्रसन्न होते हैं। इन सब विषयों का निर्देश पूजाप्रदीप में किया गया है। भेद के आधार पर ही तन्त्रग्रन्थों में गायत्री मन्त्र की भी प्रधानता मानी गयी है। उस मन्त्र का सविता देवता है, उसीके आधार पर सब देवों के गायत्रीमन्त्रों की व्यवस्था आगमग्रन्थों में की गयी है। विभिन्न देवों की गायत्रियाँ प्रस्तुत पूजाप्रदीप में बतायी गयी हैं। योग की प्रक्रिया के समान तन्त्रों में भी तान्त्रिक उपासना के क्रम में आसन एवं प्राणायाम की महत्ता प्रतिपादित है। पूजाप्रदीप में उनका सप्रमाण विवेचन प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक में बताये गये इस प्रकार के बहुत से कृत्य स्मार्त्त उपासकों के लिए भी उपयोगी हैं। इस ग्रन्थ के रचयिता महामहोपाध्याय श्री गोविन्द ठाकुर अपने कुलक्रम से एक साधक व्यक्ति थे। उन्होंने आचरणसिद्ध विविध कर्मों का क्रमदीपिका प्रभृति ग्रन्थों के आधार पर पूजाप्रदीप में प्रतिपादन किया है, जिससे अपने विषय की उत्तमपद्धति के रूप में यह ग्रन्थ अवस्थित है।

पूजाप्रदीप सोलह परिच्छेदों में विभक्त है। विभिन्न परिच्छेदों में भिन्न भिन्न देवताओं के पूजा का विधान किया गया है। यथा—

१. प्रमाणपरिच्छेद—इसमें प्रातः जागरण, स्नान और नित्यकृत्य के बाद सूर्यार्घ्य, तर्पण, द्वारपूजा एवं मण्डपप्रवेश की विधियाँ वर्णित हैं। तदनन्तर आसनशुद्धि, भूतशुद्धि, न्यास, प्रपञ्चयाग, ध्यान के बाद पूजा का क्रम, जप, मुद्रा आदि सामान्य विषयों का प्रतिपादन किया गया है।

२. सामान्यपूजापद्धतिपरिच्छेद—इसमें शय्यात्याग के समय से प्रारम्भ कर अन्तःपूजा और वाह्यपूजा के सम्बन्ध में चर्चा की गयी है। देवताओं के विभिन्न गायत्रीमन्त्रों का निर्देश किया गया है। आसनशुद्धि आदि की चर्चा के बाद द्विविध पूजा की विधि बतायी गई है।

३. सरस्वतीपूजापरिच्छेद—सरस्वती की पूजा का विशद वर्णन है।

४. श्रीमन्त्रपूजापरिच्छेद—श्रीपूजा का विधान और श्रीसूक्त का पाठ है।

५. भुवनेश्वरीपूजापरिच्छेद—भुवनेश्वरी देवी की पूजा का विधान है।

६. त्वरितात्रिपुरान्नपूर्णापूजापरिच्छेद—इसमें त्वरितादेवी, त्रिपुरा और अन्नपूर्णा नामक देवियों की पूजा का विधान वर्णित है।

७. दुर्गापूजापरिच्छेद— दुर्गापूजा का वर्णन है।

८. त्रिपुरापूजापरिच्छेद—इसमें त्रिपुरादेवी का पूजन विधान है।

९. गणेशपूजापरिच्छेद—गणेशपूजा का वर्णन है।

१०. सोमपूजापरिच्छेद—सोमपूजा की विधि वर्णित है।

११. सूर्यपरमात्मपूजापरिच्छेद—इसमें सूर्य एवं हंसपूजा की विधि वर्णित है।

१२. अग्निपूजापरिच्छेद—इसमें अग्नि की पूजा का वर्णन है।

१३. शिवपूजापरिच्छेद—यहाँ शिव-पूजा की विधि वर्णित है।

१४. चण्डेशपूजापरिच्छेद—इसमें चण्डेश्वर की पूजा का वर्णन है।

१५. गायत्रीपूजापरिच्छेद—इसमें गायत्री सम्बन्धी मन्त्र एवं पूजाविधि बतायी गयी है।

१६. विष्णुपूजापरिच्छेद—इस अन्तिम परिच्छेद में विष्णु, नारायण, गोपाल, रूक्मिणी आदि के सम्बन्ध में मन्त्र, ध्यान, पूजा आदि का वर्णन किया गया है।

इस ग्रन्थ के रचयिता महामहोपाध्याय श्रीगोविन्द ठाकुर थे, यह पूजाप्रदीप के प्रारम्भिक श्लोक से स्पष्ट है। ग्रन्थ का पांचवाँ श्लोक निम्नलिखित रूप में वर्तमान है।

श्रीमत्केशवतनयो गोविन्दस्तन्निदेशवशवर्त्ती।
प्रकटयति धर्मपदवीं पूजाकर्मप्रदीपेन ॥

इस श्लोक से यह भी स्पष्ट है कि इनके पिता का नाम केशव ठाकुर था। काव्यप्रदीप नामक ग्रन्थ भी उनकी ही कृति है। उसका आदिम श्लोक है—
"सोनो देव्याः प्रथमतनयः केशवस्यात्मजन्मा, श्रीगोविन्दः काव्यतत्त्वं व्यनक्ति।"
इस श्लोक से ज्ञात होता है कि इनकी माता सोनो देवी थी। इनके पितामह बुद्धिकर ठाकुर आगम के तत्त्ववेत्ता थे। प्रपितामह रविकर ठाकुर भी तन्त्र सिद्धान्तवेत्ता थे। पूजाप्रदीप के द्वितीय परिच्छेद का प्रथम श्लोक है—

"प्रपितामहसिद्धान्तसारवेत्तापितुर्मुखात्।
अथ पद्धतिमेतस्य गोविन्दो रचयत्ययम्॥"

इस वचन से इनके प्रपितामह की योग्यता व्यक्त होती है और श्रीठाकुर विद्वत्कुलप्रसूत थे यह सिद्ध होता है। महामहोपाध्याय श्री परमेश्वर झा जी के "मिथिला तत्त्वविमर्श एवं पञ्जीप्रबन्ध" में बताया गया है कि ये घोसौते नगवार मूल के श्रोत्रिय ब्राह्मण थे। न्याय एवं अलङ्कारशास्त्र के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् एवं हयग्रीवोपासक वैष्णव (सिद्धपुरुष) थे। श्री भवानन्द राय नामक सम्पन्न जमीन्दार का आश्रय इन्हें प्राप्त था। उनके ही निर्देश से उन्होंने इस पुस्तक की रचना की। श्री भवानन्द राय जैसोर (यशोहर) प्रदेशान्तर्गत भूर्शुट ग्राम निवासी थे, ऐसा मिथिला तत्त्वविमर्श के निर्माता का निश्चय है। उन्होंने लिखा है—"कविकुलभूषण श्रीचन्द्र झा उनका निवास सौरिया ग्राम बताते थे।" सुरगुणकुलोत्पन्न राजराजेन्द्रनारायण के साथ उनके सम्बन्ध का वे अनुमान करते थे, किन्तु कतिपय इतिहासग्रन्थों के आधार पर हमने, भूर्शुट ही उनका निवास था, यह निश्चय किया है। श्री गोविन्दठाकुर भटसिमरो ग्रामनिवासी थे। इनके पुत्र मधुसूदन ठाकुर ने न्याय चिन्तामणि की टीका, (पक्षधर मिश्र कृत) आलोक पर कण्टकोद्धार नामक टीका लिखी थी। उस ग्रन्थ की समाप्ति तिथि लक्ष्मण सम्वत् ४९१ फाल्गुन सप्तमी रविवार उसी ग्रन्थ में निर्दिष्ट है, जिसके आधार पर उससे पूर्व साठ वर्ष के लगभग इनका जन्मकाल माना जा सकता है। श्री ठाकुर के प्रयाणकाल के सम्बन्ध में एक श्लोक प्रसिद्ध है। उसके अनुसार लक्ष्मण सम्वत् ५१२ कार्तिक शुक्ल तृतीया को गङ्गातट पर उन्होंने शरीर त्याग किया था। उस सिद्ध एवं प्रसिद्ध विद्वान् द्वारा रचित पूजाप्रदीप बहुत उपयोगी तथा संग्रहणीय है। आशा है इसका प्रकाशन उपासकवृन्द एवं भारतीय संस्कृति के प्रेमियों के लिए शुभ सन्देश सिद्ध होगा।

श्रीधर त्रिपाठी
शरत् पूर्णिमा सन् १९८८ ई० मिथिला शोध संस्थान, दरभंगा।

ॐ नमो गोपीजनवल्लभाय --

इन्द्रादिप्रौढवृन्दारकरभसनमन्—
मौलिमन्दारतार—
स्रग्भारभ्राजिभृङ्गी दनुतनययशो—
राशिचन्द्राङ्कलेखा ।
तन्वङ्गीनेत्रभृङ्गीपटुनटनतटी—
भ्रूकुटिर्म्मीनकेतो—
रव्यादव्याजभव्यातनुरसुररिपो—
र्भव्यमव्याहतन्नः ॥ १ ॥

स्थेमानं स्थगयन् गतिं शिथिलयन्
मानं समुन्मूलयन्
व्याहारं स्खलयन् मतिम्मलिनयन्
न्मन्दाक्षमालोकयन् ।
गोपीभिर्मधुर्निर्विशेषमधिका—
नन्दं समास्वादितः
स्वान्ते सन्ततमस्तु मे यदुकुलो—
त्तंसीयवंशीरवः ॥ २ ॥

न श्लाघन्ते त्रिदशगुरवे यस्य विद्यां विदन्तो—
नासेवन्ते जलधितनयां येन दृष्टाः कृपार्द्रम् ।
नाकांक्षन्ते क्वचिदपि सुधां यस्य काव्यं पिबन्तः
सन्तः सोऽयं जयति जगति श्रीभवानन्दरायः ॥ ३ ॥

आहूतापि पदं ददाति न पुरो न प्रार्थितापीक्षते—
साकूतं परिभाषितापि बहुशः किञ्चिन्नचाभाषते ।
आश्लिष्टापि न सम्मुखानि रचयत्यङ्गानि मूढाशया
कोपोद्रेकवशम्भवदापि रमणाश्रेणी यदीयद्विषाम् ॥ ४ ॥

श्रीमत्केशवतनयोगोविन्दस्तन्निदेशवशवर्त्ती ।
प्रकटयति धर्मपदवीं पूजाकर्मप्रदीपेन ॥ ५ ॥

पर्य्यस्तानां निबन्धेषु विधीनामविरोधिनाम् ।
पूजाकर्मणि संक्षेपात् संग्रहः क्रियते मया ॥ ६ ॥

अपि विविधनिबन्धप्रोद्धृतैर्वाक्यजातै—
र्विहितरुचिरगुम्फः किं बुधैर्नाद्रियेत ।
उपहृतकुसुमानां मालिकानान्तरम्यो—
भवति हि पद्ममालागुम्फनं गौरवाय ॥ ७ ॥

सम्प्रदायानुरोधेन प्राप्तमप्युज्झितं मया ।
किञ्चिदप्राप्तमप्येतत्पद्धतौ कथयिष्यते ॥ ८ ॥
आसाद्य बुद्धिभाजां सकलदशासंस्पृशः स्नेहान् ।
स्वमहति पात्रे निहितः पूजाप्रदीपः प्रदीप्यतामेष. ॥ ९ ॥

तत्र प्रथमं स्नानादि, तद्यथा —

अथ प्रातः समुत्थाय धीमान् ब्राह्ममुहूर्त्तके ।
ब्रह्मरन्ध्रस्थिते पद्मे सहस्रदलशोभिते ॥ १० ॥

श्रीगुरुं परमात्मानं व्याख्यामुद्रालसत्करम् ।
द्विनेत्रं द्विभुजं प्रीतं ध्यायेदखिलसिद्धिदम् ॥ ११ ॥

एवं ध्यात्वा च तत्पादस्रुतपीयूषधारया ।
प्रक्षालितं निजं देहं सञ्चिन्त्य स्थिरमानसः ॥ १२ ॥

स्वीयहृत्कमले ध्यात्वा यथावत्स्वेष्टदेवताम् ।
तत्प्रभापटलव्याप्तं देहं स्वं परिचिन्तयेत् ॥ १३ ॥

प्रणम्याज्ञां गृहीत्वास्य ऋष्यादिन्यासपूर्वकम् ।
मन्त्रार्थं संस्मरंस्तीर्थं गत्वा शास्त्रोक्तवर्त्मना ॥ १४ ॥

स्नात्वा पश्चात्स्वमन्त्रेण ऋष्यादिन्यासपूर्वकम् ।
ध्यात्वेष्टदेवतां तीर्थमावाह्याङ्कुशमुद्रया ॥ १५ ॥
अमृतीकृत्य तत्तीर्थंमुद्रया धेनुसंज्ञया ।
वमित्यमृतबीजेन रक्षयेत्तच्छरेण वै ॥ १६ ॥

तज्जले देवतामूर्त्ति ध्यात्वा तच्चरणस्रुते ।
तीर्थे निमज्ज्य त्रिर्विद्वान् मनसा मन्त्रमुच्चरन् ॥ १७ ॥

कृत्वाघमर्षणं भूयः सन्ध्यादिकृतिपूर्व्वकम् ।
जप्त्वा मूलमनुंत्वष्टाविंशतिप्रमिति ततः ॥ १८ ॥

वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण तावत्संख्यं प्रतर्पयेत् ।
अभिषिञ्चेत्ततो मूर्द्ध्नि तद्वत्कलशमुद्रया ॥ १९ ॥

तत्तद्देवस्य गायत्रीं जपित्वा पङ्क्तिशस्तथा ।
ओँ घृणि सूर्य्य आदित्येत्यष्टार्णेन च भानवे ॥ २० ॥

अर्घं दत्वाथ मूलेन दशधा मन्त्रितैर्ज्जलैः ।
आचम्य दिक्पतीन्नत्वा गच्छेद्देवगृहन्ततः ॥ २१ ॥

अमृतीकृत्यामृतवीजेनेत्यन्वयः, स्नात्वा निमज्जनं विधाय, कृत्वाघर्षणमिति द्विजविषयम् । तर्पणविधिस्तु—

सन्तर्प्य पीठमन्त्रैःसकृत्सकृत्प्रथममच्युतं तत्र ।
आवाह्य पूजयेत्तं तोयैरेवाखिलैः समुपहारैः ॥ २२ ॥

वद्ध्वाथ धेनुमुद्रा··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ।
··· ···अञ्जलिना तं सुवर्णचषकीकृतेन तर्पयेत्तु ॥ २३ ॥

भूयः स्वकालविहितान् सकृत्सकृत्तर्पयेच्च परिवारान् ।
तर्पयामि पदं योज्यं मन्त्रान्ते सर्वेषु नामसु ।
द्वितीयान्तेषु च पुनः पूजाशेषं समापयेदिति ॥ २४ ॥

गायत्र्यश्च पद्धतावेव लेखनीयाः । ओँ घृणि सूर्य्येत्याद्यपि द्विजविषयम्, वैदिकत्वात्तन्मन्त्रस्य; शूद्रादिना तु ह्रां ह्रीँ स इत्यादिमन्त्रेणार्घो देयः, अग्रेप्येयं द्रष्टव्यम् ।
ततो द्वारादिपूजा—तत्र प्रथमम्—

आचम्य विधिना कुर्यात्सामान्यार्घन्तु तद् यथा ।
अस्त्रेण पात्रं संशोध्य हृन्मन्त्रेण प्रपूर्य्य च ॥ २५ ॥

तीर्थमन्त्रेण चावाह्य तीर्थं सवितृमण्डलात् ।
तज्जले गन्धपुष्पाणि निःक्षिपेत्तारमुच्चरन् ॥ २६ ॥

अस्त्रेण शोधयित्वा तु स्पृष्ट्वा मूलं जपेत्त्रिशः ।
दर्शयेद्धेनुमुद्राञ्च सामान्यार्घोयमीरितः ॥ २७ ॥

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥ २८ ॥

एष तीर्थमनुः प्रोक्तो दुरितौघविनाशनः ।
तज्जलैरस्त्रमन्त्रेण द्वारमभ्यूक्ष्य पूजयेत् ॥ २९ ॥

—❀❀—

तीर्थावाहनमङ्कुशमुद्रयेत्यग्रे वक्ष्यते । तज्जलैः सामान्यार्घजलैः पूजयेदित्यनुवृत्तौ । विघ्नं द्वारोर्ध्वशाखायां महालक्ष्मीं सरस्वतीं एतत्त्रयं, पूजनञ्च ऊर्द्धशाखायां द्वारस्य दक्षिणमध्यवामभागेषु । तदुक्तं तूर्णा – पद्धतौ—

द्वारस्य दक्षिणे वामे गणेशञ्च सरस्वतीम् ।
उद्र्ध्वोदुम्बरके मध्ये तयोर्द्वारश्रियं यजेत् ॥ ३० ॥ इति ।

ततो दक्षिणशाखायां विघ्नं क्षेत्रेशमन्यतः ।
तयोः पार्श्वगते गङ्गायमुने पुष्पवारिभिः ॥ ३१ ॥
धातारञ्च विधातारं शङ्खपद्मनिधी तथा ।
देहल्यामर्चयेदस्त्रं प्रतिद्वारमिति क्रमात् ॥ ३२ ॥

दक्षिणवामशाखयोः क्रमेण गङ्गायमुने पूजनीये । तदुक्तं तूर्णपद्धतौ—
गङ्गाञ्च यमुनान्तद्वद्दक्षसव्यस्थशाखयोरिति । केचित्तु विघ्नेशदक्षिणवामपार्श्वयोर्गङ्गा–यमुने, एवं क्षेत्रेशपार्श्वयोरपीत्याहुः, एवं धात्रादयोऽपि, ततस्तत्तद्देवतायास्तु तद्द्वाराधिपान् यजेत् । ततः अस्त्रपूजानन्तरं विष्णोर्द्वाराधिपाः नन्दसुनन्दचण्डसंज्ञकाः ।

प्रचण्डो प्रबलश्चैव प्रबलोभद्र एव च ।
सुभद्रश्चैव संप्रोक्ताः शैवा द्वाराधिपाः पुनः ॥ ३३ ॥
नन्दिसंज्ञो महाकालो गणेशो वृषभस्तथा ।
भृङ्गीरिटिस्तथा स्कन्द उमाचण्डेश्वरस्त्वमी ॥ ३४ ॥

वक्रतुण्डश्चैकदंष्ट्रो महोदरगजाननौ ।
लम्बोदरोऽथ विकटो विघ्नराजाद्वयोऽपरः ॥ ३५ ॥

धूम्रवर्णस्त्विमे वैघ्नाः शाक्तेयाः मातरः स्मृताः ।
ब्राह्मी माहेश्वरी भूयः कौमारी वैष्णवी तथा ॥ ३६ ॥

वाराह्यनन्तरेन्द्राणी चामुण्डा सप्तमी मताः ।
अष्टमी स्यान्महालक्ष्मीः प्रोक्ता विश्वस्य मातरः ॥ ३७ ॥

इन्द्रो यमोऽथ वरुणः कुबेरस्त्वेपुरा मताः ।
नन्दादयो द्विक्रमेण पूर्वादिद्वारपालकाः ॥ ३८ ॥

इन्द्रादयस्त्वेकैकम् अनन्तरं देशिकेन्द्रो दिव्यदृष्ट्यावलोकनात् ।

दिव्यानुत्सारयेद्विघ्नान् अस्त्राद्भिश्चान्तरीक्षगान् ।
पार्ष्णिघातैस्त्रिभिर्भौमानिति विघ्नान्निवारयेत् ॥ ३९ ॥

दिव्यत्वं मूलमन्त्रोच्चारणसहितत्वं, शरतीक्ष्णत्वं, न्मस्तमूलमस्त्रत्वमिति केचित् । पार्ष्णिघातपूर्वं, तूर्णपद्धतौ—

सिद्धार्थाक्षतकुसुमं नाराचास्त्रधिया गुरुः ।
अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः ।
विघ्नकर्तारो ये भूतास्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥ ४० ॥

'इत्यन्तेऽस्त्रं समुच्चार्य मण्डपान्ते परिक्षिपेत्' इति विघ्नं निवार्य्य—

किञ्चित् स्पृशन् वामशाखां देहलीं लङ्घयेद् गुरुः ।
अङ्गं सङ्कोचयन्नन्तः प्रविशेद्दक्षिणाङ्घ्रिणा ॥ ४१ ॥

वामत्वं द्वारापेक्षया, अतएव प्रवेशकाले दक्षिणांसेन शाखास्पर्श इति व्याख्यातारः ।

नैरृत्यां दिशि वास्त्वीशं ब्रह्माणञ्च समर्चयेत् ।
पञ्चगव्यार्घतोयाभ्यां प्रोक्षयेद् यागमण्डपम् ॥ ४२ ॥

ततः—

तीक्ष्णदंष्ट्रमहाकाय कल्पान्तदहनोपम ।
भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि ॥ ४३ ॥
इत्यनुज्ञां गृहीत्वास्य जपस्थानं विशोधयेत् ।
चतुः प्रकारां तच्छुद्धिं विदध्याद्वीक्षणादिभिः ॥ ४४ ॥

वीक्षणं मूलमन्त्रेण शरेण प्रोक्षणं मतम् ।
तेनैव ताडनं कुर्याद् वर्मणाभ्यूक्षणं मतम् ॥ ४५ ॥
चन्दनागरुकर्पूरैर्धूपयेदन्तरं सुधीः ।

अन्तरं मण्डपस्य—

उक्तेषु चासनेष्वेकं चेलाजिनकुशोत्तरम् ॥ ४६ ॥
वेदिकायां प्रविन्यस्य प्रोक्षयेत्सलिलैः शुभैः ।
आधारादिपृथिव्यन्तास्तत्र सम्पूज्य देवता ॥ ४७ ॥
मेरुपृष्ठमृषिच्छन्दः पृथिव्याः सुतलं मतम् ।
देवता कूर्म्म आख्यातः संस्मरेदृषिपूर्वकान् ॥ ४८ ॥
पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता ।
त्वञ्च धारय मां भद्रे पवित्रं कुरु चासनम् ॥ ४९ ॥
इति मन्त्रं जपन् पीठे प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ।
स्वस्तिकादिक्रमेणैव ऋजुकायो विशेद् बुधः ॥ ५० ॥

आधारादि, आधारशक्त्यादि—

विशेन्मृद्वासने योगी प्राङ्मुखोवाप्युदङ्मुखः ।
बद्धपद्मासनो मौनी समाहित जितेन्द्रियः ॥ ५१ ॥
स्थापयेद्दक्षिणे भागे पूजाद्रव्याणि देशिकः ।
सुवासिताम्बुसम्पूर्णं सव्ये कुम्भं सुशोभनम् ।
प्रक्षालनाय करयोः पश्चात्पात्रं निवेशयेत् ॥ ५२ ॥

मृद्वासने कृष्णाजिनयोरुपरिक्लृप्ते कम्बलादौ, पद्मासनपदेन वामदक्षिणोरूर्वोरुपरि दक्षिणवामचरणन्यासमात्रमिह विवक्षितम्, "कृताञ्जलिपुटी भूत्वेत्यादिभिरन्यथा विरोधात् ॥ ततः प्रथमं भूतशुद्धिमातृकान्यासौ । तौ च पूजादावावश्यकौ "देवो भूत्वा यजेद्देवं नादेवो देवमर्चयेत्" इत्यनेनादेवस्य देवपूजानिषेधे स्थिते, तावुक्त्वा इत्यच्युतीकृततनुर्विदधीत, तद्वन्न्यासमित्यभिधानेन तयोर्देवभावार्थकत्वावगतेः ।

भूतशुद्धिविहीनेन कृता पूजाभिचारवत् ।
विपरीतं फलं दद्यादभक्त्या पूजनं यथा ॥ ५३ ॥

इति भूतशुद्धि :—

जपाद्यं सर्वमन्त्राणां विन्यासेन विना लिपेः ।
कृतं तन्निष्फलं विद्यात्तस्मात्पूर्वं लिपिं न्यसेत् ॥ ५४ ॥

इति मातृकान्यासस्य च तथात्वे प्रमाणान्तरस्यापि सत्त्वात् ।

तत्र सपूर्वकृत्याभूतिशुद्धिर्यथा—

स्नातो निर्मलधौतसूक्ष्मवसनो—
धौताङ्घ्रिपाण्याननः ।
स्वाचान्तः सुपवित्रमुद्रितकर :—
श्वेतोद्र्ध्वपुण्ड्रोज्ज्वलः ॥ ५५ ॥

प्राचीदिग्वदनो निवध्य सुदृढं
पद्मासनं स्वस्तिकम् ।
वासीनः स्वगुरून् गणाधिपमथो—
वन्देत बद्धाञ्जलिः ॥ ५६ ॥

स्वस्तिकादिलक्षणम्वक्ष्यते—

गुरुगणेशयोश्च नमस्कारो वामदक्षिणपार्श्वयोः ।

अग्रे पश्चाच्च दुर्गाक्षेत्रपालयोरपि, तदुक्तं नमस्कुर्यादित्यनुवृत्तौ, 'वामे गुरुं दक्षिणे गणेशं दुर्गांपुरः क्षेत्रपतिञ्च पश्चादि'ति ।

सुदर्शनस्य मन्त्रेण रक्षां कुर्यात्समन्ततः ।
ओं सहस्रारवमस्त्रं सुदर्शनमनुर्मतः ॥ ५७ ॥

सुगन्धिपुष्पमर्द्दन सुरभीकृत्य हस्तकौ ।
क्षिपेदुत्तरतः पुष्पं मन्त्री नाराचमुद्रया ॥ ५८ ॥

अथास्त्रमन्त्रेण विशोध्य पाणी
त्रितालदिग्बन्धहुताशपालान् ।
विधायभूतात्मकमेतदङ्गं
विशोधयेच्छुद्धधर्मातः क्रमेण ॥ ५९ ॥

तालत्रयमूद्र्ध्वोद्र्ध्वमस्त्रमन्त्रेण रक्षणार्थम् ।
ऊद्र्ध्वोद्र्ध्वमस्त्रमन्त्रेण कुर्यात्तालत्रयं ततः ॥ ६० ॥

तेन संजनितं तेजो रक्षां कुर्यात्समन्ततः ।

इति वचनात् । हुताशपालो वह्निः प्रकारः—"वह्निरूपतया ध्यातेन जलेनात्मवेष्टनमिति यावत् । अनन्तरं सुषुम्णा वर्त्मनात्मानं परमात्मनि योजयेत् ।

योगयुक्तेन विधिना चिन्मन्त्रेण समाहितः ।
कारणं सर्वभूतानां तत्त्वान्यपि च चिन्तयेत् ॥ ६१ ॥

बीजभावेन लीनानि व्युत्क्रमात्परमात्मनि ।

सोऽहमिति चिन्मन्त्रः, अतएव तत्र हंसमन्त्रेणानयनमुक्तं, तत्त्वानि च शरीरे सूक्ष्मतया लीनानि पञ्चविंशतिः चतुर्विंशतिर्वा, उक्तम् पक्षद्वयमपि प्रपञ्चसारे भूतेन्द्रियेन्द्रियार्थैरुद्दिष्टम् तत्त्वपञ्चविंशतिकम् । करणोपेतैरेतै स्तत्त्वान्युक्तानि विरहितवचनाद्यैः इति । इन्द्रियाणि दश, तत्र बहिरिन्द्रियाणि पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्च, इन्द्रियाणामर्थाश्च दश, करणानि अन्तःकरणमात्मनः ।

मनो बुद्धिरहङ्कारश्चित्तञ्च परिकीर्तितम् । इत्युक्तानि ॥

इडावक्त्रे धूम्रं सततगतिबीजं सलवकं स्मरेत् , पूर्वंतन्त्री सकलभुवनोच्छोषणकरम् । स्वकं देहं तेन प्रततवपुषा पूर्य्य सकलं विशोध्य व्यामुचवरेत्—पवनमथमार्गेण खमणेः ॥

तेनैव भार्गेण विलीनमारुतं
बीजं विचिन्त्यारुणमा— ... ... —
आपूर्य्यं देहं परिदह्य वामतो
मुञ्चेत् समीरं सह भस्मना बहिः ॥ ६२ ॥

टपरमतीव शुद्धममृतांशुपथेन विधुंनयत—
ललाटचन्द्रसश्नतः सकलार्णमयीम् ।
लपरजपान्निपात्यरेचयेच्चतया सकलं—
वपुरमृतौघवृष्टिमथवक्त्रकराद्यमिदम् ॥ ६३ ॥

टपरं विधुं ठमिति चन्द्रबीजमित्यर्थः ।

अमृतः ललाटचन्द्रात् , लपरजपादमृतौघ वृष्टिं निपात्यतया अवशिष्टभस्मना सकलं वपुः रेचयेदित्यन्वयः । वक्ष्यमाणवचनेऽप्येतदनुसारेणैवान्वयः ।

विश्लेषयँस्तदादोषानमृतेनामृताम्भसा ।
आपाद्य प्लावयेद्देहमापादतलमस्तकम् ॥ ६४ ॥

संजाते निर्मले देहे देवताराधनक्षमे ।
आत्मलीनानि तत्त्वानि संज्ञानं प्रापयेत्तदा ॥ ६५ ॥

आत्मानं हृदयाम्भोजमानयेत्परमात्मनः ।
मनुना हंसदेवस्य कुर्यान्न्यासादिकन्ततः ॥ ६६ ॥

न्यासादिकं कल्पोक्तं, हंसदेवस्य मन्त्रो हंस इति, सारसमुच्चये तु हंसमन्त्रेण परमात्मनि जीवात्मयोजनमेवोक्तम् : तथाहि—

संयोज्य जीवमथदुर्गममध्यनाड़ी
मार्गेण पुष्करनिविष्ट शिवे सुसूक्ष्मे ।
हंसेन देहममरेन्द्रपुरोगतेन
सार्धेन्दुनाभसितसाद्विदधीत बुद्ध्या ॥ ६७ ॥

इति, तत्रास्ति, अतस्तन्मते चिन्मन्त्रेणानयनमतः पक्षद्वयमपि प्रामाणिकमेव । अमरेन्द्रपुरो गतेन लकारप्रथमेन रेफेणेत्यर्थः । अत्र पूरकं षोडशमात्रया, कुम्भकं चतुःषष्टिमात्रया, रेचकं द्वात्रिंशन्मात्रया विदध्यात् । अस्या अपि प्राणायामविशेषत्वात्, प्राणायामे च तथात्वस्य वक्ष्यमाणत्वात्, केषाञ्चिन्मते पापपुरुषस्य शोषणादिकं यद् वदन्ति—

ततः पुरुषनिभं पापं मलादिभवसञ्चितम् ।
ब्रह्महत्याशिरस्कश्च स्वर्णस्तेयवृहद्भुजम् ॥ ६८ ॥

सुरापानहृदायुक्तं गुरुतल्पकटिं द्वयम् ।
तत्संयोगिपदद्वन्द्वमङ्गप्रत्यङ्गपातकम् ॥ ६९ ॥

उपपातकरोमाणं रक्तश्मश्रुविलोचनम् ।
खड्गचर्मधरं कृष्णं कुक्षौ दक्षिणतः स्मरेत् ॥ ७० ॥

ततः संशोधयेदेनं पूरकादिक्रमेण वै । गुरुतल्पेति गुरुतल्पगमनेत्यर्थः ।

अथ मातृकान्यासः—

तत्र मातृकामन्त्रस्य

ऋषिर्ब्रह्मा समुद्दिष्टो गायत्रं छन्द ईरितः ।
सरस्वती समाख्याता देवता मातृकाह्वया ॥ ७१ ॥

हल: स्वरा: समाख्याता वीजानि शक्तयस्तथा ।
शिरोवदनहृद्गुह्यपादेष्टपादादि विन्यसेत् ॥ ७२ ॥

अक्लीवह्रस्वदीर्घान्तर्गतैः षड्वर्गकैः क्रमात् ।
षडङ्गानि विधेयानि जातियुक्तानि देशिकैः ॥ ७३ ॥

अङ्गुष्ठादिष्वङ्गुलीषु न्यसेदङ्गैः सजातिभिः ।
अस्त्रं तत्तनयोर्न्यसेत्कुर्यात्तालत्रयन्ततः ॥ ७४ ॥

दिशस्तेनैव बध्नीयात् छोरिकाभिः समाहितः ।
हृदादिषु च विन्यसे दङ्गमन्त्रांस्ततः सुधीः ॥ ७५ ॥

हृदयाय नमः पूर्वं शिरसेवह्निवल्लभा ।
शिखायै वषडित्युक्तं कवचाय हुमोरितम् ॥ ७६ ॥

नेत्रत्रयाय वौषट् स्यादस्त्राय फडिति क्रमात् ।
षडङ्गमन्त्रानित्युक्तान् षडङ्गेषु नियोजयेत् ॥ ७७ ॥

पञ्चाङ्गानि मनोर्यस्य तत्र नेत्रमनु त्यजेत् ।
अङ्गहीनस्य मन्त्रस्य स्वेनैवाङ्गानि कल्पयेत् ॥ ७८ ॥

जातयश्च नमः स्वाहा वौषड् हुंकार एव च ।
जातिषट्कमिति प्रोक्तं हृदाद्यस्त्रान्तसंयुतम् ॥ ७९ ॥

इति कारणागमोक्ता। । तृतीया च सकर्म्मकन्यासक्रियायां कर्म्मणामङ्गमन्त्राणां प्रयोजकत्वविवक्षया । अस्त्रं तत्तनयोरित्यादिः, अस्त्रं तत्तनयोर्न्यसेदित्यनुरोधात्पञ्चाङ्गपक्षेऽपि, यद्यपि अस्त्रन्यासः करतलयोरेव युज्यते, तथापि "रचयतु करद्वन्द्वे पञ्चाङ्गमङ्गुलिपञ्चके" इति क्रमदीपिकावचनस्वरसात् पञ्चाङ्गपक्षे कनिष्ठयोरेवास्त्रन्यासः । कवचायेति पञ्चमस्वरयुक्तो हकारो हुमिति कवचमन्त्रः, सवषट्शिखा हुमपि वर्मणि स्थितमिति क्रमदीपिकावचनात्, अन्यथा तत्र छन्दोभङ्गापत्तेः, अत एव दुरितामन्त्राद्यो दीर्घतल्लाभाय दीर्घं तदनुच्छदमित्याद्युक्तमिति । नेत्रत्रयेति प्रकृताभिप्रायेण, यत्र तु नेत्रद्वयं तत्र नेत्राभ्यामिति द्रष्टव्यम् । स्वेनैव जातियुक्तेन मूलेनैवेत्यर्थः, अत्र करन्यासेऽङ्गुष्ठाभ्यां नम इत्यादिकाम्मन्त्रानुदाहरन्ति, तत्तु न सम्यगाभाति. प्रमाणस्यादृश्यमानत्वात् । "तदङ्गपञ्चकं तथा यथा समीरितं कर" इति क्रमदीपिकावचनेन "हृदयाय नम" इत्यादीनामेव करन्यासेऽपि विहितत्वात् । "अङ्गुष्ठादिष्वङ्गुलीषु न्यसेदङ्गैः

सजातिभि" रिति शारदावचनस्यापि तदर्थकत्वात्; "हृदयाय नम" इत्यादीनामेव जातित्वात्, तच्च प्रतिपादितमेव, र्तहि कथमयं करन्यास उच्यते इति चेत्, करावयवस्याधिकरणत्वादित्यवेहि, अङ्गुष्ठादौ हृदयाय नम इत्यादीनां कोऽर्थ इति चेत्, अस्तु कश्चिद् विधानादेव हि तथा न्यासः, न खल्वाधारस्य नाम न्यासं प्रयोजकम्. अकारादि न्यासे ललाटाय नमः इत्यादि मन्त्राभावात्, न च यन्नामगर्भो न्यसनीयमन्त्रस्तत्रैव तन्न्यास इति युक्तम्, ललाटादौ केशवकीर्त्यादिन्यासेऽतथाभावात्, तथापि सुहृद्भावेन पृच्छामीति चेत्, उच्यते—

हृदयं बुद्धिगम्यत्वं प्रणामः स्यान्नमः पदम् ।
क्रियते हृदयेनातो बुद्धिगम्यनमस्क्रिया ॥ ८० ॥

तुङ्गार्थं स्याच्छिरः स्वस्य विषयाहारणे द्विठम् ।
शिरोमन्त्रेण चोत्तुङ्गं विषयाहृतिरीरिता ॥ ८१ ॥

शिखातेजस्समुद्दिष्टा वषडित्यङ्गमुच्यते ।
तत्तेजोऽस्य तनुः प्रोक्ता शिखामन्त्रेण मन्त्रिणः ॥ ८२ ॥

कवोग्रहण इत्यस्माद्धातोः कवचसम्भवः ।
हुँ तेजस्तेजसा देवो गृह्यते कवचं ततः ॥ ८३ ॥

नेत्रं दृष्टिः समुद्दिष्टा वौषड् दर्शनमुच्यते ।
दर्शनं दृशि येनस्यात्ततेजो नेत्रवाचकम् ॥ ८४ ॥

......सादिकौ धातू स्तः क्षेपचलनार्थकौ ।
ताभ्यामनिष्टमाक्षिप्य चालयेत्फट् पदाग्निना ॥ ८५ ॥

प्रोक्तानीत्यङ्गमन्त्राणि सर्वतन्त्रेषु सूरिभिः ।

तत्तेजोऽस्येति—तत्तद्देवतातेजोऽस्य तनुरिति शिखामन्त्रार्थ इति ।

ज्ञात्वैवमङ्गमन्त्रार्थमङ्गन्यासं करोति यः ।
करप्रचेयास्तस्यार्थाः सोच्यते त्रिदशैरपि ॥ ८६ ॥

एवं च विरोधाद्यभावे सिद्धमङ्गुष्ठादावपि हृदयाय नमः, इत्याद्या एव मन्त्राः, एवमेव पुरश्चरणचन्द्रिकामन्त्ररत्नाकरादौ । अयञ्च विधिः सर्वकराङ्गन्यास साधारणः, तत्तन्मन्त्रेषु परं विशेष, एवं कराङ्गन्यासौ विधाय ।

पञ्चाशल्लिपिभिर्विभक्तमुखदो :—
यन्मध्यवक्षःस्थलां
भास्वन्मौलिनिबद्धचन्द्रशकला —
मापीनतुङ्गस्तनीं ।
मुद्रामक्षगुणं सुधाढ्यकलशं
विद्याञ्च हस्ताम्बुजै—
र्बिभ्राणां विशदप्रभां त्रिनयनां
वाग्देवतामाश्रयेत् ॥ ८७॥

इति देवीमनुध्याय न्यसेन्मन्त्री समाहितः ।

पञ्चाशल्लिपिरिति = स्वरं, कादिवर्गपञ्चकयादिवर्णैर्यथाक्रमम् मुखाद्यङ्गं सप्तकं विचिन्तनीयम् । "अकचटतपयाद्यैः सप्तभिर्वर्णवर्गैर्विरचितमुखबाहूपादमध्याक्षिहृत्का" इति प्रपञ्चसारे तथैव प्रतिपादनात् । मुद्रादिकञ्च दक्षिणाधोहस्तमारभ्य-प्रादक्षिण्येन, मुद्रा ज्ञानमुद्रादक्षिणगतर्जन्यङ्गुष्ठयोरग्रयोर्युगरूपा । न्यासस्थानान्याह—

ललाटमुखवृत्ताक्षिश्रुतिघ्राणेषु गण्डयोः ।
ओष्ठदन्तोत्तमाङ्गास्ये दोःपत्सन्ध्यग्रकेषु च ॥ ८८ ॥
पार्श्वयोः पृष्ठतो नाभौ जठरे हृदयेंऽसके ।
ककुद्यंसे च हृत्पूर्वपाणिपादयुगे ततः ॥ ८९ ॥
जठराननयोर्न्यसेन्मातृकार्णान् यथाक्रमम् ।

क्रमदीपिकामतेन हृदयादिष्वंसादिषु रेफादिन्यासः, पादयोः शिखाभुजयोश्च सहोर्न्यासः । तथोक्तं तत्र —

याद्यानथहृदयकक्षककुत्करमूलपत्कर—
युगोदरवक्त्रगतान् बुधः ।
हृदयपूर्वमनेन पथान्वहं न्यसेत्तु —
शुद्धकलेवरसिद्धये ॥ ९० ॥

इति तदनयोः शकारादिचतुष्कन्यासपक्षयोर्विकल्प एव । क्वचित्तु "दो. पदयुगोदरवक्त्रगतान्पुन" रिति पाठः । तत्र चाविरोध एव,

इत्यावचव्य वपुरणंशतार्द्धकेन
साद्धंक्षपेशसविसर्गकसोभयैस्तैः ।
विन्यस्य केशवपुरस्सर मूर्त्तियुवतैः
कीर्त्त्यादिशक्तिसहितैर्न्यसतु क्रमेण ॥ ९१ ॥

केशवपुरस्सरेत्यादि विष्णुमन्त्रविषयम् ।

अत्र केवलानां वर्णानां विसर्गाणाञ्च सृष्टिप्रकारेण, विसर्गविन्दुसहितानां, स्थितिप्रकारेण, सविन्दूनां संहारक्रमेण न्यासः, स्थित्यादौ ध्यानेन विशेषश्च तथा चोक्तम्—

न्यसेत्सर्गान्वितां सृष्ट्या ध्यात्वा देवीं यथाविधि ।
सर्गविन्द्वन्तिकांन्यसेत् टार्णाद्यांस्थितिवर्त्मना ॥ ९२ ॥
विद्यात् पूर्वोदितान्विद्वान् ऋष्यादीनङ्गसंयुतान् ।
ध्यायेद् वर्णेश्वरीमत्र वल्लभेन समन्विताम् ॥ ९३ ॥

सिन्दूरकान्तिमसिताभरणां त्रिनेत्रां
विद्याक्षसूत्रमृगपोतवरान्दधानाम् ।
पार्श्वस्थितां भगवतीमपिकाञ्चनाभां
ध्यायेत्कराब्जधृतपुस्तकवर्णमालाम् ॥ ९४ ॥

केवलवर्णन्यासोऽपि सृष्टिप्रकारेणैव । तत्र विशेषानभिधानेन औत्सर्गिकसृष्टि-क्रमस्यैवान्वयात्, अकारमारभ्यानुक्रमेण क्षकारान्तवर्णन्यासश्च सृष्टिप्रकारः । स्थिति-वर्त्मनेत्येतं व्याचष्टे । टार्णाद्यामिति । तस्यायमर्थः । टकारमारभ्यक्षकारपर्य्यन्त-वर्णान्विन्यस्य अकारादि ञकारान्तं विन्यसेदिति ।

विन्दुयुक्तामिमां न्यसेत्संहृत्या प्रतिलोमतः ।
विद्यात् पूर्वोदितान्विद्वानृष्यादीनङ्गसंयुतान् ॥ ९५ ॥
ध्येया वर्णमये पद्मे देवी वाग्वल्लभा शुभा ।

अक्षस्रजं हरिणपोतमुदग्रटङ्कं
विद्यां करैरविरतं दधतीं त्रिनेत्राम् ।
अर्द्धेन्दुमौलिमरुणामरविन्दवासां
वर्णेश्वरीं प्रभजतस्तनभारनम्राम् ॥ ९६ ॥

अत्रापि संहृत्येत्यस्य व्याख्या प्रतिलोमत इति क्षकारमारभ्य अकारपर्य्यन्तं वर्णान्न्यसेत्, स्वस्थानेषु, अतएव गोपालदशाक्षरे दशतत्त्वन्यासे तथैव व्यवस्थापयिष्य-तीत्यर्थः । अपरे च मातृकान्यासप्रकारा विस्तरभयान्नलिखिताः ।

अथ प्रपञ्चयाग :—

प्रपञ्चयागं वक्ष्यामि सच्चिदानन्दसिद्धिदम् ।
वेदादिः शक्तिरजपा परमात्मा महामनुः ॥ ९७ ॥

वह्नेर्जायाश्च कथिताः पञ्चमन्त्राः शुभावहाः ।
तारशक्त्यादिकां न्यसेदजपात्मद्विठान्तिकाम् ॥ ९८ ॥

मातृकासूक्तमार्गेण सृष्ट्या देहे विधानवित् ।
ऋषिर्ब्रह्मासमुद्दिष्ट श्छन्दो गायत्रमीरितम् ॥ ९९ ॥

समस्तवस्तुसंव्याप्तं परं तेजोऽत्र देवता ।
स्वाहाद्यैः पञ्च मनुभिः पञ्चाङ्गानि प्रकल्पयेत् ॥ १०० ॥

अस्त्रं दिक्षु बुधः, कुर्यात् भूयो हरिहराक्षरैः ।

वेदादिः ओङ्कारः, अजपा हंसः, परमात्मा, सोऽहं द्विठं स्वाहा । स्वाहाद्यैरित्यादि "स्वाहा सोऽहं हंसः श्रीँ ओँ" एभिर्मन्त्रैर्यथाक्रमं हृदयशिरः— शिखाकवचनेत्राणि कुर्यात् । ध्यानमाह—

तारादिपञ्चमनुभिः परिचीयमानं
मात्रैवगम्यमनिशं जगदेकमूलम् ॥ १०१ ॥

सम्वित्समस्तगमनखर मच्युतं त—
त्तेजः परंभजत सान्द्रेन्दुसुधाम्बुराशिम् ॥ १०२ ॥

पञ्चभूतमयावर्णा बहुशः प्रागुदीरिताः ।
तस्माज्ज्ञानेन्द्रियात्मानः प्रपञ्चं तन्मयं विदुः ॥ १०३ ॥

देहोऽपि तादृशस्तस्मिन्न्यस्य वर्णान् विलोमतः ।
तत्तत्स्थानयुतान्मन्त्री जुहुयात्परतेजसि ॥ १०४ ॥

एवं वर्णमयं होमं कृत्वा दिव्यतनुर्भवेत् ।

तस्मादिति=ज्ञानेन्द्रियाणि यानि पञ्च श्रोत्रादीनि तदात्मनः, तेषां भूतरूपत्वात्, अपरमपि प्रपञ्चं तन्मय भूतमयं विदुरित्यर्थः। अत्र परतेजसि तत्तत्स्थानयुतान् जुहोमीति बुद्ध्या व्युत्क्रमेण वर्णन्यास एव होम इत्येके। व्युत्क्रमेण वर्णन्यासं विधाम क्षं स्वाहा, लं स्वाहा इत्यादिमन्त्रैः तत्तत्स्थानयुतवर्णानां परतेजसि होम इत्यपरे।

पवनसंयमनन्त्वसुना चरेद्
यमिहजप्तुमसौमनुमिच्छति।
अथवाखिलेषु, हरिमन्त्रजपरिधिषुमूलमन्त्रतः
संयमनविधिर्मरुतो विधिनाभ्यसँश्चरत, तत्त्वसंख्यया॥ १०५॥

तत्त्वानि द्वात्रिंशत्, इयञ्च सन्ध्याप्राणायामस्य, नतु तदुपयुक्तजपस्य, मूलमन्त्रस्तद्वीजम्, उपास्यमन्त्रस्य पृथगेवाभिधानात् इति न युक्तः पक्षः। अथवाङ्गजन्मनुनाऽसुसंयमं सकलेषु कृष्णमनुजापकर्मस्वित्यादिना वीजस्याप्यग्रिमश्लोकेऽभिधानात्। तस्मान्मूलमन्त्रोऽष्टाक्षरगोपालमन्त्रः। क्रमदीपिकायां तस्यव मूलमन्त्रत्वेनोक्तत्वात्, दशाक्षरो वा।

अथवा साधकः कुर्यात्प्रणवेनासुसंयमम्।
स्त्रीभिः शूद्रैश्च कर्तव्यो लौकिकेनासुसंयमः॥ १०६॥
त्रिषट् द्वादशवारं वा पुरतः परतो जपात्।

पुरतः परतश्चेत्यर्थः।

षोडश इह चरेद्दिनशः
परिपूयते सखलु मासतोऽङ्गसः।
शुचिः प्राणायामान् प्रणवसहितान् षोडश वशी,
प्रभातेसायञ्चप्रति दिवसमेवं वितनुते॥ १०७॥
नरो यस्तं भ्रूणप्रहणनकृतांघोभिकलितं
पुनन्त्येते मासादिह दुरिततूर्णौघदहनाः।
त्रायन्त्यमी षड्भिरपीह मासै—
र्जन्मान्तरोपार्जित पापपुञ्जात्॥ १०८॥
सम्वत्सराद् ब्रह्मपदं तदेकं
प्रकाशयन्त्येव यदच्युताख्यम्।

प्रभाते सायञ्चेत्यत्र फलभूम्ना षोडश इह चरेद्दिनशः इति वचनाविरोधः। प्रणवस्य च प्राणायामेषु साहित्यं जप्यमानतया अंशत्रयात्मकः सोऽयं कुम्भकपूरकरेचकैः।

जपध्यानादिभिर्युक्तं सगर्भस्तं विदुर्बुधाः ।
उदपेतं विगर्भन्तु प्राणायामं परे जगुः ॥ १०९ ॥

तत्स्वरुपमाह —

इडयाकर्षयेद्वायुं वायुं (ह्यं) षोडशमात्रया ।
धारयेत्पूरितं मन्त्री चतुः षष्ट्या तु मात्रया ॥ ११० ॥

सुषुम्णा मध्यगं सम्यक् द्वात्रिंशन्मात्रया शनैः ।
नाड्या पिङ्गलया चैनं रेचयेद् योगवित्तमः ॥ १११ ॥

प्राणायाममिमं प्राहुर्योगशास्त्रविशारदाः ।
भूयोभूयः क्रमात्तस्य व्यत्यासेन समाचरेत् ॥ ११२ ॥

मात्रावृद्धिक्रमेणैव सम्यग्द्वादशषोडशः ।

इडयेति—पिङ्गलयेति च, प्रथमप्राणायामाभिप्रायेणोक्तम्, द्वितीयप्राणायामे पिङ्गलयैव पूरणात् ।

"भूयोभूयः क्रमात्तस्य व्यत्यासेन समाचरेदिति"

येनैव सन्त्यजेत्तेन पूरयेदिति चाभिधानात्। यया नाड्या पूरणं तदन्यया रेचनमिति सकलप्राणायामानुगतं षोडशमात्रयेत्याद्युपलक्षणम् । मात्रावृद्धिक्रमेणैवेत्यनेन मात्रान्तरेणापि पूरणादेवाभिधानात् । मात्रा च नलिनीपत्र संहत्यां सूक्ष्मसूच्यग्रभेदने दलेदले क्षयः कालः—स कालो लववाचकः ।

लवैःसूत्रुटिश्च त्रिंशद्भिः कलां तास्त्रुटिं विदुः ।
काष्ठा तावत्कला ज्ञेया तावत्काष्ठानि मेषकः । ११३ ॥

सोङ्गुली स्फोटतुल्यः स्यात् मात्रास्तैरष्टभिः स्मृताः।
कालेन यावता स्वीयो हस्तः स्वजानुमण्डलम् ॥ ११४ ॥

पर्य्येतिमात्रा सा तु स्यात् स्वयैकश्वासमात्रया ।

मार्कण्डेय पुराणे तु निमेषोन्मेषणे मात्रा काल इत्युक्तम् । "रेचयेन्मारुतं दक्षयेत्यादिवक्ष्यमाणक्रमदीपिकावचने तु सगर्भप्राणायामप्रकरणोक्तेनायं मन्त्रशब्दार्थः । तत्तावन्मन्त्रजपस्थलेषु तावन्मात्रानियमाभावात् । किन्तु तत्र मात्राशब्देन कालोपाधिः

मात्रमुच्यते ननु तद्विशेषः, तथा च येनोपाधिना पूरककालस्य षोडशपरिमितत्वं तेनैव चतुःषष्टित्वद्वात्रिंशत्वे कुम्भकरेचककालयोरपि, एतावता पूरकचतुर्गुणकालेन कुम्भकस्तदर्द्धेन तु रेचक इति पर्य्यवसितेऽर्थेऽष्टाविंशतिसंख्यमिष्टफलदमिति प्रथमश्लोके रेचकमात्रस्य कुम्भकमात्रस्य वाऽष्टाविंशत्यादिजपसंख्याप्राप्तौ तदितरद्वये कालद्वैगुण्यादिकं प्रतिपादितमिति मार्कण्डेयपुराणादिवचनानान्तु, प्रकरणोक्ता गर्भमात्रप्राणायाममात्रापरतया तेनाविरोधः। अस्तु वा क्रमदीपिकावचनमपि प्रसङ्गाद् गर्भमात्रविषयमिति।

अष्टाविंशतिसंख्यमिष्टफलदं —
मन्त्रं दशार्णं जपं,
नायच्छेत्पवनं सुसंसितमतिस्त्वष्टा—
दशार्णेन चेत्।
अभ्यस्यन्रविवारमन्यमनुभि—
र्वर्णानुरुपं जपन्,
कुर्याद् रेचक पूर्वकर्मणि पुनः—
प्राणप्रयोगान्नरः॥ ११५॥

इयमष्टाविंशति आदिसंख्यारेचके पूरककुम्भकयोस्तदनुसारेणोहनीया, तदभिप्रायकमेतदुक्तम्। कुर्याद्रेचकपूर्वकर्मणि पुनः प्राणप्रयोगा ...तीति केचित्। तन्नातिमनोरमम्—एकवर्णेन प्राणायामे द्वात्रिंशतो रेचकजपसंख्यात्वे दशाक्षरेणाष्टाविंशतिस्तथात्वानौचित्यादशक्यत्वाच्च, यत्तु पूरकादीनां त्रयाणामष्टाविंशतिः संख्या—तथाहि चतुर्भिः पूरकः, षोडशभिः कुम्भकः, अष्टाभीरेचक इति तदसत्, अभ्यसन्रविवारमित्यत्र तथात्वासम्भवेन वक्तव्यप्रकारस्यैवानुसरणीयत्वात्। तस्मादयं मनुः, निपुणो रविवारं जपन् रेचकपूर्वकर्मकुम्भाख्यं कुर्यात्, स्वनैपुण्येन तु रेचकपूरकयोः संख्योहनीया। प्राणप्रयोगान् प्राणस्य प्रकृष्टं योगं पूरकेन विधायेत्यर्थः। यद्वा अन्यमनुभिर्वर्णानुरुपं जपन् प्राणप्रयोगान् कुर्यादित्यन्वयः। इयञ्च संख्या शक्तस्य, अशक्तौ तु यया कयापि पूरणं तच्चतुर्गुणनया धारणं तदर्द्धया रेचनमित्युक्तप्रायमिति॥

केचन —

रेचयेन्मारुतं दक्षया दक्षिणः
पूरयेद् वामया मध्यनाड्या पुनः।
धारयेदीरितं रेचकादित्रयं
स्यात्कलादन्तविद्याख्यमासात्मकम्॥ ११६॥

इति क्रमदीपिकावचः प्रमाणयन्तो रेचकं विधाय पूरककुम्भकौ कुर्वन्ति, तन्न सम्यगाभाति । नहि तत्र पाठिकक्रमे तात्पर्य्यं, पूरकं विना रेचनीयाभावेन रेचकासम्भवात् । न च शरीरस्यैव समीरस्य रेचनमिति युक्तम्—

"ईडयाकर्षयेद् वायुं वायुं षोडशमात्रये" इत्यादि लिखितशारदावचने वाह्यवायोरेव धारणरेचनयोरपि कर्मत्वेनावगमात् । किञ्च प्राणायाममिमं प्राहुरिति वाक्येन पूरकादिक्रमवत् कर्मत्रयस्यैव प्राणायामपदवाच्यत्वमवसीयते, न च तस्य नानार्थता, एकार्थतयैव उपपत्तेर्वक्ष्यमाणत्वात्, अपि च रेचकस्य प्राथम्ये द्वितीयप्राणायामे प्रथमतो वामनाड्या रेचनं—ततो दक्षिणया पूरणं, एवं तृतीयादिष्वपि तथाभावेन —

येनैवरेचयेत्तेन पूरयेद्धारयेत्ततः ।
रेचयेच्च ततोन्येन शनैरेवं पुनः पुंनः ॥ ११७ ॥

इत्यादिवचनैर्विरोधः स्यात्—वाक्यान्तराननुरोधे च सर्वप्राणायामेषु क्रमदीपिकावचनेन दक्षिणादिनाडीभिरेव रेचनादि स्यात्—किञ्च रेचकस्य प्राथम्येऽन्तप्राणायामे कुम्भितपवनस्य रेचनाकाङ्क्षा न निवर्त्तते, न च रेचकस्याप्राथम्ये रेचकादीत्यादि पदार्थानन्वयः, तत्र वाक्ये रेचकस्यैव प्रथमाभिधानेन तदन्वयात् । तस्माद् पूरकादिक एव क्रमः, तद्वचनन्तु प्रथमप्राणायामे नाडीविशेषविधायकं मात्रा विशेषविधायकञ्च—नतु क्रमतात्पर्य्यकं, वहुतरवचनविरोधात्, न चैवं क्रमाप्राप्तौ ग्रन्थस्य क्रमदीपिकात्वव्याघातः—

"कुर्याद् रेचकपूर्वकर्मणि पुनः प्राण—प्रयोगान्नरः" इत्यनेनैव क्रमप्रतिपादनादिति युक्तम् ।

प्राणायामान्विधायेत्यथ निजवपुषा—
कल्पयेद् योगपीठं,
न्यसेदाधारशक्तिप्रकृतिकमठशेष—
क्ष्माक्षीरसिन्धून् ।
श्वेतदीपञ्चरत्नोज्ज्वलसहितमहा—
मण्डपं कल्पवृक्षं,
हृद्देशेऽशद्वयोरुद्वयवदनकटो—
पार्श्वयुग्मेषु भूयः ॥ ११८ ॥

धर्माद्यधर्मादि च पादगात्र
चतुष्टये हृद्यथ शेषमब्जम् ।
सूर्य्येन्दुवह्नीन् प्रणवांशयुक्तान्
स्वाद्यक्षरैः सत्त्वरजस्तमांसि ॥ ११६ ॥
आत्मादित्रयमादिबीजसहितं
व्योमाग्नि मायानरै—
र्ज्ञानात्मानमथास्तु दिक्षु परितो
मध्ये च शक्तीर्न्नव ।
न्यस्त्वापीठमनुश्च तत्र विधिव—
त्तत्कर्णिकामध्यगम्,
सान्द्रानन्दचितिप्रकाशममृतं
सञ्चिन्तयेद्धाम तत् ॥ १२० ॥

आधारशक्तिप्रकृत्योर्द्वन्द्वः, धर्मादि धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्याणि, अधर्मादि–अधर्माज्ञाना-वैराग्यानैश्वर्याणि, शेषमब्जमिति, अनन्तपद्मे न्यसनीयेत्यर्थः ।

सूर्यादिन्यासश्च अं सूर्य्यमण्डलाय नमः इत्येवं विधीयते इति सम्प्रदायसिद्धम्, वह्निमन्त्रादौ स्वमण्डलान्तं प्रयजेत्पीठं स नवशक्तिकमित्यादौ स्वमण्डलान्तम् इत्याद्यपि तु तत एव संगच्छते । प्रणवांशाः, अकारोकारमकाराः, क्रमेण तत्र येऽन्वीयन्ते, आदि बीजमोङ्कारः, अकारोकारमकाररूपबीजानीत्येके । तेषामाद्यक्षराण्येव बीजानीत्यपरे, केषाञ्चिन्मतेन अंसोरुषु प्रादक्षिण्येन धर्मादिचतुष्कस्य मुखवामपार्श्वदक्षिणपार्श्वेषु धर्मादि-चतुष्कस्य च न्यासः । तदुक्तम्—

अंसोरुयुग्मयोर्विद्वान् प्रादक्षिण्येन देशिकः ।
मुखपार्श्वनाभिपार्श्वेषु धर्मादीनि प्रविन्यसेत् ॥ १२१ ॥

इति कल्पवृक्षस्याधो रत्नवेदिकापि न्यसनीया ।

"अधस्तात्पूजयेत्तेषां वेदिकांमण्डपोज्ज्वलाम्" इति वचनात्तस्यास्तत्र पूज्यत्वे आधारशक्त्यादितुल्यन्यायेन तन्न्यासस्य युक्तत्वात् । पद्मन्यासस्तु—

आनन्दकन्दं प्रथमं सम्विन्नालमनन्तरम् ।
सर्वतत्त्वात्मकं पद्ममभ्यर्च्यं तदनन्तरम् ॥ १२२ ॥

मन्त्री प्रकृतिपत्राणि विकारमयकेसरान् ।
पञ्चाशद्वर्णवीजाढ्यां कर्णिकां प्रयजेत्ततः ॥ १२३ ॥

इति शारदायां पूजाप्रकरणेभिहितत्वात् । अत्रापि तुल्यन्यायतया तथैव विधेयः । आधारशक्त्यादीनां ध्यानादिकमग्रे वक्ष्यते ।

शारदायाम् —

अनन्तहृदये पद्ममस्मिन्सूर्य्येन्दुपावकान् ।
एषु स्वस्वकलान्यस्येन्नामाद्यक्षरपूर्विकाः ॥ १२४ ॥

कलाश्च —

तपिनी तापिनी धूम्रा मरीचिर्ज्वालिनीरुचिः ।
सुषुम्ना भोगदा विश्वा बोधिनी धारिणी क्षमा ॥ १२५ ॥

एताः सूर्य्यस्य ।

अमृता मानदा पूषा तुष्टिः पुष्टीरतिर्धृतिः ।
शशिनी चन्द्रिकाकान्तिर्ज्योत्सना श्रीः प्रीतिरङ्गदा ॥ १२६ ॥
पूर्णा पूर्णामृता कामदायिन्यः शीतदीधितेः ।
धूमार्चिरुष्मा ज्वलिनी ज्वालिनी विस्फुलिङ्गनी ॥
सुश्रीः स्वरूपा कपिला हव्यकव्यवहे अपि ॥ १२७ ॥

एताः वह्नेः। एताश्च तं तपिन्यै नमः एवं स्वाद्यक्षरैः प्रत्येकं न्यसेत्, तं तपिन्यादिसूर्य्यकलाभ्यो नमः, एवं समुदायेनापि न्यासमिच्छन्ति । शारदायामृष्यादिन्यासमनन्तरमेव पीठन्यास उक्तः ।

ततश्चोपास्य मन्त्रस्य न्यासानृष्यादिकाञ्चरेत् ।
मन्त्रशास्त्रे तथा चोक्तं प्राप्तमन्त्रेण धीमता ॥ १२८ ॥
यस्य मन्त्रस्य ये न्यासाः कर्त्तव्या सिद्धिमिच्छता ।
जपतर्पणहोमार्चाः सिद्धमन्त्रकृता अपि ॥ १२९ ॥
अङ्गन्यासादिभिर्हीना न दास्यन्ति फलान्यमी ।
न्यासान् समस्तान्न्यसतः स्वदेहे
त्रैलोक्यमेतद् वशमेति पुंसः ।
पापानि सद्यः प्रशमं प्रयान्ति
त्रस्यन्ति भूतानि सपन्नगानि ॥ १३० ॥

आदावृष्यादिविन्यासः कराङ्गन्यसनन्ततः ।
ततो यद्यक्षरन्यासः पदन्यासस्ततः परम् ॥ १३१ ॥

यदीति पदन्यासेप्यनुषज्ज्यते । अयञ्च क्रम औत्सर्गिकः, कल्पोक्तक्रमेण क्वचित् वाध्यते । चन्द्रिकायां तु :—

तत्तत्कल्पविशेषोक्तान्न्यासानन्यान् समाचरेत् ।
ततो मन्त्रपुटैर्वर्णैर्मातृकायाः सविन्दुकैः ॥ १३२ ॥

विन्यसेन्मन्त्रवित्सम्यक् शास्त्रदृष्टेनवर्त्मना ।
ऋषिपाण्यङ्गविन्यासस्ततो मुद्राः प्रदर्शयेत् ॥ १३३ ॥
ध्यानं कुर्यात्ततो विद्वान् तत्तत्कल्पोक्तवर्त्मना ।

ऋषीत्युपलक्षणम्, तेन ऋषिछन्दोदेवतानां न्यासः । क्रमदीपिकायान्तु—अङ्गन्यासं विधाय ऋष्यादिन्यास उक्तः, मुद्रास्तु नारायणादीनां शंखाद्या :— ध्यानस्वरुपन्तु—

ध्यानमात्मेष्टदेवस्य मनसा वेदनं मतम् ।
यज्जीवब्रह्मणोरैक्ये सोऽहं स्यादिति वेदनम् ॥ १३४ ॥

तन्निर्गुणं हृदम्भोजं कर्णिकाकेसरान्वितम् ।
स्वोयेष्टदेवतान्तत्र ध्यायेदागमबोधिताम् ॥
एवं यद् वेदनं तत्तु सगुणं ध्यानमुच्यते ॥ १३५ ॥

इति ध्यात्वात्मानं पटुविशदधीर्न्नन्दतनयं
पुरो बुद्ध्यैवार्घप्रभृतिभिरनिन्द्योपहृतिभिः ।
यजेद् भूयो भक्त्या स्ववपुषि वहिश्चैव विभवै—
र्विधानञ्च ब्रूमो वयमतुलसान्निध्यकृदथ ॥ १३६ ॥

नन्दतनयमिति प्रकृताभिप्रायेण—

आत्माग्रतश्चतुष्कोणं षडस्रञ्च त्रिकोणकम् ।
सामान्यार्घजलेनैव कृत्वाङ्गानि प्रपूजयेत् ॥ १३७ ॥

आग्नेयादिस्वकोणेषु हृदाद्यङ्गं चतुष्टयम् ।
नेत्रमग्रे दिक्षु चास्त्रं तत्र मूलेन क्षालिताम् ॥ १३८ ॥

त्रिपादिकां प्रतिष्ठाप्य क्षालयेच्छङ्खमस्त्रतः ।
साधारं स्थापयेद् विद्वान् वामतो वह्निमण्डले ॥ १३९ ॥

तत्रगन्धसुमनोऽक्षतान्यथो निःक्षिपेद्हृदयमन्त्रमुच्चरन् ।

वहुवचनमन्त्राद्यर्थे तेन गन्धादीनामपि प्राप्तिः, तानि च —

गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलसर्षपैः ।
सदूर्वैः सर्वदेवानामर्घोऽयं परिकीर्त्तितः ॥ १४० ॥

इत्युक्तानि ।

पूरयेद् विमलपाथसासुधी—
रक्षरैः प्रतिगतैः शिरोऽन्तकैः ।
पूरणमिदं शङ्खस्य, अक्षरै
र्मातृकायाः प्रतिगतै र्विलोमस्थितैः ॥ १४१ ॥

शिरोऽन्तकैरंकारान्तैः सविन्दुकैरित्यर्थः । क्वचिन्मातृकान्ते मूलस्यापि पाठ उक्तः ।

तत्र तीर्थमनुनाभिवाहये —
त्तीर्थम्वस्तुरुचि मण्डलात्ततः ।
स्वीयहृत्कमलतो हरिन्तथा
गालिनीञ्च शिखया प्रदर्शयेत् ॥ १४२ ॥
तज्जलं नयनमन्त्रवीक्षितं
वर्मणा समवगुण्ठ्य दोर्युतम् ।
मूलमन्त्रसकलीकृतं न्यसे —
दङ्गकैश्च कलयेद्दिशोस्ततः ॥ १४३ ॥

तत्र जले न्यसेदङ्गकैस्तत्रेति शेषः, तीर्थावाहनमङ्कुशमुद्रया ।

तीर्थमावाहयेद्विद्वान् मुद्रयाङ्कुशसंज्ञया ।

इति वचनात् । तीर्थमन्त्रश्च दर्शितः प्राक्, मूलमन्त्रसकलीकृतं तदभिमन्त्रित-मित्यर्थः, अयञ्चार्थः—शारदासम्वादी—

मूलमन्त्रं जपेत् स्पृष्ट्वा न्यसेत्तस्याङ्गमङ्गवित् ।

इति वचनात, सकलीकरणात् प्राक् धेनुमुद्रयाऽमृतीकरणम् । तथा चोक्तम्—

अमृतीकरणं कृत्वा चिन्तयेदिष्टदेवताम् ।

अङ्गन्यासेन सकलीकृत्यास्त्रेण दिशो दशकलयेदिति,

गन्धपुष्पादिभिस्तत्र पूजयेदिष्टदेवताम् ।

अक्षतादियुतमच्युतीकृतं

संस्पृशन् जपतु नित्यमिष्टशः ।

जलस्पर्शश्च मत्स्यमुद्रयाच्छाद्य, तदुक्तम् —

"अष्टकृत्वो जपेन्मूलमाच्छाद्य मत्स्यमुद्रयेति"

दक्षिणे प्रोक्षणीपात्रमाधायाद्भिः प्रपूरयेत् ।

किञ्चिदर्घाम्बुसंगृह्य प्रोक्षिण्यम्भसि योजयेत् ॥ १४४ ॥

प्रोक्षिणीपात्रतो येन तेनात्मानं त्रिवारतः ।

प्रोक्ष्य पुष्पादिकं चापि मूलेन प्रोक्षयेत्सुधीः ॥ १४५ ॥

दक्षिणेऽर्घस्य, प्रोक्षणञ्च करेणैव न तु कुशैः,

प्रोक्षयेन्निजतनुं ततोऽम्बुना

त्रिः करेण मनुना तथाखिलं

साधनं कुसुमचन्दनादिकम्

इति वचनात् ॥

पाद्यस्याचमनीयस्य मधुपर्कस्य चाप्यथ ।

पात्राण्याधारयुक्तानि स्वर्णादिरचितानि च ॥ १४६ ॥

स्थापयेत्पुरतस्तानि पूरयेच्छास्त्रवर्त्मना ।

पाद्यादिपात्राणि चार्घस्योत्तरोत्तरतः स्थाप्यानि ।

अर्घस्योत्तरतः कार्यं पाद्यमाचमनीयकम् । इतिवचनात् ।

शास्त्रोक्तवर्त्माह —

पाद्यं श्यामाकदूर्वाब्जविष्णुक्रान्ता जलैः स्मृतम् ।

जातीलवङ्गकङ्कोलजलैराचमनीयकम् ॥ १४७ ॥

आज्यं दधिमधुमिश्रं मधुपर्कः समीरितः ।

पुनराचमनीयन्तु केवलमम्बु । तथा चोक्तम् —

तेनैव मनुना कुर्यादद्भिराचमनीयकम् । इति ।

एकस्मिन्नथवा पात्रे पाद्यादीनि प्रकल्पयेत् ।
सर्व्वोपचारवस्तूनामभावे भावयेद्धिया ॥ १४८ ॥

सर्व्वोपचारेति— य उपचारो न सम्पद्यते तं मनसा कल्पयेत् । सर्वत्रैवमित्यर्थः ।

अथ मूर्द्ध् नि मूलचक्रमध्ये
निजनाथं गणनायकं समर्च्य ।
न्यसन्क्रमतश्च पीठमन्त्रै—
र्जलगन्धाक्षतपुष्पधूपदीपैः ॥ १४९ ॥
प्रयजेदथ मूलमन्त्रतेजो
निजमूले हृदये भ्रुवोश्च मध्ये
त्रितयं स्मरतः स्मरेत्तदेकी—
कृतमानन्दघनं तडिल्लताभम् ।
तत्तेजोङ्गैः सावयवीकृत्य विभूत्या—
द्यङ्गान्तं विन्यस्य यजेदासनपूर्व्वकैः ।
भूषान्तैर्भूयो जलगन्धादिभिरर्चां
.... —कुर्यात्विधानविन्मन्त्री ॥ १५० ॥

निजनाथं गुरुं, पीठमन्त्रैः पीठोपयुक्तमन्त्रैः, ओं आधारशक्तये नमः इत्यादिभिः । स्मरत इति कामबीजेनेत्यर्थः, एतच्च प्रस्तुतगोपालमन्त्रविषयम्, तदन्यत्र तत्तन्मन्त्रबीजेनैव विभूत्यादिन्यासो, गोपाल... ... ...मन्त्रे तस्य पूजा च ।

अङ्गपूजा च सर्वत्र,
ततः संपूजयेद्देवं गन्धाद्यैर्मूलमुच्चरन् ।
पञ्चकृत्वः पुनः कुर्यात् पुष्पाञ्जलिमनन्यधीः ॥ १५१ ॥
उत्तमाङ्गहृदाधार पादसर्वाङ्गके क्रमात् ।

क्रमदीपिकायान्तु —

पुष्पाञ्जलिं वितनुयादथ पञ्चकृत्वो
मूलेन पादयुगले तुलसीयुगेन
मध्ये हृयारियुगलेन च मूर्द्धिनपद्म—
द्वन्द्वेन षड्भिरपि सर्वतनौ च सर्वैः ।
श्वेतानि दक्षभागे
सितचन्दनपङ्किलानि कुसुमानि ।
रक्तानि वामभागेऽ—
रुणचन्दनपङ्कसिक्तानि ॥ १५२ ॥

हयारिः करवीरम् । रक्तानि, श्वेतातिरिक्तानीत्यर्थः अन्यथा तुलस्यां तदन्वयानुपपत्तेः । तदेवं शारदाक्रमदीपिकोक्तपक्षयोर्विकल्प एव, मन्त्रविशेषविषयतया वा क्रमदीपिका व्याख्यातव्येति । तदवच्च,

धूपदीपौ निवेद्य धिनुयात्सुधारसैः कृष्णम् ।
मुखवासाद्यं दत्वा समर्चयेद् गन्धपुष्पाद्यैः ॥ १५३ ॥

ताम्बूलगीतनर्तनवाद्यैः सन्तोष्य चूलुकसलिलेन ।
ब्रह्मार्पणाख्यमनुना कुर्यात् ब्रह्मार्पणं मन्त्री ॥ १५४ ॥

सुधारसैः, ललाटचन्द्रस्रुतैः, कृष्णमिति प्रकृताभिप्रायं ब्रह्मार्पणं मन्त्रो बाह्यपूजायां वक्ष्यते, अत्र पूजायां नैवेद्य नं नास्ति ।

विना निवेद्यं गन्धाद्यैरुपचारैः प्रपूजयेत् ।
गुरूपदिष्टविधिना शेषमन्यत् समापयेत् ॥ १५५ ॥

शेषं गोपालादिमन्त्रेषु विभूत्यादि पूजादि,
सर्वमेतत् प्रयुञ्जीत प्रोक्षणोस्थेन वारिणा ।
सुप्रसन्नमथनन्दतनुजं
भावयन् जपतु मन्त्रमनल्पम् ॥ १५६ ॥

सानुसंस्मृति यथाविधिसंख्य-
पूरणे स्वयमलं विदधीत ॥ १५७ ॥

प्रणवपुटितं वीजं जप्त्वा शतं सहिताष्टकम् ।
निजगुरुमुखादाप्तान् योगान् युनक्तु महामतिः ॥ १५८ ॥

सदमृतचिदानन्दात्माथो जपञ्च समर्पयेत्
इति जपविधिः सम्यक् प्रोक्तो मनुद्वितयाश्रितः ॥ १५९ ॥

जपञ्च समापयेदित्युपसंहारे, एवं जपं समापयेदित्यर्थः । अथो इति वीज, जपात्पक्षानन्तर्यानुकं, युनक्तु इत्यनेन सम्बद्ध्यते । क्वचित् जपञ्च समर्पयेदिति पाठः । तत्रार्थः सुव्यक्त एव,

जप्त्वा समर्पणं कुर्यात् दक्षिणे देवताकरे ।
गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे मातस्त्वत्प्रसादात् परमेश्वरि ॥ १६० ॥

इति जपसमर्पणमन्त्रः । अभीष्टदेवतायाः पुंस्त्वे पुल्लिङ्गोहः कर्तव्यः, देवतात्वेन तस्य सम्बोध्यत्वेन स्त्रीलिङ्गोपपत्तिरिति केश्चिद्

उच्यते, तदयुक्तम् तस्यानुपस्थितेः ।

विसृज्य तोयं प्रोक्षण्याः पूरयेत्तां यथापुरा ।। १६१ ।।

अथ बाह्यपूजा—तत्र पूजाधारः—

शस्तं निजैक्येन तथैव चक्रे
चित्रे पटे वा यजनं न भूमौ ।
मोहादसौ स्थण्डिलगां यजेच्चेद्
... ...त्रिवर्गादपि सिद्धमन्त्रः ।। १६२ ।।

शालग्रामे मणौ यन्त्रे मण्डले प्रतिमासु च ।
नित्यं पूजा हरेः कार्या नतु केवलभूतले ।। १६३ ।।

भूमिनिषेधः, मण्डलादिरहितभूमिपरः । पीठं श्रीखण्डादिर्निर्मितं ज्ञेयम् । यदुक्तम्–

रत्नैर्विरचिता रम्याः सौवर्णाराजतास्तथा ।
श्रीखण्डरक्तश्रीखण्ड-श्रीपर्णीवृक्षसम्भवाः ।। १६४ ।।
फलकाः पुण्यवृक्षोत्थाः स्वर्णादिसदृशाः फलैः ।
आदौ लिखेद् यन्त्रराजं तत्तत्कल्पोक्तलक्षणम् ।। १६५ ।।

सौवर्णे राजते ताम्रे पीठे भूर्जे पटे भुवि ।
विना यन्त्रेण चेत्पूजा देवता न प्रसीदति ।। १६६ ।।

कल्पोक्तयन्त्राभावे भूपुरावृतं चतुर्द्वारमष्टदलं लिखेत् । एकत्रैव यन्त्रेऽङ्ग-प्रधानतया पञ्चायतनदीक्षापक्षे पञ्चदेवताः पूजयन्ति । तत्र दिङ्नियामकं पठन्ति—

शस्तौ मध्यगते हरौ न हरभू—
देव्यौ हरौ शङ्करे
भास्येनागसुता रवौ गणपती—
शाक्ताम्बिका स्थापिता ।
देव्यां विष्णुहरैकदन्तरवयो
गौरीसुते शङ्करे

नार्या विष्णव एव शङ्करदिशो—
व्यत्यासतो हानिदाः ॥ १६७ ॥

अस्यायमर्थः, विष्णुशिवदुर्गागणेशसूर्य्याणाम्मध्ये या इष्टदेवता सा मध्ये पूजनीया। तदितरचतुष्टयं कोणचतुष्टयं, तत्र शस्तौ मध्यगते ईशानादिकोणचतुष्टये विष्णुसूर्य्यगणेश-दुर्गाः पूजनीयाः, विष्णौ मध्यगते शिवगणेशसूर्य्यदुर्गाः पूजनीयाः, रवौ मध्यगते विष्णुगणेश-शिवदुर्गाः, इदमुपलक्षणं देवीपदस्य सामान्यदेवीपरत्वात्, नच सामान्यपरत्वे अन्यदेव्या अपि कोणे पूजापत्तिः सर्वत्र देवीपदस्य उपलक्षणपरत्वाल्लाघवादितिवाच्यम्, पञ्च-देवतान्तर्भूत देवताया एव कोणेषु नियमः, अन्य देव्या तदनन्तर्भूतत्वात्। देव्यामित्यत्र दुर्गामात्रपरत्वे बीजाभावात्, अतएवानेनापि मन्त्रान्तरादौ कोणेषु विष्ण्वादि पूजोक्ता, दुर्गायां मध्यगतायां विष्णुशिवगणेशसूर्य्याः, गणेशे मध्यगते शिवसूर्य्यदुर्गाविष्णव एव ईशानादिकोणेषु पूजनीया इति।

वायव्यादीशानपर्य्यन्तमर्च्या
पीठस्योदग्गौरवीपँक्तिरादौ
पूज्योऽन्यत्राप्याम्बिकेयः कराब्जैः
पाशं दन्तं शृण्यभीतो दधानः ॥ १६८ ॥

आराध्याधारशक्त्याद्यमरचरणपा—
रध्यथोमध्यभागे—
धर्मादीन् वह्निरक्षः पवनशिवगतान्
दिक्षु धर्मादिकांश्च।
मध्ये शेषाब्जतेजस्त्रितयमथगुणा—
त्मवजं केसराणाम्।
मध्ये मध्ये च शक्तीर्न्नव समभियजे—
त्पीठमन्त्रेण भूयः ॥ १६९ ॥

गुरुपङ्क्तिर्गुरुपरगुरुपरापरगुरवः, शेषाब्जैस्त्रिपीठन्यासप्रकरणस्थवचनवत्, गुणात्मनोर्द्वयोरपि व्रजान्वयः। अमरचरणपः कल्पवृक्षः तदधोरत्नवेदिका पूजनीया, "अधस्तात् पूजयेत्तेषां वेदिकां मण्डलोज्ज्वलाम्" इति शारदावचनात्। आधार-शक्त्यादीनां ध्यानादिविशेषः।

अध: कूर्मशिलारूढं शरच्चन्द्रनिभप्रभाम् ।
आधारशक्तिं प्रयजेत्पङ्कजद्वयधारिणीम् ॥ १७० ॥

मूर्द्धि्न तस्याः समासीनं कूर्म्मं नीलाभमर्चयेत् ।

क्वचित्पुनः—

कूर्मः कमठरूपः स्यात् शुक्लवर्णोधराधरः इति ।

उर्द्धवं ब्रह्मशिलासीनमनन्तं कुन्दसन्निभम् ।
यजेच्चक्रधरं मूर्द्धि्न धारयन्तं वसुन्धराम् ॥ १७१ ॥

तमालश्यामलास्तत्र नीलेन्दीवरधारिणीम् ।
अभ्यर्चयेद् वसुमतीं स्फुरत्सागरमेखलाम् ॥ १७२ ॥

रक्तश्यामहरिदिन्द्रनीलाभात्पादरूपिणः ।
वृषकेसरिभूतेभरूपां धर्मादिकाश्चरेत् ॥ १७३ ॥

गात्रेषु पूजयेत्तांस्तु अपूर्वानुक्तलक्षणान् ।
आग्नेयादिस्त्रकोणेषु दिक्षु चाथाम्वुजं यजेत् ॥ १७४ ॥

आनन्दकन्दं प्रथमं सस्मिन्नालमनन्तरम् ।
सर्वतत्त्वात्मकं पद्ममभ्यर्च्य तदनन्तरम् ॥ १७५ ॥

मन्त्रो प्रकृतिमन्त्राणि विकारमयकेसरान् ।
पञ्चाशद्वर्णवीजाढ्यां कर्णिकां प्रयजेत्ततः ॥ १७६ ॥

पादरूपिणः पीठस्य, एवं गात्रेष्वित्यत्रापि उक्तलक्षणानीति, धर्मादिव्यक्तैर्लक्षणै-र्यथाक्रमं युक्तानीत्यर्थः । तूर्णीयागे—

सितरक्ता सिताः प्रोक्ता गुणाः पीठोपरिस्थिताः ।
श्वेता कृष्णा रक्ता पीता श्यामानलोपमा शुक्ला ॥ १७७ ॥

अञ्जनजवासमाने तेजोरूपाश्च शक्तयः प्रोक्ताः पूजयेदित्यनुवृत्तौ—"पीठशक्तीः केसरेषु मध्ये च सवराभयाः" । एवं पीठं सम्पूज्य—

मूलेन मूर्त्तिं संकल्प्य ध्यात्वा देवं यथाविधि ।
आवाह्य पूजयेत्तस्यां मन्त्री मन्त्रस्य देवताम् ॥ १७८ ॥

मूर्त्तिं संकल्प्य—पीठोपरि स्थापयित्वा, कल्पेषु मूर्त्तिकल्पनमन्त्रानुक्तौ मूलेनैव-मूर्त्ति-कल्पनम्, आवाहनपूर्वं कल्पद्रुमच्छायास्थितां मूर्त्तिं ध्यात्वा मूलमुच्चार्यामुकमूर्त्तये नम इति मूर्त्तिं पूजयेत् ।

'मूलेन मूर्त्तिमिष्ट्वास्मिन्—

छायायां कल्पशाखिनाम्'

इति वचनात् ।

आवाहनप्रकारस्तूर्णयागे—

मूलाधारे स्फुरद्दीपशिखाकारां शिवां स्मरेत् ।

शारदायां—

मूलमन्त्रं समुच्चार्य्य सुषुम्ना वर्त्मना सुधीः ।

आनीय तेजः स्वस्थानान्नासिकारन्ध्रान्निर्गतम् ॥ १७९ ॥

करस्थमातृकाम्भोजे चैतन्यं पुष्पसंचये ।

संयोज्य ब्रह्मरन्ध्रेण मूर्त्यामावाहयेत्सुधीः ॥ १८० ॥

पुष्पसंचये मातृकाम्भोज इत्यमेदेन चिन्तितेनान्वयः । मातृकाम्भोजस्वरूपन्तु—

व्योमेन्द्रौ रसनार्णकर्णिकमठां—

द्वन्द्वैः स्फुरत्केसरम्—

पत्रान्तर्गत पञ्चवर्गयशसा—

र्णादित्रिवर्गक्रमात् ।

आशा सुत्रिसु ·· ··· ··· ···

क्षोणीपुरेणावृत्तम्

पद्मं कल्पितमत्रपूज्यतु तां

वर्णात्मिकां देवताम् ॥ १८१ ॥

इत्यनेन प्रतिपादितम्, एवमावाह्य—

संस्थापनं सन्निधानं सन्निरोधमनन्तरम् ।

सकलीकरणं पश्चाद् विदध्यादवगुण्ठनम् ॥ १८२ ॥

अमृतीकरणं कृत्वा कुर्वीत परमीकृतिम् ।

क्रमादेतानि कुर्वीत सुमुद्राभिः समाहितः ॥ १८३ ॥

चन्द्रिकायाम्—

सन्निधानानन्तरंसम्मुखीकरणमप्यस्ति,

देवं ध्यात्वा तच्छरीरात्मदूषकनिकरं वहिः ।

त्रिनिःसृत्य स्थिरीभूतं परिवारं विचिन्तयेत्

परिवारगणं स्वे स्वे स्थाने संझ्युपवेशयेत् ॥ १८४ ॥

परिवाराणां स्थानान्यावरणपूजायां विज्ञातव्यानि । आवाहनादिस्वरूपं सिद्धान्त-सारे—स्वतएवाभिपूर्णस्य तत्त्वस्थैवार्चनादिषु ।

सादरं संमुखीभाव आवाहनमितीरितम् ।
शिवस्यावाहितस्यास्य विद्याद्देहेऽत्र सन्ततम् ॥ १८५ ॥

स्थिरीकरणमुद्दिष्टं स्थापनं भक्तितोऽर्च्चने ।
पूजां प्रयुज्यमानान्तु गृहीत्वानुग्रहादिकम् ॥ १८६ ॥

कर्तुं सामार्थ्यमस्येह तत्सान्निध्यं प्रचक्षते ।
आसमाप्तेस्तु पूजायां, सान्निध्यं हि शिवस्य यत् ॥ १८७ ॥

स सन्निरोध उद्दिष्टो विभोरप्यस्यभक्तितः ।
आनन्दायतनं तनुं सच्चिदानन्दलक्षणम् ॥ १८८ ॥

तदत्र सकले व्याप्तं ध्येयं स्यादवगुण्ठनम् ।
अपि भिन्नस्वभावानां यदभिन्न प्रयोजनम् ॥ १८९ ॥

अङ्गानामङ्गिना स।र्द्धममृतीकरणं हि तत् ।
क्षमातस्यापराधानां विज्ञेया परमांकृतिः ॥ १९० ॥

सोमशम्भुनाप्युक्तम्—

सादरं संमुखीभाव आवाहनमिहोच्यते ।
तस्मान्निवेशनं तत्र स्थापनं कथितं बुधैः ॥ १९१ ॥

जगन्नाथोऽहमस्मीति यत्स्वीकारोपदर्शनम् ।
विभुत्वेपि तदीशस्य सन्निधानं न बाध्यते ॥ १९२ ॥

आकर्मकाण्डपर्य्यन्तं सन्निधिर्यो परिक्षयः ।
स शम्भोर्व्यापकत्वेऽपि निरोधः परिकीर्त्यते ॥ १९३ ॥

पाठान्तरः—

शिवस्यानन्दबीजस्य बोधानन्दमयस्य च ।
स्वभक्तेषु प्रकाशो यस्तद् भवदेवगुण्ठनम् ॥ १९४ ॥

सकलीकरणं कृत्वा मन्त्रैः षड्भिरथैकताम् ।
अङ्गानामङ्गिनासार्द्धं विदध्यादमृतीकृतिम् ॥ १९५ ॥

यथावृक्षः समर्थश्च मार्तण्डः स्वमरीचिभिः ।
तद्वदङ्गैर्निजैर्देवो ध्यातव्यः परमेश्वरः ॥ १९६ ॥

ईति ॥

सकलीकरणस्वरूपन्तु स्फुटतया न कथितम् । एवमावाहनादि विधेयम् ।

अथोपचारान् कुर्वीत मन्त्रवित्तन्त्रदेशितान् ।
प्रयोजयेदर्चनायामुपचारांस्तु षोडश ॥ १९७ ॥

आसनस्वागते चार्घ्यं पाद्यमाचमनीयकम् ।
मधुपर्काचमनस्नानवसनाभरणानि च ॥ १९८ ॥

सुगन्धसुमनोधूपदीपनैवेद्यचन्दनम् ।
अर्घाद्याः पञ्चपञ्चैव गन्धाद्या इति ते दश ॥१९९॥

गन्धादिभिर्निवेद्यान्तैः पूजापञ्चोपचारिकी ।

एवं पञ्चोपचारादौ ताम्बूलावश्यकता व्यवहारो भ्रमनिबन्धन एव,
दुर्लभेषूपचारेषु यत्कर्तव्यं तदाह—

उपचारेषु सर्वेषु यत् किञ्चिद्दुर्लभं भवेत् ।
तत्सर्वं मनसा ध्यात्वा पुष्पक्षेपेण कल्पयेत् ॥ २०० ॥

असम्भवमानोपचारतया पुष्पं भावयित्वा दद्यादित्यर्थः

तत्र तत्र जलं दद्यादुपचारान्तरान्तरे ।
देवतायाः शिरः कुर्यात् कुसुमोपहितं सदा ॥ २०१ ॥

पूजाकाले देवतायाः नोपरि भ्रामयेत्करम् ।
उपचारविधिं चाथ वक्ष्येदत्वा सदासनम् ॥ २०२ ॥

स्वागतं कुशलप्रश्नं निगदेदग्रतो गुरुः ।
पाद्यं पादाम्बुजे दद्यात् देवस्य हृदयानुना ॥ २०३ ॥

स्वधामन्त्रेण वदने दद्यादाचमनीयकम् ।
अर्घं दिशेत्ततो मूर्द्ध्नि शिरोमन्त्रेण देशिकः ॥ २०४ ॥

स्वधानुना ततः कुर्यान्मधुपर्कं मुखाम्बुजे ।
तेनैव मनुना कुर्यादद्भिराचमनीयकम् ॥ २०५ ॥

मन्त्रानुमन्त्रः, अर्घादिस्वरूपमुक्तं प्राक् । यद्वा अर्घं दत्वा पाद्यं दातव्यम् । तथाचोक्तं क्रमदीपिकायाम्—

दत्वासनं स्वागतमित्युदीर्य
तथार्घपाद्याचमनीयकानि ।
देयानि ... ...

इत्यादि, आचमनीयञ्च वारत्रयं देयम् ।

स्वधेत्याचमनीयं च त्रिवारं मुखपङ्कजे ।
मुकुटोपरि पुष्पञ्च वौषडित्यर्पयेत्सुधीः ॥ २०६ ॥

इति तूर्णीयागवचनात्, इदञ्च पुष्पदानमन्त्रेणैवोक्तम्, तत्र च वौषड् नम इति मन्त्रः । अर्घादिदानेऽष्वपि नमोन्ता एव तन्मते मन्त्राः ।
तथोक्तं तत्रैव—

नमः स्वधा च स्वाहा च वौषड् इति यथाक्रमम् ।
हृत्पुरस्सरमुच्चार्य्य पाद्यादीनि प्रकल्पयेत् ॥ २०७ ॥

इति । केचित् स्वधामन्त्रेण वदन इति वचने स्वधा इति स्थाने सुधेति पाठभ्रमेण आचमनीय-दाने वमिति मन्त्रम्मन्यन्ते । तेऽपि लिखिताभ्यां तूर्णयागे वचनाभ्यां सम्यगवबोधनेनानुग्रहीतव्याः । प्रथमवचने इति शब्देन स्वरूपवाचिना सम्बन्धात्स्वधेत्येवहि पाठः, ननु स्वधेति, सुधेतिमन्त्रस्य क्वाप्यदर्शनात्स्वधेति पाठेपि तन्मतस्यासिद्धिरेव, द्वितीये नमः स्वाहेत्यादिसन्निधानेनापि स्वधेत्येव पाठ-निर्णयः ।

गन्धाद्भिः कारयेद् स्नानं वाससीपरिधापयेत् ।
दद्याद्दिव्योपवीतञ्च हाराद्याभरणैः सह ॥ २०८ ॥
न्यासक्रमेण मनुना पुटितैर्मातृकाक्षरैः ।
अभ्यर्च्य देवं गन्धाद्यैरङ्गादीन्पूजयेत्ततः ॥ २०९ ॥

आदिपदेन गोपालकल्पाद्युक्तं विभूत्यादिकं संगृह्यते । अङ्गपूजाचेयं देवशरीरे आवरणेत्वङ्ग-पूजा केसरादावन्यैव, अतएवैतदभिधाय शारदायामेव धूपादिदानानन्तरमुक्तम् ।

अङ्गादिलोकपालांस्तु यजेदावरणान्यपि ।

इति। क्रमदीपिकायामपि—

गात्रे पवित्रैरथगन्धपुष्पैः
पूर्वं यजेन्न्यासविधानतोऽस्य।
सृष्टिस्थितीस्वाङ्गयुगश्च वेणुं
मालामभिज्ञानवराश्ममुख्यौ ॥ २१० ॥

इत्युक्तेर्मन्त्रान्तरेषु सृष्ट्यादिन्यासाभावेन तदर्च्चनाभावेपि अङ्गपूजा समुचितैवेति। अनन्तरमाचारान्मूलेन पुष्पाञ्जलित्रयेण पूजाम्विधाय प्रागिव पुष्पाञ्जलिपञ्चकं दद्यात्। तत आवरणपूजा तत्र—

केसरेष्वग्निकोणादिहृदयादीनि पूजयेत्।
नेत्रमग्रे दिक्षु चास्त्रं ध्यातव्या अङ्गदेवताः।
तुषारस्फटिकश्यामनीलकृष्णारुणार्चिषः ॥ २११ ॥

वरदाभयधारिण्यः प्रधानतनवः स्त्रियः।
अग्नीशासुरवायूनां दिक्षु चत्वार्य्यनुक्रमात् ॥ २१२ ॥

इति सोमशम्भुवचनम् शिवपूजाविषयम्। केसरेष्वितिस्थाने विशेषानुपदेश-कल्पेषु, तदुपदेशे तु तत्रैवाङ्गपूजा—अङ्गावरणप्राथम्यमप्येवमेव चतुर्थ्यन्तमङ्गानां नामोक्त्वा नमोन्त—तदङ्गमन्त्रेण ओं हृदयाय नमः, ओं शिरसे स्वाहा नम इत्यादि क्रमेण पूजेति केचित्। केचित्तु ओं ह्रां हृदयाय नमः, ओं ह्रीं शिरसे स्वाहा नम इत्यादिक्रमेण षड्दीर्घयुक्त हकारेण पूजामाहुः। "प्रधानतनव" इति मुख्यदेवतायाः शरीरभूता इत्यर्थः।

पश्चादभ्यर्च्चनीयाः स्युः कल्पोक्ता वृत्तयः क्रमात्।
अन्त्ये यजेल्लोकपालान्मूलपरिषदान्वितान् ॥ २१३ ॥
हेतिजात्यधिपोपेतान् दिक्षु पूर्वादिषु क्रमात्।
इन्द्रमग्नि यमं रक्षो वरुणं पवनं विधुम् ॥ २१४ ॥
ईशानं पन्नगाधीशमध ऊर्ध्वं पितामहम्।

रक्षः निर्ऋतिः, अधो निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये, ऊर्ध्वं इन्द्रेशानयोर्मध्ये। जात्यधिप इति भावप्रधानो निर्देशः, तेनाधिपत्वोपेतानीत्यर्थः। तथा च सुराधिपतये इत्यादि विशेषाणि लभ्यन्ते। चन्द्रिकायाम्—

पत्राधोश्वरवर्णास्त्रपरिवाराङ्गसंयुतान् ।
इन्द्रादीनर्च्चयेदित्युक्तम् ।

पत्रं वाहनम् ।

कनककपिशनीलश्यामलश्वेतधूम्रा—
मलसितशुचिरक्तावर्णतो वासराद्याः ।
करकमलविराजत्स्वायुधाः दिव्यवेशाः ।
विविधमणिगणस्त्रक् ··स्फुरद्भूषणाढ्या ॥ २१५ ॥

ऐरावतस्तथामेषो महिषः प्रतसंज्ञकः ।
मकराख्यो मृगः पश्चाच्छूरगोवृषभस्तथा ॥ २१६ ॥

कूर्मो हंसः क्रमादेषां वाहनानि विदुर्बुधाः । क्वचिदनन्तस्य रथो वाहनमुक्तः ।

अर्थावक्रसितकिंशुकाभमग्निं
छगलगत सितशक्तियुक्तहस्तम् ।
मणिमयमुकुटं यजेत्सुगन्धैः
कुसुमवरैर्वृतरत्नकुण्डलञ्चे ति ॥ २१७ ॥

सारसमुच्चयवचनस्थछगलपदस्य छगलो मेष इति व्याख्यानमस्ति । शातातपोऽपि—
भगन्दरजनकपापप्रायश्चित्तमपीदाने—

देवानां यो मुख हव्यवाहनः सर्वपूजितः ।
तस्य त्वं वाहनं पूज्यं देवेशेन्द्रैर्महर्षिभिः ॥ २१८ ॥

इत्यादि मन्त्रमुक्तवान् । प्रसिद्धिस्तु वह्नेश्छगलवाहनत्वेनैव, अस्त्राण्येषामस्त्रावरण एव वक्ष्यन्ते । पूजामन्त्रस्वरूपं तूर्णीयागे—

इन्द्राय वज्रहस्ताय सुराधिपतये पदम् ।
सवाहनपदं पश्चात् परिवाराय इत्यपि ॥ २१९ ॥
नमोऽन्तञ्चैवमन्येषां वाहनादिकमुद्धरेत् ।

ग्रन्थान्तर स्वरसेन साङ्गायेत्यपि योजयन्ति । पीतवर्णायेत्याद्यपीति कश्चित् । तथा चोक्तं प्राक् । केचित्तु साङ्गाय सायुधायेत्यादिप्रकारेण सामान्यत एव अस्त्रादिकं मन्त्रे योजयन्ति—

दम्भोलिशक्त्यभिध'दुन्त' इति पाठऽन्तरः।
चण्डाङ्कुशाद्वयगदात्रिशिखारिपद्माः।
अर्च्या बहिर्निजसुलक्षितमौलियुक्ताः
स्वस्वायुधाभयसमुद्यतपाणिपद्माः ॥ २२० ॥

कनकरजततोयाभ्रचम्पारुणहिम··· ··· ···
··· ··· ··· ··· ···नील जवाप्रबालभासः।
क्रमत इति रुचा तु वज्रपूर्वा—
रुचिरविलेपनमाल्यवस्त्रभूषाः ॥ २२१ ॥

'निजसुलक्षितमौलियुक्ता' इति किरीटनिर्मितस्वस्वनामकायुधचिह्ना इत्यर्थः। स्वस्वायुधेति—स्वं स्वमायुधमित्यर्थः। तेन वज्रस्य हस्ते वज्रमेवायुधमित्यर्थः। केषाञ्चिन्मते वायुर्ध्वजायुधः, तथोक्तं तूर्णयागे—

वायवे ध्वजहस्ताय प्राणाधिपतये ततः॥

इति। शक्तिगदे स्त्रीरूपे। उत्तरदिक् पूज्यश्च कुवेर इति। क्वचित्—कुवेरस्यवाहनं मनुष्यो अस्त्रं गदेति। एवमावरणपूजाम्विधाय धूपादिदानम्। शारदायां त्वावरणपूजा पूर्वमेव धूपदीपयोर्दानमुक्तम्, तत्र प्रकारः—

साराङ्गारैर्धृतविलुलितैर्ज्जर्ज्जरैः संविकीर्णे—
गुंग्गुल्वाद्यैर्धनपरिमलैर्धूपमापाद्य मन्त्री ॥ २२२ ॥
दद्यान्नीचैर्दनुजमथनाया परेणाथ दोस्था।
घन्टां गन्धाक्षतकुसुमकैरर्चितां वादथानः।
तद्वद्दीयं सुरभिघृतसंसक्तकर्पूरवर्त्या—
दीप्तं दीष्ट्याद्यति विशदधीः पद्मपर्य्यन्तमुच्चैः।
कृत्वादत्वास्तुतिमभिविधायार्पयित्वा च पाद्यं
साचामं कल्पयतु विपुलम्पूर्णपात्रे निवेद्यम् ॥ २२३ ॥

गुग्गुल्वाद्यैरित्यनेन—

अगरुशीरसगुग्गुलुशर्करामधुचन्दनैः।
धूपयेदाज्यसंमिश्रैर्नीचैर्देवस्य देशिकः ॥ २२४ ॥

इति शारदावचनोक्तान्युच्यन्ते, अपरेण वात्मनतीचैर्देवस्याधस्तात्, पद्मपर्य्यन्त-मुच्चैकृत्वेत्यर्थः। घृयेनेत्युपलक्षणम्।

वर्त्त्यार्कर्पूरगर्भिण्या सर्पिषातिलजेन वा।
आरोप्य दर्शयेद्दीपानुच्चैः सौरभशालिनः॥ २२५॥

इति तैलस्यापिविधानात्। तैलञ्च शिवपूजादीपे स्मृतौ निषिद्धम्। नैवेद्य-संस्कारमाह—

अस्त्रोक्षितं तदविमुद्रिकयाभिरक्ष्य-
वायव्यतोयपरिशोषितमग्निदोस्था।
संदह्यवामकरसौधरसाभिपूर्णं
मन्त्रामृतीकृतमथाभिमृशन् प्रजप्यात्॥ २२६॥
मनुमष्टशः सुरभिमुद्रिकया
परिपूर्णमर्चयतु गन्धमुख्यैः।

तन्नैवेद्यानैवेद्यं पुरतः कृत्वाऽस्त्रेण प्रोक्ष्य ओंकारेण तत्र पुष्पं क्षिप्त्वाऽभिरक्षणादिकं कुर्यात्—तथोक्तम्—

संस्थाप्य पुरतः प्रोक्ष्य तारेण सुमनो न्यसेत्।

इति।

हरिरन्वयेदथकृतप्रवराञ्जलि-
रास्यतोस्य विसरेच्चमहः।
वीतिहोत्रदयितान्तमुच्चरन्
मूलमन्त्रमथनिःक्षिपेज्जलम्॥ २२७॥
अर्पयेत्तदमृतात्मकं हवि-
र्दोर्युजासकुसुमं समुद्धरन्।
निवेदयामि भवते जुषाणेदं हविर्हरे।
नैवेद्यार्पण-मन्त्रोऽयं सर्वार्चासु निजाख्यया॥ २२८॥

निजाख्यया—तद्देवनाम्ना।

अमृतोपस्तरणमसिस्वाहेत्याचमयेत्ततः
ग्रासमुद्रां वामदोस्थां विकचोत्पलसन्निभां॥ २२९॥

प्रदर्शयन् दक्षिणेन प्राणादीनाञ्च दर्शयेत् ।
प्राणाप्रानव्यानोदानसमानाः क्रमाच्चतुर्थ्यायुक्ताः ।
ताराधाराबध्वाविद्धाः कृष्णाव्त्रनस्तथैते मनवः ॥ २३० ॥

ततो निवेद्य मुद्रिकां प्रधानया करद्वये ।
स्पृशन्ननामिकां निजं मनु जपन् प्रदर्शयेत् ।
नन्दजाम्बुमनुबिन्दु युङ्नतिः
पार्श्ववामरुदत्रात्मनेऽनि च ॥ २३१ ॥

रुद्धङेऽपि च निवेद्यमात्मभू-
र्म्मांसपार्श्वमनिलस्तथासियुक् ॥ २३२ ॥

नति पर्य्यन्तेन ब्वौं इति रूपं, मन्त्रश्चायं गोपाल-पूजायामन्यत्रोह्यः कर्त्तव्यः ।

ततो घृतादिसन्दीप्तान् पिष्टकादिविनिर्मितान् ।
पारावतभ्रमाकारानुच्चैर्द्दीपान् प्रदर्शयेत् ॥ २३३ ॥

आरार्तिकमितिप्रोक्तं घन्टावादनपूर्वकम् ।
पानीयममृतीकृत्य मुद्रयाधेनुसंज्ञया ॥ २३४ ॥

चुलुकोदकममृतापिधानमसि ठ द्वयम् ।
अनेन देवताहस्ते दत्वाचाथ विचिन्तयेत् ॥ २३५ ॥

गतसारन्तु नैवेद्यं तदश्चैतत्समुद्धरेत् ।
ऐशान्यां तद्भुजे दत्वा किञ्चित्स्थानं विशोधयेत् ॥ २३६ ॥

नैवेद्योद्धारपूर्वं पानीयामृत[illegible]न्तर जलान्तरन्दत्वा पूर्वविनिःसृतं देवतातेजो देवतामुखे उद्वासनीयम् , तदुक्तं क्रमदीपिकायाम्—

सम्पाद्य पानीय सुधां समर्प्य दत्व
दत्वाम्भ उद्वास्य मुखाच्चिरास्ये ।

इति । तद्भुजे—देवभुक्तोच्छिष्टभोजिने ।

ते च—

विष्वक्सेनः स्मृतो विष्णोस्तेजश्चण्डो विवस्वतः ।
चण्डेश्वरी तथा शक्तेश्चण्डेशः शङ्करस्य च ।
लम्बोदरो गणपते रमी उच्छिष्ट भोजिनः ॥ २३७ ॥

इत्युक्ताः ।

गण्डूषदन्तधरणाचमनानुलेर-
हस्तानुमृज्य मुखवासकमाल्यभूषाः ।
ताम्बूलमप्यभिसमर्प्य स्ववाद्यनृत्य-
गीतैः सुहृत्तमभिपूजयतात् पुरैव ॥ २३८ ॥

गन्धादिभिः सपविारमथार्घमस्मै
दत्वा विधाय कुसुमाञ्जलिमादरेण ।
दत्वा प्रणम्य शिरसा चुलुकोदकेन
स्वात्मानमर्पयतु तच्चरणाब्जमूले ॥ २३९ ॥

ओं इतः पूर्वं प्राणबुद्धिशरीरधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत्स्मृतं, यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा मां मदीयञ्च सकलं हरये समर्पये ओं तत्सदिति प्रोक्तो मन्त्रः स्वात्मसमर्पणे। अयञ्च मन्त्रो विष्णुमात्रपूजायां, पूजा चेयं गन्धादिभिर्दीपान्तैरेव तथोक्तम्—

चन्दनादिप्रदीपान्तैरुपचारैः पुनर्यजेत् ।

इति । शारदाया पञ्चोपचारैरित्युक्तम्—

प्रसन्नार्च्चेयमाख्याता सर्वदेवप्रसादिनी ।
यथाशक्ति जपं कृत्वा त जपं सर्व्वसम्पदे ॥ २४० ।

दक्षिणे देवताहस्तेऽर्पयेत्पूर्ववत्सुधीः ।
अर्पणमन्त्रः पूर्वमेवोक्तः । यथा शक्तीति ॥ २४१ ॥

अष्टोत्तर सहस्रम्वा अष्टोत्तरशतम्वा दश वा । मदुक्तम्—

संख्यानुक्तौ शतं साष्टसहस्रम्वादशापि वा ।
स्वच्छत्रचामरैः राज्ञामुपचारैः प्रपूजयेत् ॥ २४२ ॥

पुष्पाञ्जलिं पुनर्दत्वा साष्टाङ्गं प्रणमेत्मुहुः ।
दोर्भ्यां पद्भ्यामंसाभ्यामुरसा शिरसा दृशा ॥ २४३ ॥

वचसा मनसा चेति प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः ।
बाहुभ्याञ्च सजानुभ्यां वचसा शिरसा धिया ॥ २४४ ॥

पश्चाङ्गकः प्रणामोऽयं पूजासुप्रवराविमौ ।
परिवारगणं सर्वमुपसंहारमुद्रया ॥ २४५ ॥

तन्मूर्त्ताविपसंहृत्य देवतां प्रीतिमानसः ।
क्षमस्वेति विसृज्याथ मन्त्रेण व्यापकं त्रिशः ।

विधायदेवतां पश्चात्स्वीयहृत्सरसीरुहे ।
सुषुम्णा वर्त्मना पुष्पमाघ्रायोद्वासयेद् सुधीः ॥ २४६ ॥

जपाङ्गानि पूर्वमुक्तान्यत्रापि द्रष्टव्यानि ।

देवतोद्वासनानन्तरं व्यापकत्रयमित्युपदेशः ।

निर्माल्यं शिरसा धार्यं सर्वाङ्गेष्वनुलेपनम् ।
नैवेद्यं चोपभुंजीत दत्वा तद्भक्तिशालिने ॥ २४७ ॥

ततो गुरोर्नमस्कारत्रयम्—

शिष्टं गन्धं शंखतोये विलोड्य
पाणौ कृत्वा दक्षिणे मूलमन्त्रम् ।
सप्तावृत्या संजयेत्सर्वतीर्थी—
भूतं ध्यात्वा प्रोक्षयेदात्मनोऽङ्गम् ॥ २४८ ॥

देवार्चनावशिष्टं यत्सलिलं शङ्खमध्यगम् ।
अङ्गे लग्नं मनुष्याणां ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ २४९ ॥

एतान्यन्यानि पूजायां साधनानि बहून्यपि ।
उत्तमानि च मध्यानि न्युनानि विविधानि वै ॥ २५० ॥

स्वस्थः समर्थः कुर्वीत उत्तमैरेवसाधनैः ।
मध्यमो मध्यमैरेव न्यूनो न्यूनैस्तु साधनै ॥ २५१ ॥

आपन्नश्चेत्समर्थोऽपि न्यूनैरेव समाचरेत् ॥
पूजाकर्मविशेषेण देशकालानुसारतः ॥ २५२ ॥

यथाशक्ति यथान्यायं यथालोकावगर्हितम् ।
पूजां विस्तरतः कर्त्तुं यो न शक्नोति मानवः ॥ २५३ ॥

स इहाङ्गेन्द्रवज्राद्यैः पूजयेदिष्टदेवताम् ।
अथवा देवतामात्रं ध्यात्वा सम्यक् प्रपूजयेत् ॥ २५४ ॥

अथवा मानसीं कुर्यात् आत्मपूजामथापि वा ।
अथवा केवलां पूजां बाह्यां कुर्य्याद्विचक्षणः ॥ २५५ ॥

अर्चामात्रेऽसमर्थश्चेत् दद्यादर्चनसाधनम् ।
संपूज्यैव जपं कुर्य्यात् न मन्त्रं केवलं जपेत् ॥ २५६ ॥

अथ पूजोपयुक्तासनमुद्रालक्षणानि—

जानूर्व्वोरन्तरे कृत्वा सम्यक् पादतले उभे ।
ऋजुकायो विशेद्योगी स्वस्तिक तदुदीरितम् ॥ २५७ ॥

वामोरूपरिदक्षिणश्चचरणं—
संस्थाप्य वामं पुन—
र्याम्योरूपरिपाश्चिनेनविधिना—
धृत्वा कराभ्यां दृढम् ॥
आङ्गुष्ठे हृदये निधाय चिबुकं—
नासाग्रमालोकयेत्
एतद्व्याधिविघातकारि यमिनां—
पद्मासनं प्रोच्यते ॥ २५८ ॥

अथमुद्राः प्रवक्ष्यामि सर्वतन्त्रेषु गोपिताः ।
याभिः विरचिताभिस्तु मोदन्ते सर्वदेवताः ॥ २५९ ॥

दक्षिणाङ्गुष्ठतर्जन्यावग्रलग्ने पराङ्गुलीः ।
प्रसार्य संहतोत्ताना एषाप्याख्यानमुद्रिका ॥ २६० ॥

दक्षाङ्गुष्ठं पराङ्गुष्ठे क्षिप्त्वा हस्तद्वयेन तु ।
सावकाशात्मकं मुष्टिं कुर्यात्सा कुम्भमुद्रिका ॥ २६१ ॥

अनङ्गुष्ठा ऋजवो हस्तशाखा
भवेन्मुद्रा हृदये चापि शीर्षे
अधोऽङ्गुष्ठा खलु मुष्टिः शिखायां
करद्वन्द्वाङ्गुलयो वर्म्मनिन्युः

नाराच मुष्टद्युतवाहुयुग्मका-

ङ्गुष्ठतर्जन्यूदितो ध्वनिस्तु ।

विष्वग्विभक्तः कथितास्त्रमुद्रा

यत्राक्षिणीतर्जनि मध्यमेरथः

नेत्रत्रयं यत्रभवेदनामा

षडङ्गमुद्राः कथिता यथावत्

अञ्जल्याध्यानमुद्रा स्यात्

वासुदेवाभिधास्य च ॥ २६२ ॥

कानिष्ठाङ्गुष्ठकौसक्तौ करयोरिति चेतरम् ।
तर्जनीमध्यमानामाः संहताभग्न वर्जिताः ॥ २६३ ॥

मुद्रैषा गालिनी प्रोक्ता शङ्खस्योपरिचालिता ।

चालितेति शङ्खस्योपरिचालिता सती गालिन्याख्यां लभत इत्यर्थः ।

ऋज्वीश्च मध्यमां कृत्वा तर्जनीं मध्यपर्वणि ।
संयोग ··· ·· ··· मुद्रैषाङ्कुशसंज्ञिका ॥ २६४ ॥

वामाङ्गुष्ठन्तु संगृह्य दक्षिणेन च मुष्टिना ।
कृत्वोत्तानां ततो मुष्टिमङ्गुष्ठन्तु प्रसारयेत् ॥ २६५ ॥

वामाङ्गुल्यस्तथाश्लिष्टाः संयुक्ताः संप्रसारिताः ।
दक्षिणाङ्गुष्ठसंसृष्टा मुद्रैषा शंखसंज्ञिका ॥ २६६ ॥

मिथः कनिष्ठिके बद्धा तर्जनीभ्यामनामिके ।
अनामिकोद्ध्वं संश्लिष्टदीर्घमध्यमयोरधः ॥ २६७ ॥

अङ्गुष्ठाग्रद्वयं न्यसेत् योनिमुद्रेयमीरिता ।
अन्योन्याभिमुखाश्लिष्टकनिष्ठानामिके पुनः

तथैव तर्जनोमध्ये धेनुमुद्रा समीरिता ।
अधोमुखे दक्षहस्ते तादृशं वामहस्तकं ॥ २६८ ॥

धारयेत्मत्स्यमुद्रेयं सर्वसंस्थापने मता ।
हस्ताभ्यामञ्जलिबद्धानामिकामूलपर्वणोः ।
अङ्गुष्ठौ निःक्षिपेत्सेयं मुद्रात्वावाहिनीमता ॥ २६९ ॥

अञ्जलिस्तु पुष्पैः पूर्णः—

सम्यक्प्रपूरितः पुष्पैः कराभ्यां कल्पितोऽञ्जलिः ।
आवाहिनी समाख्याता मुद्रादेशिक सत्तमैः ॥ २७० ॥

इति वचनात् ।

अधोमुखीत्वियं चेत्स्यात् स्थापिनी मुद्रिका भवेत् ।
उच्छ्रिताङ्गुष्ठमुष्ट्योश्च संयोगात्संविधायिनी ॥ २७१ ॥

अन्तः प्रवेशिताङ्गुष्ठा सैव संबोधिनी मता ।
उत्तानमुष्टियुगला संमुखीकरणीमता ॥ २७२ ॥

देवताङ्गे षडङ्गानां न्यासः स्यात्सकलो कृतिः ।

त··· ··· ···च षडङ्गमुद्रैव सकलीकरण मुद्रेति तात्पर्य्यम् । अन्यथा मुद्राप्रकरणे तत्स्वरूपमिधानमर्थान्तर स्यात् ॥

सव्यहस्तकृतामुष्टि दीर्घाधोमुखतर्जनी ।
अवगुण्ठनमुद्रयमभितोभ्रामिता मता ॥ २७३ ॥

अन्योन्याभिमुखेत्यादिना धेनुमुद्रा उक्ता ।

अमृतीकरणं कुर्यात्तया साधकसत्तमः ।
अन्योन्यग्रथिताङ्गुष्ठा प्रसारितपराङ्गुलिः ॥ २७४ ॥

महामुद्रेयमुदिता परमीकरणे बुधैः ।
प्रयोजयेदिमाः मुद्राः देवताह्वानकर्माणि ॥ २७५ ॥

अधः कृतो दक्षहस्तः प्रसृतो वरमुद्रिका ।
ऊर्ध्वीकृतो वामहस्तः प्रसृतोभयमुद्रिका ॥ २७६ ॥

हस्तौ तु संमुखौ कृत्या संलग्नौ सुप्रसारितौ कनिष्ठाङ्गुष्ठकौ लग्नौ मुद्रैषा चक्रसंज्ञिका ।

स्पृशेत्कनिष्ठोपकनिष्ठके द्वे
स्वाङ्गुष्ठमूर्ध्ना प्रथमेह मुद्रा
तथा परा तर्ज्जनीमध्यमे स्या—
दनामिका मध्यमिके च मध्या ॥ २७७ ॥

अनामिकातर्ज्जनीमध्यमाः स्या—
तद्वच्चतुर्थी सकनिष्ठिकास्ताः ।
स्यात्पञ्चमी तद्वदिति प्रदिष्टाः
प्राणादिमुद्रा निजमन्त्रयुक्ताः ॥ २७८ ॥

तथेत्यादि तर्जनीमध्यमे स्वाङ्गुष्ठमूर्ध्ना स्पृशेत् । एवं द्वितीयाऽपानमुद्रा भवतीत्यर्थः । एवमग्रेऽपि, निजमन्त्रयुक्ताः प्राणादिमन्त्रयुक्ताः ।

अधोमुले वामहस्त ऊर्ध्वास्यं दक्षहस्तकम् ।
क्षिप्त्वाङ्गुलीरङ्गुलिभिस्संग्रथ्य परिवर्तयेत् ॥ २७९ ॥
एषा संहारमुद्रा स्यात् विसर्जनविधौ मता ।
वक्ष्येऽह मुपचाराणां मुद्रास्तन्त्रेषु चोदिताः ॥ २८० ॥
प्रसारयेदुभौ हस्तौ हृद्देशे विनियोजितौ ।
अङ्गुल्यो विस्ततृताः कार्या मध्येऽङ्गुष्ठौ तु विन्यसेत् ॥
देवस्यासनविन्यासे पद्ममुद्रां प्रदर्शयेत् ॥ २८१ ॥
इषन्नम्राङ्गुलिर्दक्षा संयोज्याङ्गुष्ठकं वरम् ।
स्वागत स्वस्तिकामुद्रा मध्यमूलगताङ्गुलिः ॥ २८२ ॥
उपचारे स्वागते तु प्रयोक्तव्या विपश्चिता ।
स्वस्ति मुद्रा द्विहस्तौ च मुद्रास्त्वर्घस्य कीर्त्तिता ॥ २८३ ॥
तौ च प्रसारितौ हस्तौ पाद्यमुद्रा प्रसारिता ।
देशिनी मूलगाङ्गुष्ठा दक्षिणाधः कनीयसी ॥ २८४ ॥
प्रसार्य मध्यमास्तिस्रो मुद्राचातम प्रकीर्तिता ।
युक्तावनामिकाङ्गुष्ठौ तिस्रोऽन्याः संप्रसारिताः ॥ २८५ ॥
मधुपर्के तु सामुद्रा संकल्प्य कलशं करे ।
कृत्वा मुष्टिं तथा स्नाने मध्यमाङ्गुष्ठकौ युतौ ॥ २८६ ॥
अन्याः प्रसारितास्त्रिस्रो मुद्रावस्त्रस्य कीर्त्तिता ।
कनिष्ठाङ्गुष्ठकौ लग्नौ तिस्रो मध्याः प्रसारिताः ॥ २८७ ॥
यज्ञोपवीतमुद्रेयं कथिता मन्त्रपारगैः ।
माधुपर्की समुत्ताना मुद्रालङ्करणौ मता ॥ २८८ ॥

मुक्तनिर्न्नामिका मुष्टिर्गन्धमुद्रेति कीर्त्तिता ।
उत्थिताधोमुखी मध्या बद्धाङ्गुष्ठा यदीतराः ॥ २८९ ॥
पुष्पमुद्रा तदाख्याता पुष्पदान विवर्द्धिनी ।
अङ्गुष्ठस्तर्जनीलग्नस्तिस्रः संकुचिताः परा ॥ २९० ॥
मुद्राधूपप्रदाने स्याद्देवानां तुष्टिकारिणी ।
उत्तानात्पौष्पिकी मुद्रा दीपमुद्रेति गीयते ॥ २९१ ॥
पश्चाङ्गुल्यप्रसंलग्ना प्रोत्थितोर्ध्वमुखी यदि ।
त्रिधा निबद्धा मुद्रेयं नैवेद्यस्य प्रकीर्त्तिता ॥ २९२ ॥
मध्यमानामिकाङ्गुष्ठाः संलग्नाग्रा अधोमुखाः ।
अन्ये प्रसारिताङ्गुल्यौ गोमुखी सा प्रकीर्त्तिता ॥ २९३ ॥
त्यक्तप्रदेशिनी मुष्टिः सूचीमुद्रेति कीर्त्तिता ।
रक्षामुद्रेति सैव प्रोक्ता समन्ताद् भ्रमणं यदि ॥ २९४ ॥
द्वौ करौ पृष्ठसंलग्नौ भ्रामयेत् ग्रथिताङ्गुली ।
छोटिकेति समाख्याता प्रणामे तां प्रदर्शयेत् ॥ २९५ ॥
देशिन्यङ्गुष्ठयोर्मध्ये दत्वाङ्गुलचतुष्टयम् ।
निधाय सम्पुटीकृत्य लग्नाङ्गुष्ठौ समुच्छ्रितौ । २९६ ॥
कुम्भमुद्रेदृशी सम्यक् हृल्लग्ना कच्छपी मता ।
प्रसार्य दक्षिणं हस्तं कनिष्ठाद्यखिलाङ्गुलीः ॥ २९७ ॥
क्रमादाकुञ्चयेद्दीर्घं मुद्रासां हारिणो मता ।
मिथः पृष्ठार्पितौ हस्तावन्योन्यग्रथिताङ्गुली ॥ २९८ ॥
कृत्वा बध्वा परावृत्य नत्वा सा स्यात्क्षमापनी ।
भ्रातुः श्रीरुचिनाथस्य प्रसादेन महीयसा ।
श्रीगोविन्देन विज्ञाय मन्त्रशास्त्रमनेकशः ॥ २९९ ॥
श्रीमद्रायभवानन्दनिदेशवशवर्त्तिना ।
पूजाकर्मणि मानानि निबद्धानि सतां मुदे ॥ ३०० ॥

इति श्री भवानन्दरायकारिते महामहो ठक्कुरश्रीगोविन्दकृते पूजाप्रदीपे प्रमाण—परिच्छेदः—१

प्रपितामहसिद्धान्तसारवेत्ता पितुर्मुखात् ।
अथ यद्धतिमेतस्य गोविन्दो रचयत्ययम् ॥ १ ॥

ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्थाय ब्रह्मरन्ध्रस्थसहस्रदलपद्मे व्याख्यामुद्रापरं परमात्मस्वरुपं द्विनयनं द्विभुजं प्रीतं गुरुं ध्यात्वा तत्पादपद्मस्रुतामृतधाराक्षालितं देहं विचिन्त्य हृदयाम्बुजे इष्टदेवतां ध्यात्वा तत्प्रभापटलव्याप्तं देहं विचिन्त्य प्रणम्य तदनुज्ञां गृहीत्वा मन्त्रस्य ऋषि च्छन्दो देवतानि शिरोवदनहृत्सु विन्यस्य मन्त्रार्थं संस्मरन् जलाशयं गत्वा स्वशाखोक्तक्रमेण स्नात्वाचम्य मन्त्रस्य ऋषि च्छन्दो देवतानि स्मृत्वा तानि मस्तकादिषु विन्यस्य जले इष्टदेवतां ध्यात्वा तीर्थमन्त्रेणाङ्कुशमुद्रया तीर्थमावाह्य "वमिति" धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्य 'फडिति' संरक्ष्य तज्जले देवतामूर्त्ति ध्यात्वा तच्चरणस्रुतत्वेन ध्याते तीर्थे मनसा मन्त्र-मुच्चरन् वारत्रयं निमज्ज्य, द्विजश्चेदन्तर्जलेऽघमर्षणं कृत्वोत्थाय तपणान्तं कर्म कृत्वा मूलमन्त्रमष्टाविंशतिकृत्वो जप्त्वा अष्टाविंशतिवारं देवतां तर्पयेत् ॥ तत्प्रकार :—

जले देवतायाः पीठं विचिन्त्य जलेनैव संपूज्य तत्तन्मन्त्रैः सकृत् सकृत् पीठं संतर्प्य तत्र देवमावाह्य सर्वोपचारबुद्ध्या जलेनैव देवमभ्यर्च्य धेनुमुद्रया तर्पणद्रव्यं तोये संपाद्य सुवर्णचषकतया चिन्तितेनाञ्जलिना देवतामुखे तर्पयेत् । तत्र मन्त्र :

मूलमन्त्रान्ते द्वितीयान्त देवतानामोक्त्वा तर्पयामीति । यथा ओं नमो नारायणाय नारायणं तर्पयामीति । तत एकैकाञ्जलिना स्वस्वकालविहितान् परिवारान् संतर्पयेत् । ततः कलशमुद्रया वारत्रयमभिषिच्य तत्तद्देवतागायत्रीं दशकृत्वो जपेत् । तत्र—

क्लीं त्रिपुरादेवि विद्महे कामेश्वरि धीमहि तन्नः क्लिन्ने प्रचोदयादिति त्रिपुरायाः ।

त्रैलोक्यमोहनाय विद्महे स्मराय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयादिति विष्णोः ।

कामदेवाय विद्महे पुष्पवाणाय धीमहि तन्नोनङ्गः प्रचोदयादिति कामदेवस्य ।

तत्पुरुषाय विद्महे वामदेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयादिति शङ्करस्य ।

सुदर्शनाय विद्महे महाज्वालाय धीमहि तन्नश्चक्रं प्रचोदयादिति सुदर्शनस्य ।

ओं घृणि सूर्य्यं आदित्य इति मन्त्रेण 'ह्रां ह्रीं सः' इति मन्त्रेण वा सूर्यायार्घन्दत्वा मूलमन्त्रेण दशधाभिजप्तजलैराचम्य दिक्पतीन् नमस्कुर्यात् ।

ततो मण्डपनिकटं गत्वा पवित्रादिपाणिराचम्य समुपविश्य सामान्यार्घं कुर्यात् । यथा—

अस्त्रमन्त्रेण अर्घपात्रं प्रक्षाल्य नम इति जलैरापूर्य्यं—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु ॥ २ ॥

इति तीर्थमन्त्रेण तत्राङ्कुशमुद्रया सूर्य्यमण्डलात्तीर्थमावाह्य ओंकारेण पुष्पादिकं निःक्षिप्य फडिति शोधयित्वा तज्जलं स्पृशन् मूलमन्त्रं त्रिर्जप्त्वा धेनुमुद्रां प्रदर्शयेत् । ततस्तज्जलेनास्त्रमन्त्रेण द्वारमभ्युक्ष्य द्वारोर्ध्वशाखायां दक्षिणशाखोपरि विघ्नेशं तत्रैव मध्ये महालक्ष्मीं तत्रैव वामशाखोपरि सरस्वतीं पुष्पतोयाभ्यां सम्पूज्य दक्षिणशाखायां विघ्नेशं वामशाखायां क्षेत्रपालञ्च पूजयेत् । ततो दक्षिणवामशाखयोः क्रमेण गङ्गायमुने पूजनीये एवं धात्रादयोऽपि । विघ्नेशस्य क्षेत्रपालस्य च दक्षिणवामपार्श्वयोः क्रमेण गङ्गायमुने एवं धातृविधातारौ शङ्खनिधिपद्मनिधी देहल्यामस्त्रञ्च पूजयेदिति केचित् । ततस्तत्तद्वारपालं पूजयित्वा एवमेव द्वारान्तरमपि पूजयेत् । तत्र विष्णोर्द्वारपालाः—

नन्दसुनन्दचण्डप्रचण्डबलभद्र प्रबलसुभद्राः –

शिवस्य —

नन्दिमहाकालगणेशवृषभभृङ्गि रिटिस्कन्दोमाचण्डेश्वराः ।

गणेशस्य —

वक्रतुण्ड, एकदन्ष्ट्र, महोदर, गजानन, लम्बोदर, विकट, विघ्नराज, धूम्रवर्ण ।

देवीनां —

ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराहीन्द्राणी, चामुण्डा, महालक्ष्म्यः ।

त्रिपुरायास्तु —

इन्द्र, यम, वरुणकुवेरा. । ततो दिव्यदृष्ट्यवलोकनेन 'दिव्यान् । विघ्नान- स्त्रमन्त्रेण जलक्षेपेणान्तरीक्षगान् ।

अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः ।
ये भूता विघ्नकर्त्तार स्तेनश्यन्तु शिवाज्ञया ॥ ३ ॥

फडिति मन्त्रेण नाराचास्त्रबुध्या सिद्धार्थाक्षतकुसुमं मण्डपान्तः परिक्षिप्य पार्ष्णिघातत्रयं दत्वा भौमान् विघ्नान्निवार्य द्वारस्य वामशाखां दक्षिणांसेन स्पृशन् दक्षिणांघ्रिणां देहलीं विलंघ्याङ्गं संकोचयन् मण्डपं प्रविशेत् । ततो नैर्ऋत्यां दिशि वास्त्वीशं ब्रह्माणञ्चाभ्यर्च्य पञ्चगव्यार्घतोयाभ्यां मण्डपं प्रोक्ष्य—

ओं तीक्ष्णदंष्ट्र महाकाय कल्पान्त दहनोपम ।
भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि ॥ ४ ॥

इति भैरवानुज्ञां गृहीत्वा चतुर्भिः संस्कारैर्म्मण्डपं शोधयेत् । यथा मण्डपं मूलमन्त्रेण वीक्ष्य फडिति प्रोक्ष्य फडिति कुशैस्ताडयित्वा हूमित्यभ्यूक्षेत । ततो मण्डपं चन्दनागुरुकर्पूरै र्धूपायेत्वा कुशाजिनकम्बलोत्तरं विहितमासनं वेदिकायां विन्यस्य जलेनाभ्यूक्ष्य तत्रासने आधारशक्ति–प्रकृति–कूर्मानन्तपृथिवीः सम्पूज्य आसनमन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः सुतलं छन्दः कूर्मो देवता आसने विनियोगः इति स्मृत्वा ।

पृथ्वि ! त्वया धृता लोका देवि ! त्वं विष्णुनाधृता ।
त्वञ्च धारय मां भद्रे ! पवित्रं कुरु चासनम् ॥ ५ ॥

इति जपन्नासने समुपविश्य स्वास्तिकपद्मासनयोरन्यतरम्बध्वा दक्षिणतः पुष्पचन्दनादीनि वामतो वारिकुम्भं पश्चात्करक्षालनपात्रं यथोचितं यथा सौकर्यञ्च धूपदीपादिसाधनानि स्थापयित्वा अञ्जलिपुटं बद्ध्वा वामे गणेशं अग्रे दुर्गां पश्चात् क्षेत्रपालञ्च नमस्कृत्य, "ओं सहस्त्रार हुँ फट्" इति रक्षां विधाय सुगन्धिपुष्पमर्द्दन हस्तौ सुरभीकृत्य तत्पुष्पं नाराचमुद्रया उत्तरतः क्षिप्त्वा 'फडिति' करौ संशोध्य ऊर्ध्वोर्ध्व ... ... दत्वा अस्त्रमुद्रया दिग्बन्धनं कुर्यात् ।

ततो रमिति मन्त्रेण बह्निरूपतया ध्यातेन जलेनात्मानं वेष्टयित्वा हृत्पद्म-कर्णिकास्थं दीपशिखानिभं जीवात्मानं 'हं स' इति मन्त्रेण सुषुम्णा वर्त्मना मस्तकोपरि सहस्त्रदलकमलावस्थिते परमात्मनि संयोज्य आकाशवायुतेजोजल-पृथिवीश्रोत्रत्वक्चक्षुरसनघ्राणमुखपाणिपादपायूपस्थशब्दस्पर्शरूपरसगन्धवचना-

दानगतिविसर्गानन्दात्मकपञ्चविंशतितत्वानि परमात्मनि बीजभावेन व्युत्क्रमान्नालानिविचिन्त्य वामनासापुटे यमिति वायुवीजं धूम्रं वायुमण्डलस्थं विचिन्त्य नाभिचक्रस्थवायुमण्डलावस्थितवायुना ऐक्यं संभाव्य पूरकं कृत्वा कुम्भके शुष्कं शरीरं विचिन्त्य दक्षिणनासापुटेन वायुं रेचयेत्। ततो दक्षिणनासापुटे रमिति वह्निवीजं रक्तवर्णं वह्निमण्डलावस्थित नीलमारुतं विचिन्त्य हृदयस्थव ह्निमण्डलावस्थितवह्निना ऐक्यं संभाव्य पूरके वह्निपूर्णं शरीरं विचिन्त्य कुम्भके दग्धं चिन्तयित्वा वामनासापुटेन भस्मना सह वायुं रेचयेत्। पूरके षोडशमात्रया, कुम्भके चतुःषष्टिमात्रया रेचके द्वात्रिंशन्मात्रया तत्तन्मन्त्रजपः। ततस्तत्त्वानि स्वस्वस्थानं नीत्वा जीवात्मानं परमात्मसमीपात् सोऽहमितिमन्त्रेण हृदम्बुजमानयेत् इति।

अथमातृकान्यासः।

मातृकामन्त्रस्य ब्रह्माऋषिर्गायत्रं छन्दो मातृकासरस्वती देवता हलो वीजं स्वराः शक्तिर्देहशुद्धो विनियोगः—इति स्मृत्वा ब्रह्मणे नम इति शिरसि, गायत्राय नमः इति रसनायां, मातृकासरस्वतीदेवतायै नम हृदि, हलः गुह्ये, स्वरान् पादयोर्विन्यस्य = आचारात् अं कं अत्रानुस्वारः।

अं कं खं गं घं ङं आं हृदयाय नमः, इत्यङ्गुष्ठयोः, इं चं छं जं झं ञं ईं शिरसे स्वाहा इति तर्जन्योः, उं टं ठं डं ढं णं ऊं शिखायै वषड् इति मध्यमयो, एं तं थं दं धं नं ऐं कवचाय हुं इत्यनामिकयोः, ओं पं फं बं भं मं औं नेत्रत्रयाय वौषट् इति कनिष्ठयोः, अं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षः अः अस्त्राय फट् इति करतलयोर्विन्यस्य अस्त्रमन्त्रेणैव तालत्रयं दिग्बन्धनं च विधाय स्वस्वमुद्रया हृदयाद्यङ्गेष्वपि विन्यसेत्। तालत्रयादिकञ्च ततः—

पञ्चाशल्लिपिभिर्विभक्तमुखदोः

पन्मध्यवक्षस्थलाम्।

भास्वन्मौलिनिवद्धचन्द्रशकला—

मापीनतुङ्गस्तनीम्॥ ६॥

मुद्रामक्षगुणं सुधाढ्यकलशं—

विद्याञ्च हस्ताम्बुजे

............विशदप्रभां त्रिनयनां

वाग्देवतामाश्रयेत॥ ७॥

मुद्रादिमधोदक्षिणहस्तमारभ्य प्रादक्षिण्येन ध्येयमिति ध्यात्वा न्यसेत् । तत्र प्रथमं शुद्धां तत्र स्थानानि । अ ललाटे, आ मुखवृत्ते, इ ई दक्षिणवामक्रमेण नेत्रयोः, एवं उ ऊ श्रोत्रयोः, ऋ ॠ नासापुटयोः, लृ लॄ गण्डयोः । ए ऐ ओष्ठाधरयोः, ओ औ ऊर्ध्वाधोदन्तपङ्क्त्योः, अं शिरसि, अः मुखे, दक्षिणबाहोः सन्धिचतुष्टये क ख ग घ, अङ्गुल्यग्रे ङ, वामबाहोः सन्धिचतुष्टये च छ ज झ, अङ्गुल्यग्रे ञ, दक्षिणपादस्य सन्धिचतुष्टये ट, ठ, ड, ढ, अङ्गुल्यग्रे ण, वामपादस्य सन्धिचतुष्टये त थ द ध अङ्गुल्यग्रे न, पार्श्वयोः प-फ, पृष्ठे ब, नाभौ भ, उदरे म, हृदि य, हृदादिदक्षिणांसे र, हृदादि ककुदि ल, हृदादि वामांसे व, हृदादि-दक्षिणबाहौ श, हृदादिवामबाहौ ष, हृदादि दक्षिणपादे स, हृदादि वामपादे ह, हृदादि जठरे ल, हृदादिमुखे क्षः न्यसेत् । एवमेव सविसर्गवर्णन्यासः इति सृष्टि-प्रकारः । अथस्थितिः । तत्र ऋष्यादि पूर्ववत्—

ध्यायेद् वर्णेश्वरीमत्र वल्लभेन समन्विताम् ।
सिन्दूरकान्तिममिताभरणां त्रिनेत्रां
विद्याक्षसूत्रमृगपोतवरान्दधानाम् ।
पार्श्वस्थितां भगवतीमपि काञ्चनाभाम्
ध्यायेत्कराब्जधृतपुस्तकवर्णमालाम् ॥ ८ ॥

विद्याक्षसूत्रे वामदक्षिणक्रमेण ऊर्ध्वहस्तयोः मृगपोतवराधोहस्तयोः एवं ध्यात्वा टकारादि क्षकारान्तवर्णान् पूर्वोक्तस्थानेषु विसर्गबिन्दुसहितान् विन्यस्य तादृशानेव अकारादि ञकारान्तान् पूर्वोक्तस्थानेष्वेव विन्यसेत् ।

अथ संहारक्रम :—

अत्रापि ऋष्यादि पूर्ववत् । ध्यानन्तु—

अक्षस्रजं हरिणपोतमुदग्रटङ्क—
विद्यां करैरविरतं दधतीन्त्रिनेत्राम् ।
अर्द्धेन्दुमौलिसकलामरविन्दवासाम्
वर्णेश्वरीं प्रणमत स्तनभारनम्राम् ॥ ९ ॥

अत्र वासारविन्दं वर्णमयं अक्षस्रगादीनि दक्षिणाधोहस्तमारभ्य एवं ध्यात्वा विन्दुयुक्तान् क्षकाराद्यकारान्तान् वर्णान् तेष्वेव स्थानेषु विन्यसेदिति ।

ततो विष्णुपूजायां केशवकीर्त्यादिसहितान् तथा श्रीवीजसहितान् वर्णान् विन्यसेत्, तत्प्रकारश्च पूजापरिच्छेदोपक्रमे द्रष्टव्यः, एवं शिवपूजादौ श्रीकण्ठादि न्यासोऽपि, स च तत्तत्कल्पेषु द्रष्टव्यः ।

ततः प्रपञ्चयागः ।

तत्र प्रपञ्चयागमन्त्रस्य ब्रह्मादिऋषिर्गायत्रं छन्दः परं तेजो देवता देहशुद्धौ विनियोग इति स्मृत्वा शिरोवदनहृदयेषु, ऋष्यादित्रयं विन्यस्य, स्वाहा हृदयाय नमः, सोहं शिरसे स्वाहा, हंसः शिखायै वषट्, ह्रों कवचाय हुँ, ओं नेत्राभ्यां वौषट्, हरिहर अस्त्राय फट् इति मन्त्रैः कराङ्गन्यासौ विधाय—

तारादिपञ्चमनुभिः परिचीयमानं
मालैव गम्यमनिशं जगदेकमूलम् ।
सम्वित्समस्तगमनश्वरमच्युतं त—
त्तेजः परं भजत सान्द्रसुधाम्बुराशिम् ॥ १० ॥

इति ध्यात्वा ओं ह्रीं इति मन्त्रावादौ हंसः सोहं स्वाहा, इति-मन्त्रानन्ते च दत्वा अकारादिक्षकारान्तान् वर्णान् यथोक्तस्थानेषु विन्यस्य तादृशानेव क्षकारादीन् कारान्तान् परतेजसि तत्तत्स्थानयुतान् वर्णान् जुहोमीति बुद्धया संहारक्रमेण विन्यसेत् । यथा—ओं ह्रों क्षं हंसः सोहं स्वाहेति ललाटे। एवमाकारादिन्यासोऽपीति सृष्टिः । ओं ह्रों क्षं हंसः स्वाहेति हृदादिमुखे, एवं लकारादिन्यासोऽपीति संहारः । ततः परं तेजसि ध्याते क्षः स्वाहा लं स्वाहेत्यादिमन्त्रैस्तत्तत्स्थाने युतान् वर्णान् जुहूयादिति ।

ततो विष्णुमन्त्रोपासकस्तत्त्वन्यासं कुर्यात्, स च विष्णुपूजापरिच्छेदोपक्रमे द्रष्टव्यः । ततो मूलेन ओंकारेण वा प्राणायामान् कुर्यात्, तत्र पूरके षोडश, कुम्भके चतुःषष्टिः, रेचके द्वात्रिंशन्मात्राः । तत्र प्रथमप्राणायामे वामनासा-पुटेन पूरणं, दक्षिणेन रेचनं, द्वितीयादिप्राणायामेषु तत्पूर्वप्राणायामे रेचको येन पुटेन कृतस्तेनैव पूरकं तदन्येन तु रेचकः कर्तव्यः ।

ततः शरीरे योगपीठन्यासः ।

हृदये उपर्युपरि आधारशक्तये नमः ॥ ११ ॥

इत्यादि मन्त्रैः आधारशक्तिप्रकृतिकूर्मानन्तपृथिवीक्षीरसिन्धुश्वेतद्वीपमणिमण्डपकल्पवृक्षानग्रे वक्ष्यमाणध्येये रूपान् कल्पवृक्षस्याधस्तात् रत्नवेदिकां दक्षिणांसे रक्तं वृषाकारं धर्मं, वामांसे श्यामं, सिंहाकारं ज्ञानं, वामोरौ पीतं, भूताकारं वैराग्यं, दक्षिणोरौ नीलं गजाकारमनैश्वर्य्यं न्यसेत् । एतानि पीठे गात्ररूपाणि । केषाञ्चिन्मते दक्षिणवामांसदक्षिणवामोरुषु धर्मादीनां मुखकटीदक्षिणवामपार्श्वेषु अधर्मादीनां न्यासः । हृदये उपर्युपरि शेषं आनन्दरूपकन्दसम्भिन्नान् सर्वतत्त्वमयपद्मप्रकृतिमयपत्रविकारमयकेसरपञ्चाशद्वर्णवीजाढ्यकर्णिकाः, तत्रैव अं सूर्यमण्डलाय नमः तं तपिन्यै नमः । एवमुखाद्यक्षरैः,

तपिनी तापिनी धूम्रा मरीचिज्वालिनी रुचिः ।

सुषुम्णा भोगदा विश्वा बोधिनी धारिणी क्षमाः ॥ १२ ॥

सूर्य्यमण्डल एव,—

उं चन्द्रमण्डलाय नमः; तत्र अं अमृतायै नमः । एवं मानदा, पूषा, तुष्टि, पुष्टि, इति, धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कान्तिर्ज्योत्स्ना, श्रीप्रीत्यङ्गदा, पूर्णा, पूर्णामृताः । चन्द्रमण्डले मं वह्निमण्डलाय नमः, तत्र धूँ धूम्रार्चिषे नमः । एवं ऊष्मा, ज्वलिनी, ज्वालिनी, विस्फुलिङ्गिनी, सुखी, स्वरूपा, कपिला, हव्यवाहा, कव्यवाहाः—प्रत्येकं तं तपिन्यादिसूर्यकलाभ्यो नमः इति समुदायेन न्यसेत्, वह्निमण्डले उपर्युपरि सं सत्त्वाय नमः, रं रजसे नमः, तं तपसे नमः ओँ आत्मने नमः, ओँ अन्तरात्मने नमः, ओँ परमात्मने नमः, ह्रीँ ज्ञानात्मने नमः, इति सूर्य्यमण्डलादीनि विन्यस्य पूर्वास्वष्टदिक्षुमध्ये च यथाक्रमं नवपीठशक्तीः सवरामयहस्ताः स्त्रीरूपा विन्यस्य पीठमन्त्रञ्च न्यसेत् । एवं न्यस्तपीठे पद्मकर्णिकायां देवं ध्यायेत् । ततो मन्त्रस्य ऋषिच्छन्दोदेवताविनियोगान् स्मृत्वा शिरसि ऋषिं, रसनायां, छन्दः, हृदि—देवतां विन्यस्य अङ्गमन्त्रैः करन्यासं कृत्वाऽस्त्रमन्त्रेण दिशो बध्वा अङ्गन्यासं कुर्यात् । ततश्च यदि मन्त्रन्यासोऽस्ति तदा तं विधाय मूलमन्त्रपुटितान् मातृकावर्णान् यथाक्रमं विन्यस्य ऋष्यादित्रयकराङ्गन्यासान् पुनर्विधायास्त्रमुद्रया दिग्बन्धनं कुर्यात् । अथ च ऋष्यादिन्यासमारभ्य क्रमतौत्सर्गिकः क्वचित् कल्पोक्तक्रमेण वाध्यते ।

ततो मुद्राः प्रदर्शयेत् । ततो ध्यानं–तच्च देवतारूपतया सुचिन्तनम्, हृत्कमल-कर्णिकायां देवताचिन्तनम्वा । ततो देवतारुपध्यातस्यात्मनो मानसैरुपचारैः पूजनम् । ततोऽर्घस्थापनं यथात्माग्रतो वामदिशि चतुरस्त्रं तन्मध्ये षट्कोणं तन्मध्ये त्रिकोणञ्च सामान्यार्घजलेनैव कृत्वा तत्राग्नेयादिकोणेषु हृदयशिरः-शिखाकवचानि अग्रे नेत्रं दिक्ष्वस्त्रं पूजयेत् । ततो मूलेन क्षालितम् त्रिपादि–काद्याधारं तत्र धृत्वा फडिति क्षालितं शंखं तत्र वह्निमण्डले धृत्वा नम इति शंखे गन्धाद्यष्टकं निःक्षिप्य विलोममातृकया उपान्तस्वरसंयुक्तया विन्दुस्त्रुत-सुधाबुद्ध्या तोयेनापूरयेत् । केषाञ्चिन्मते मातृकान्ते मूलमन्त्रस्यापि पाठः । तत आधारं वह्निमण्डलतया शंखं सूर्य्यमण्डलतया सलिलं सोममण्डलतया विचिन्त्य तेषु वह्निसूर्यं सोमकलाश्चिन्तयेत् । ततो मं दशकलात्मने वह्निमण्डलाय नमः इत्याधारं अं द्वादशकलात्मने सूर्यमण्डलाय नम इति शंखं उं षोडशकलात्मने चन्द्रमण्डलाय नमः इति सलिलं सम्पूज्य—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु ॥ १३ ॥

इति मन्त्रेण रविमण्डलात्तीर्थं हृदयाद्देवताञ्चावाह्य वषडिति गालिनीं मुद्रां दर्शयित्वा तज्जलं वौषडिति निरीक्ष्य हुमिति करद्वयेनावगुण्ठ्य धेनुमुद्रयाऽमृती-कृत्य मूलेनाभिमन्त्र्याङ्गन्यासेन सकलीकृत्य अस्त्रमन्त्रेण दिग्बन्धनेनाभिरक्ष्य शंखमुद्रयाऽवष्टभ्य योनिमुद्रयोद्दीप्य नम इति गन्धादिना तत्रेष्टदेवतामभ्यर्च्य देवस्वरूपीकृतं मत्स्यमुद्रयाच्छादितं तज्जलं स्पृशन्नष्टशो मूलं जपेत् । ततोऽर्घस्य दक्षिणतः प्रोक्षिणीपात्रं धृत्वा वारिणा परिपूर्य्य शंखोदकं तत्र किञ्चिद्दत्वा तदुद-केनात्मानं पूजाद्रव्याणि च मूलमन्त्रेण वारत्रयं हस्तेनाभिषिञ्चेत् ॥ अर्घस्यो-त्तरतः पाद्यं तदुत्तरत आचमनीयादिकञ्च कल्पयेत् । तेषां स्वरूपाणि बाह्य-पूजावसरे दर्शनीयानि ।

अथान्तरपूजा

तत्र मूर्द्धिन गुरुं आधारे गणेशं, हृदयादौ च यथान्यासमाधारशक्त्यादि-पीठान्तं मूलाधारे हृदये भ्रूमध्ये देवतातेजः समभ्यर्च्य तडित्प्रभं तत्तेजस्त्रयं वीजेनैकीकृत्य सकलीकृत्यासनाद्युपचारैर्भूषणान्तैः हृदयेऽभ्यर्च्य देवशरीरे षडङ्गं

पञ्चाङ्गं वा यथाकल्पं श्रीवत्सादिकञ्चाभ्यर्च्य मूलेन गन्धपुष्पाभ्यामभ्यर्च्याञ्जलि-पञ्चकं दद्यात् । तत्र उत्तमाङ्गं हृदयाधारपादसर्वाङ्गेषु यथाक्रमं किञ्चित् पुष्पाञ्जलय इत्येके । दक्षिणपादे श्वेतचन्दनानुलिप्तश्वेततुलस्या, वामपादे रक्तचन्दनानुलिप्तकृष्णतुलस्या हृदि चन्दनद्वयसिक्तकरवीरद्वयेन मूर्द्धिन चन्दनद्वय-सिक्तकरवीरद्वयेन मूर्द्धिन चन्दनद्वयसिक्तपद्मद्वयेन सर्वाङ्गेषु चन्दनद्वयसिक्ततुलसी-द्वयकरवीरद्वयपद्मद्वयैः तेषु श्वेतचन्दनसिक्तानि श्वेतानि दक्षिणभागे इत्येवमञ्जलि-पञ्चकमित्यपरे । इदन्तु विष्णुपूजामात्रविषयमिति प्रतिभाति । ततो धूपादिभि-र्नैवेद्यातिरिक्तैः पूजयित्वा विन्दुस्त्रुतसुधाबुद्ध्या जलेन देवं प्रीणयित्वा मुखवासाद्यं दत्वा पुनर्गन्धादिभिरभ्यर्च्य ताम्बूलनर्तनवाद्यैस्संतोष्य विष्णुपूजायान्तु इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रत्सुषुप्त्यवस्था सुमनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत्स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा मां मदीयञ्च सकलं हरये समर्पये । ओँ तत्सदिति मन्त्रेण ब्रह्मार्पणं विधाय प्रामायामत्रयं कृत्वा सुप्रसन्नां देवताम् भावयन् मन्त्रं जपेत् । ततः प्रणवपुटितं वीजमष्टोत्तरशतं जप्त्वा प्राणायामत्रयं कुर्यात् । ततः गुह्येत्यादिवक्ष्यमाणमन्त्रेण देवताहस्ते चूल्लुकोदकेन जपं समर्पयेत् । अत्र पूजायां सर्वं वारिणा प्रयोजनं प्रोक्षिणीवारिणैव विधातव्यम् । प्रोक्षिणीतोयं विसृज्य जलान्तरेण तां पूरयित्वा किञ्चिदर्घाम्बु तत्र दद्यात् ।

अथबाह्यपूजा ।

स्वर्णादिपात्रे कल्पोक्तं यन्त्रं तदभावे चतुर्द्वारभूपुरावृतमष्टदलं पद्मं लिखेत्, ततः एकत्रैव पञ्चदेवतापूजापक्षे इष्टदेवतातिरिक्तदेवताचतुष्टयं कोणचतुष्टये पूजयेत् । कोणनियमश्च प्रमाणपरिच्छेदे द्रष्टव्यः । ततः पीठस्योत्तरतो वाय-व्यादीशानपर्यन्तं गुरु-परगुरु-अपरगुरु-परापरगुरून् दक्षिणे दन्तपाशाङ्कु-शाभकरं गणेशं मध्ये उपर्युपरि आधारशक्ति-प्रकृति-कूर्म-अनन्त-पृथिवी-क्षीर-सिन्धु-श्वेतद्वीपमणिमण्डपकल्पवृक्षान्, कल्पवृक्षस्याधो रत्नवेदिकां पूजयेत् । तत्र कूर्मशिलारूढा श्वेता पद्मद्वयधारिण्याधारशक्तिः, तन्मूर्ध्न्यासीनो नीलः कूर्मः, तदूर्ध्वं ब्रह्मशिलासीनः मूर्ध्नि पृथिवीं धारयन् चक्रधरः श्वेतोनन्तः तदुपरीन्दी-वरधारिणी नीलवर्णा पृथिवी ध्यातव्या । ततः पीठस्याग्न्येयादिकोणेषु

रक्तं वृषाकारं धर्म्मं; श्यामं सिंहाकारं ज्ञानं; पीतं भूताकारं वैराग्यं; नीलं गजाकारमैश्वर्य्यं; एतानि पीठपाद-भूतानि पीठस्य पूर्वादिदिक्षु गात्रभूतानि अधर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्य्याणि धर्मादितुल्यरूपाणि पूजयेत् । मध्ये उपर्युपरि शेषानन्दकन्दसम्भिन्नान् सर्वतत्त्वमय-पद्मप्रकृतिमयपत्रविकारमयकेसरपञ्चाशद् वर्णबीजाढ्यकर्णिकाः चतुर्थीनमोन्तेन नाम्ना पूजनीया । ततः अं सूर्यमण्डलाय नमः, तत्र तं तपिन्यै नमः एवं तापिनी, धूमा, मरीचि, ज्वालिनी, रुचि, सुषुम्णा, भोगदा, विश्वा, बोधिनी,—धारिणा, क्षमा, अपि पूजयेत्—तत्रैव उं चन्द्रमण्डलाय नमः तत्र अं अमृतायै नमः, एवं मानदा, पूषा, तुष्टि, पुष्टि, इति, धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री पत्यङ्गदा पूर्णामृताः पूजयेत् । तत्रैव मं वह्निमण्डलाय नमः, तत्र धूं धूम्रार्चिषे नम. एवं उष्मा, ज्वलिनी, ज्वालिनी, विस्फुलिङ्गिनी स्वधा स्वरूपा कपिला हव्यवाहा कव्यवाहाश्च पूजयेत्-सं सत्त्वाय नमः, इति श्वेतसत्त्वम् । रं रजसे नम इति रक्तं रजः । तं तमसे नम इति श्याम तमः, ओँ आत्मने नमः ओँ अन्तरात्मने नमः, ओँ अनन्तरात्मने नम, ओँ परमात्मने नमः, ह्रीँ ज्ञानात्मने नमः, इति मन्त्रेणात्मचतुष्कं पूर्वाद्यष्टदिक्षु केसरेषु मध्ये च सवराभयहस्ताः स्त्रीरुपाः कल्पोक्ता. पीठशक्तीर्नवपूजयेत् । ताश्च क्रमेण श्वेता, कृष्णा, रक्ता, पीता. श्यामा, रक्ता, शुक्ला, श्यामारक्ताध्यातव्याः, इदञ्च धर्मादिपीठान्तपूजनं कल्पेषु विशेषानुक्तौ । ततः पीठमन्त्रेण पीठमभ्यर्च्य कल्पोक्तमन्त्रेण तदभावे मूलमन्त्रेण मूर्त्तिं परिकल्प्य मूलमुच्चार्यामुकमूर्त्तये नमः इति कल्पतरुच्छायायां मूर्तिं पूजयित्वा कल्पोक्तस्वरूपां देवतां ध्यात्वा मूलाधारे दीपकलिकानिभं देवतातेजश्चिन्तयित्वा मूलमन्त्रेण सुषुम्णा वर्त्मना सदाशिवे संयोज्य ललाटात्समानीय पूर्णचन्द्रनिभं चिन्तयित्वा हसौः कर्णिकस्य स्वरद्वन्द्वाष्टकशोभमानकेसराष्टकस्य क च ट त प य श ल वर्गाष्टकसहिताष्टपत्रस्य दिगातवकारेण गतचकारभूपुरावृत्तस्य मातृकाम्भोजस्याभिन्नतया ध्याते उत्तानाञ्जलिस्थपुष्पं सञ्चये प्रवहन्नाड्या तद्देवता तेजः संयोज्य परिकल्पितमूर्त्तौ तस्यावाहनस्थापनसन्निधापनसन्निरोधनसकलीकरणावगुण्ठनामृतीकरणपरमोकरणानि तत्तन्मुद्राभिर्विदध्यात् । आवाहनादिस्वरूपंमुद्राश्च प्रमाणपरिच्छेदेऽनुसन्धनीयाः । ततो देवशरीराद्बहिर्भूतं स्फुलिङ्गाकारं परिवारगणं चिन्तयित्वा तद्वीयस्थानेषु प्रवेशयेत् । ततो मूलमुच्चार्य्यं इदमासनममुकाय नमः इत्यासनं दत्वा जलं दद्यात्, एवमग्रेऽपि उपचारान्तरेषु विशिष्य-

मन्त्रादिनिर्देशमन्त्रो द्रष्टव्यः। जलदानञ्च सर्वोपचारान्तरानन्तरं विधेयम्। यश्चोपचारो न सम्पद्यते, तदात्मतया पुष्पमेव दद्यात्, मनसैव वा दद्यात्। ततः स्वागतं कुशलञ्च पृष्ट्वा मूलमुच्चार्य्य इदं पाद्यं अमुकाय नमः इति पादयोः श्यामाकदूर्वाब्जविष्णुक्रान्तजलात्मकं पाद्यं दद्यात्। मूलमुक्त्वा इदमाचमनीयं अमुकाय स्वधेति मुखे त्रिवारम्, जातीलवङ्गकङ्कोलजलरूपमाचमनीयं, वौषड् नम इति मुकुटोपरि पुष्पम्, मूलानन्तरमेषोऽर्घः अमुकाय स्वाहेति शिरसि गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलसर्षपदूर्वाजलात्मकमर्घं, मूलमुच्चार्य्य एष मधुपर्कः अमुकाय स्वधेतिमुखे दधिमध्वाज्यात्मकमधुपर्कं पूर्वोक्ताचमनीयमन्त्रेण जलात्मकं पुनराचमनीयं गन्धोदकं स्नानीयं गात्रमार्जनं यथोचितवस्त्रं यज्ञोपवीतहारादिभूषणानि च दत्वा गन्धपुष्पाभ्यामनुवर्टितमातृकावर्णैस्तेषु तेषु स्थानेषु देवतां सम्पूज्य देवताशरीरे हृदयशिरः शिखाकवचनेत्रास्त्ररूपं षडङ्ग पञ्चाङ्गं वा सम्पूज्य कल्पेषु विभूत्यादिपूजाविधौ ताम्विधाय गन्धं दत्वा आचारात् वारत्रयं मूलेन पुष्पैर्देवतां सम्पूज्य मूलेनैव पुष्पाञ्जलिपञ्चकं दद्यात्, तत्र च उत्तमाङ्ग हृदयमूलाधारचरणसर्वाङ्गेषु यैः कैश्चिद् प्रशस्तपुष्पैरञ्जलिपञ्चकमित्येके। अपरे तु श्वेततुलस्या दक्षिणपादे, कृष्णतुलस्या वामपादे, श्वेतरक्तकरवीराभ्यां हृदि, श्वेतरक्तपद्माभ्यां मूर्ध्नि तुलसीद्वयकरबीरपद्मद्वयैः सर्वाङ्गेषु सर्वत्र श्वेतानि श्वेतचन्दनसिक्तानि दक्षिणभागे अपराणि रक्तचन्दनसिक्तानि वामभागे दातव्यानीत्यञ्जलिपञ्चकमित्याहुः। इदन्तु विष्णुपूजा विषयतया प्रतिभाति। ततः कल्पोक्तावरणान्तराणि संपूज्यन्ते। लोकपालान् तदस्त्राणि च पूजयेत्। तद्यथा पूर्वस्यां दिशि इन्द्राय वज्रहस्ताय सुराधिपतये ऐरावतवाहनाय साङ्गाय सपरिवाराय नमः इति वा इन्द्राय वज्रहस्ताय सुराधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः इति वा इन्द्राय सुराधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः इति वा इन्द्राय सुराधिपतये साङ्गाय सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय नमः इति वा इन्द्रं पूजयेत्। एवमग्रेऽप्यूहनीयम्। आग्नेय्यां अग्नये शक्तिहस्ताय तेजोधिपतये मेषवाहनाय साङ्गाय सपरिवाराय नमः। दक्षिणस्यां यमाय दण्डहस्ताय प्रेताधिपतये महिषवाहनाय साङ्गाय सपरिवाराय नमः। नैर्ऋत्यां निर्ऋतये खड्गहस्ताय रक्षोधिपतये प्रेतवाहनाय साङ्गाय सपरिवाराय नमः, पश्चिमायां वरुणाय पाशहस्ताय जलाधिपतये मकरवाहनाय साङ्गाय सपरिवाराय नमः, वायव्यां वायवेऽङ्कुशहस्ताय प्राणाधिपतये मृगवाहनाय

साङ्गाय सपरिवाराय नमः, उत्तरस्यां सोमाय गदाहस्ताय नक्षत्राधिपतये तुरगवाहनाय सपरिवाराय नमः, ऐशान्यां ईशानाय शूलहस्ताय विद्याधिपतये वृषमवाहनाय साङ्गाय सपरिवाराय नमः, निर्ऋति वरुणयोर्म्मध्ये अधः अनन्ताय चक्रहस्ताय नागाधिपतये कूर्मवाहनाय साङ्गाय सपरिवाराय नमः इति पूजयेत् । ध्यानञ्चेन्द्रादीनां प्रसिद्धिमन्त्रानुसाराभ्यामवगन्तव्यम् । वर्णन्तु तेषां—"कनककपिशनीलश्यामलश्वेतधूम्रमलसितशुचिरक्तवर्णतो वासराद्याः ।" एतदनुसारेण ज्ञेयं, ततस्तेषां वहिस्तेषामस्त्राणि—तत्र पीतवर्णं वज्रं, श्वेता शक्तिः, श्यामो दण्डः, नीलः खड्गः, कपिशपाशः, रक्तोऽङ्कुशः, श्वेता गदा, नीलं शूलं, रक्तं चक्र, अरुणं पद्मं सर्वाण्येतानि शक्तिगदे विहाय पुरुषरूपाणि मुकुट-निर्म्मितस्वस्वनामकायुधचिह्नानि स्वस्वनामकायुधहस्तानि यथोक्तवर्णानि ध्यात्वा वज्राय नम इत्यादि मन्त्रैः पूजनीयानि । ततोऽगुरूशीरगुग्गुलुशर्करामधुचन्दनानां घृतमिश्राणां धूमं धूपं गन्धाक्षतकुसुमार्चितं घण्टां वामहस्तेन वादयन् दक्षिणहस्तेन देवताया अधस्ताद्दद्यात् । सर्पिषा तैलेन वा कर्पूरगर्भवर्तिं प्रज्वाल्य मस्तका-दुपरि दत्वा पुष्पाञ्जलिम्विधाय नैवेद्यार्थं पाद्याचमनाये दत्वा नैवेद्यं संस्कुर्व्वीत । यथा स्वर्णादिपात्रस्थ नैवेद्य··· ··· ··· ··· ···फडित्यम्यूक्ष्य ओंकारेण तत्र पुष्पं क्षिप्त्वा चक्रमुद्रया अभिरक्ष्य यमिति क्षिप्तेन तोयेन शोधयित्वा दक्षिणकरेण स्पृष्ट्वा रमिति सन्दह्य वामकरेण स्पृष्ट्वा वमिति मन्त्रेण सुधारसं पूर्णं विभाव्य मूलेनामृतीकृत्य स्पृष्ट्वाष्टशो मूलमन्त्रं जप्त्वा धेनुमुद्रया पुनः सुधापूर्णं विचिन्त्य गन्धादिभिरभ्यर्चयेत्, इति तत्संस्कृत्य अञ्जलिम्वद्ध्वा नैवेद्यभक्षणार्थं देवतां याचयेत्, ततस्तन्मुखाद्विनिःसृत तेजो विचिन्त्य स्वाहान्तेन मूलेन तत्र जलं क्षिपेत् । अथामृतात्मकं नैवेद्यं सकुसुमं कराभ्यामुद्धृत्य निवेदयामि भवते जुषाणेदं हविर्-मुकेत्यर्पयेत्, देवीपूजायां स्त्रीलिङ्गोहः कर्तव्यः । ततोऽमृतोपस्तरणमसि स्वाहे-त्यपोशनं दत्वा वामकरेण ग्रासमुद्रां दर्शयन् प्राणादिमन्त्रेण तत्तन्मुद्राः दक्षिणहस्तेन प्रदर्शयेत्—तद्यथा ओं प्राणाय स्वाहा, अत्राङ्गुष्ठाग्रेण कनिष्ठानामिकयोः स्पर्शः, ओं अपानाय स्वाहा अत्र तर्जनीमध्यमयोः, ओं व्यानाय स्वाहा, अत्रानामिका-मध्यमयोः, ओं उदानाय स्वाहा, अत्र तर्जनीमध्यमानामिकानां, ऊों समानाय स्वाहा अत्र सर्वासामङ्गुलीनामङ्गुष्ठाग्रेण स्पर्शः । ततः करयोरनामिकाङ्गुष्ठाभ्यां स्पृशन् ह्रौं नमः परापरात्मनेऽनिरुद्धाय निवेद्यं कल्पयामीति नैवेद्यमन्त्रं जपेत् । पूजाविशेषेषूहः कर्तव्यः । ततो घण्टावादनपूर्वकं

नीराजनं विधाय धेनुमुद्रया पानीयममृतीकृत्य अमृतापिधानमसि स्वाहेति पुनरपोशनं दत्वा जलान्तरञ्च दत्वा देवतातेजस्तन्मुखे उद्वास्य नैवेद्यगतसारं विचिन्त्य उद्धृत्य ऐशान्यामुच्छिष्टभोजिने किञ्चिद् दद्यात्, उच्छिष्टभोजिनश्च विष्णोर्विष्वक्सेनः भानोस्तेजश्चण्डः, शक्तेश्चण्डेश्वरी, शिवस्य चण्डेशः, गणेशस्य लम्बोदर इति । ततो निवेद्य स्थानमुपलिप्य देवतायै गण्डूषदन्तधावनाचमनीयहस्तानुलेपहस्तमार्जनीयमुखत्रासकमान्यगन्धभूषणताम्बूलादि तत्कालोचितं दत्वा गीतादिना सन्तोष्य सपरिवारां देवतां, गन्धादिभिः प्रदीपान्तैरुपचारैः पञ्चोपचारै र्वाभ्यर्च्यार्घन्दत्वा पुष्पाञ्जलिन्दद्यात्, ततः स्तुत्वा प्रदक्षिणीकृत्याष्टाङ्गं पञ्चाङ्गं वा प्रणम्य विष्णुपूजायां ओँ इतः पूर्वं प्राणबुद्धोत्यादि पूर्वोक्तमन्त्रेण चुलुकाम्भसा ब्रह्मार्पणं कुर्यात्। प्राणायामत्रयं कृत्वा सुप्रसन्नां देवतां चिन्तयन् यथाशक्ति अष्टोत्तरसहस्रमष्टोतरशतं वा दश वा जप्त्वा तज्जपं दक्षिणे देवताहस्तेऽर्घशेषजलेन समर्पयेत् । तत्र मन्त्रः—ॐगुह्यातिगुह्यगोप्त्रीत्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् । सिद्धिर्भवतुमे मातस्त्वंगतिः परमेश्वरीति वा अनेन कृतजपेनामुको मे प्रीयतामिति वा पुरुषपूजायां पुंल्लिंगोहः । ततः प्राणायामत्रयं कृत्वा छत्रादि राजोपचारैस्तोषयित्वा उपसंहारमुद्रया परिवारगणं देवताशरीरे उपसंहृत्य अमुक, क्षमस्व स्वस्थानं गच्छेति विसृज्य व्यापकत्रयं कृत्वा पुष्पमाघ्राय सुसुम्णा वर्त्मना देवतां हृदयाम्बुजं नीत्वा इह वा प्राणायामत्रयं कृत्वा गुरोर्नमस्कारत्रयं कुर्यात्—तदसन्निधौ तूद्देशेनापीति ॥

अथात्रसंक्षेपः —— आचम्य,

ओँ तीक्ष्णदंष्ट्र महाकाय कल्पान्तदहनोपम ।
भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि ॥ १२ ॥

इति भैरवानुज्ञां गृहीत्वा कुशाजिनकम्बलोत्तरमासनं वेदिकायां विन्यस्य जलेनाभ्युक्ष्य तत्रासने आधारशक्ति, प्रकृति, कूर्मानन्तपृथिवीः सम्पूज्य पृथ्वीत्यादि मन्त्रस्य मेरुपृष्ठऋषिः सुतलंछन्दः कूर्मो देवता आसने विनियोगः इति स्मृत्वा—

पृथ्वि ! त्वया धृता लोका देवि ! त्वं विष्णुना धृता ।
त्वञ्च धारय मां भद्रे ! पवित्रं कुरु चासनम् ॥ १४ ॥

इति जपन्नासने समुपविश्य स्वस्तिकपद्मासनयोरन्यतरम्बध्वा यथा-सन्निवेशं पूजाद्रव्याणि स्थापयित्वा अञ्जलिम्बध्वा वामं गुरुन् दक्षिणतो गणेशञ्च नमस्कृत्य 'ओं सहस्रार हुँ फट्' इति रक्षां विधाय सुगन्धिपुष्पमर्देन हस्तौ सुरभी-कृत्य तत्पुष्पं नाराचमुद्रया उत्तरतः क्षिपेत्। ततः अस्त्रमन्त्रेण करौ संशोध्य तेनैव ऊर्ध्वोर्ध्वं तालत्रयं दिग्बन्धनञ्च कृत्वा रमिति मन्त्रेण वह्नितया ध्यात-जलेनात्मानं वेष्टयित्वा हृत्पद्मकर्णिकास्थं जीवात्मानं सोहमितिमन्त्रेण सुषुम्णा वर्त्मना सहस्त्रदलकमलावस्थिते परमात्मनि संयोज्य आकाशवायुतेजोजल-पृथिवीश्रोत्रत्वक्चक्षुरसनघ्राणमुखपाणिपादपायूपस्थ शब्दस्पर्शरुपरसगन्धवच-नादानगतिविसर्गानन्दरुपश्चत्रिंशतितत्त्वानि व्युत्क्रमाद् बीजभावेन तत्रैव लीनानि विचिन्त्य, वामनासापुटे यमिति वायुबीजं धूम्रं वायुमण्डलस्थं विचिन्त्य, वायुना ऐक्यं सम्भाव्य, पूरकं कृत्वा, कुम्भके शुष्कं शरीरं विचिन्त्य दक्षिणपुटेन वायुं रेचयेत्। ततो दक्षिणपुटे रमिति वह्निमिति बीजं रक्तं वह्निमण्डलस्थं नीलमारुतं विचिन्त्य वह्निना ऐक्यं सम्भाव्य पूरकेन वह्निपूर्णं शरीरं विचिन्त्य कुम्भके दग्धं चिन्तयित्वा वामपुटेन भस्मना सह वायुं रेचयेत्। ततो दक्षिणनासापुटे चमिति चन्द्रबीजं श्वेतं जलमण्डलस्थं विचिन्त्य अमृतेनैक्यं विभाव्य पूरके चमिति बीजं ललाटचन्द्र नीत्वा कुम्भके व.मत्य-मृतबीजेन चन्द्रात्सकलवर्णमयीममृतवृष्टिन्निपात्य दोषजातं·····················त्पाद्यापाद-तलमस्तकममृतेनाप्लाव्य दक्षिणपुटेन वायुं रेचयेत्। सर्वत्र पूरके षोडशमात्रया, कुम्भके चतुःषष्टिमात्रया रेचके द्वात्रिंशन्मात्रया तत्तन्मन्त्रजपः। ततस्तत्त्वानि स्वस्वस्थान ················ जीवात्मान परमात्मसमीपात् स्वस्थानमानयेत् इति भूतशुद्धिः।

अथमातृकान्यासः।

ललाटे अ, मुखवृत्ते आ, दक्षिवामक्रमेण नेत्रयोः इ–ई, एवं कर्णयोः उ ऊ, नासापुटयोः ऋ ॠ, गण्डयो लृ ॡ, ओष्ठाधरयोः ए ऐ, ऊर्ध्वाधोदन्तपंक्त्योः ओ औ, शिरसि अं, मुखे अः, दक्षिणवाहोः सन्धिचतुष्टये क ख ग घ, अङ्गुल्यग्रे ङ, वामवाहोः सन्धिचतुष्टये च छ ज झ, अङ्गुल्यग्रे ञ, दक्षिणपादस्य सन्धिचतुष्टये ट ठ ड ढ, अङ्गुल्यग्रे ण, वामपादस्य सन्धिचतुष्टये त थ द ध, अङ्गुल्यग्रे न, पार्श्वयोः प फ, पृष्ठे ब, नाभौ भ, उदरे म, हृदि य, दक्षिणांसे र, ककुदि ल,

हृदादिवामांसेव,–हृदादिवामदक्षिणवाहोः ……… श ष, हृदादिपादयोः स ह, जठरे ल, मुखे क्ष; इति न्यसेत् इति सृष्टिः। टकारादि क्षकारान्तान् विन्दु-विसर्गसहितान् विन्यस्य अकारादि अकारान्तान् तादृशान् पर ……………… क्षकारादि नकारान्तान् सविन्दुकान् वर्णान्न्यसेदिति संहारक्रमः। एतत्त्रयं सृष्टिमात्रम्विधाय विष्णुमन्त्रे केशवादिमूर्त्तिकीर्त्यादिशक्तिसहितां श्रीबीजकेशव-कीर्त्यादिसहिताञ्च मातृकां विन्यस्य तत्त्वाभ्यासं कुर्यात्। तत्र तत्त्वन्यासेऽधि-कारापादकः। अपरन्यासौ च काम्यौ ते च विष्णुमन्त्रपरिच्छेदोपक्रमे द्रष्टव्याः. ततो मूलेन ओँकारेण वा प्राणायामान् कुर्यात्, तत आन्तरपूजापक्षे शरीरें योगपीठन्यासः यश्च दक्षिणांसे धर्मं, वामांसे ज्ञानं वामोरौ वैराग्यं, दक्षिणोरौ ऐश्वर्य्यं, मुखेऽधर्मं, वामपार्श्वेऽज्ञानं, नाभौऽवैराग्यं, दक्षिणपार्श्वे अनैश्वर्यं, विन्यस्य हृदये उपर्युपरि……………य नमः, अं सूर्य्यमण्डलायनमः तत्र सूर्य्य-कलाभ्यो नमः सूर्य्यमण्डले, ओं सोममण्डलाय नमः तत्र सोमकलाभ्यो नमः सोममण्डले, मं बह्निमण्डलाय नमः तत्र बह्निकलाभ्यो नमः बह्निमण्डलस्यो-स्योपर्युपरि सं सत्त्वाय नमः, रं रजसे नमः तं तमसे नमः अं आत्मने नमः अ अन्तरात्मने नमः पं परमात्मने नमः ह्रीँ ज्ञानात्मने नमः इति विन्यस्य पूर्वा-द्यष्टकेसरेषु मध्ये च कल्पोक्ताः पीठशक्तीर्विन्यस्य पीठमत्रं न्यसेत्।

ध्यानसमये तत्रस्थं देवं चिन्तयेत्। ततो मन्त्रस्य ऋषिच्छन्दोदेवता-विनियोगान् स्मृत्वा शिरसि ऋषिं रसनायां छन्दो हृदि देवताञ्च विन्यस्य कल्पोक्ताङ्गमन्त्रैःकरन्यासं कृत्वा तदस्त्रमन्त्रेणैव दिशोबध्वा हृदयादिषडङ्गन्यासं कुर्यात्। ततो यदि मन्त्रादिन्यासोऽस्ति तदातम्बिधाय पुनरपि ऋष्यादित्रय-कराङ्गन्यासान् कृत्वास्त्रमुद्रया दिग्बन्धनं कुर्यात्। अथवा भूतशुद्धिम्विधाय मन्त्रस्य ऋषिछन्दोदेवताः स्मृत्वा ऋष्यादिन्यासं कृत्वा प्राणायामान् ततो मातृ-कान्यासः। ततः कल्पोक्तन्यासान्तरं च विधाय योगपीठन्यासं कुर्यात् इतिक्रमः। एतौ च क्रमौ कल्पेषु विशेषानुक्तौ द्रष्टव्यौ। ततो मुद्राः प्रदर्श्य देवं कल्पोक्तरूपं ध्यायेत्, ततो देवरूपत्वेन ध्यातस्यात्मनो मानसैरुपचारैः पूजनम्। ततोऽर्घ-स्थापनम् अस्त्रमन्त्रेण शङ्खं प्रक्षाल्य वामतो बह्निमण्डले स्थापयित्वा नम इति गन्धपुष्पाक्षतादि तत्र निःक्षिप्य सविन्दुविलोममातृकामन्त्रेण मूलेन च विन्दुस्रुत-सुधाबुद्ध्या तोयैरापूर्य्य आधारं बह्निमण्डलतया शंखं सूर्यमण्डलतया तोयं सोम-

मण्डलतया विचिन्त्य तेषु बह्निसूर्य्यसोमकलां चिन्तयेत्, ततो मं दशकलात्मने वह्निमण्डलाय नमः, अं द्वादशकलात्मने सूर्यमण्डलाय नमः, उं षोडशकलात्मने चन्द्रमण्डलाय नमः इति यथाक्रमं संपूज्य—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

इति तीर्थमन्त्रेण सूर्यमण्डलादङ्कुशमुद्रया तीर्थं स्वहृदयकमलाद्देवताञ्चावाह्य वषडिति गालिनीं मुद्रां दर्शयित्वा वौषडिति जलं निरीक्ष्य हुमिति करद्वयेनावगुण्ठ्य धेनुमुद्रयामृतीकृत्य मूलेनाभिमन्त्र्य षडङ्गन्यासेन सकलीकृत्यास्त्रेणाभिरक्ष्य शङ्खमुद्रयाऽवष्टभ्य योनिमुद्रयोद्दीप्य 'नम' इति गन्धादिना तत्रेष्टदेवतां सम्पूज्य देवतास्वरूपं तज्जलं मत्स्यमुद्रयाच्छाद्य स्पृशन्नष्टशो मूलं जपेत्। ततोऽर्घस्य दक्षिणतः प्रोक्षिणीपात्रम् वारिणा परिपूर्य्यार्घोदकं किञ्चित्तत्र दत्वा तदुदकेनात्मानं पूजाद्रव्याणि मण्डलञ्च वारत्रयं हस्तेनाभिषिञ्चेदिति। अर्घस्योत्तरतः पाद्यं तदुत्तरतः आचमनीयादिकञ्च कल्पयेत्।

अथ वास्तवद्रव्यैरान्तरपूजा।

मूर्द्धिन गुरुं मूलाधारे गणेशं अंसादिषु यथान्यासं धर्मादीन् पीठान्तान् संपूज्य मूलाधारे हृदि भ्रूमध्ये च देवतातेजः समचर्य तडित्प्रभं तत्तत्त्रयं वीजेनैकीकृत्यासनादिभिर्भूषान्तैरभ्यर्च्य यथाकल्पं देवताशरीरे षडङ्गं पञ्चाङ्गं वा विभूत्यादिकं चाभ्यर्च्य मूलेन गन्धपुष्पाभ्यां सम्पूज्य उत्तमाङ्गहृदयाधारपादसर्वाङ्गेषु प्रशस्तपुष्पाञ्जलिपञ्चकं दद्यात्। गोपालपूजायान्तु दक्षिणपादे श्वेततुलस्या वामपादे श्यामतुलस्या हृदि श्वेतरक्तकरवीराभ्यां शिरसि श्वेतरक्तपङ्कजाभ्यां सर्वाङ्गेषु श्वेतकृष्णतुलसीश्वेतरक्तकरवीरश्वेतपङ्कजैः पुष्पाञ्जलिपञ्चकं तत्र श्वेतचन्दनसिक्तानि श्वेतपुष्पाणि दक्षिणभागे रक्तचन्दनसिक्तानि-रक्तपुष्पाणि वामभागे इति। ततो धूपादिभिर्नैवेद्यातिरिक्तैः पूजयित्वा विन्दुस्रुत सुधाबुद्धया जलेन देवं प्रीणयित्वा मुखवासाद्यं दत्वा पुनर्गन्धादिभिरभ्यर्च्य ताम्बूलगीतवाद्यादिभिः सन्तोष्य विष्णुपूजायां तु इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रतस्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत्स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा मां मदीयञ्च सकलं हरये समर्पये ... ... मन्त्रेणात्मानमर्पयेत्।

ततः प्राणायामत्रयं कृत्वा सुप्रसन्नां देवतां भावयन् मन्त्रं जपेत्। ततः प्रणवपुटितं वीजमष्टोत्तरशतं जप्त्वा प्राणायामत्रयं कुर्यात्। ततः—

गुह्यातिगुह्यगोप्त्रीत्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे मातः त्वत्प्रसादात्वत्प्रसादात्वत्प्रसादात्

इति जपं समर्पयेत्। पुरुषपूजायामूहः कर्तव्यः। अत्र पूजायां सर्वं वारिप्रयोजनं प्रोक्षणीजलैरेव कर्त्तव्यम्, प्रोक्षणीजलं विसृज्य पुनरुदकान्तरेण तां पूरयित्वा किञ्चिदर्घाम्बु तत्र दद्यात्॥

अथ बाह्यपूजा।

सुवर्णादिपात्रे कल्पोक्तं यन्त्रं तदभावे स्वाचाराच्चतुर्द्वारभूपुरावृत्तमष्टदलपद्मं लिखेत्। तत्र एकत्रैव पञ्चदेवतापूजापक्षे इष्टदेवतातिरिक्तदेवताचतुष्टयं कोणचतुष्टये पूजयेत्। तत्र कोणनियमः प्रमाणपरिच्छेदे द्रष्टव्यः। ततः पीठस्योत्तरतो वायव्यादीशानयपर्यन्तं गुरुपरगुरुअपरगुरु परापरगुरून्; दक्षिणे गणेशं मध्ये उपर्युपरि आधारशक्तिप्रकृतिकूर्मानन्तपृथिवीक्षीरसिन्धु रत्नद्वीपमणिमण्डपकल्पवृक्षान्; कल्पवृक्षाधः रत्नवेदिकां पीठस्याग्नेयादिकोणेषु धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्याणि; पूर्वादिषु दिक्षु अधर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्याणि; मध्ये उपर्युपरि अनन्तआनन्दकन्दसम्भिन्नान् सर्वतत्वात्मकपद्मप्रकृतिमयपत्रविकारमयकेसरपञ्चाशद्वर्णवीजाढ्यकर्णिकाः अं सूर्यमण्डलाय नमः तत्र तं तपिन्यादि सूर्य्यकलाभ्यो नमः सूर्यमण्डले उं सोममण्डलाय नमः तत्रैव अं अमृतादिसोमकलाभ्यो नमः सोममण्डले, मं वह्निमण्डलाय नमः, तत्र धूं धूम्रार्चिषादिवह्निमण्डले, सं सत्त्वाय नमः तदुपर्युपरि रं रजसे नमः, तं तमसे नमः, आं आत्मने नम., अं अन्तरात्मने नमः, पं परमात्मने नमः, ह्रीं ज्ञानात्मने नमः–इति सम्पूज्य पूर्वादिकेसरेषु मध्ये कल्पोक्ता नवपीठशक्तीः पीठमन्त्रेण पीठञ्चाभ्यर्च्य कल्पोक्तमन्त्रेण तदभावे मूलेन मूर्त्तिं परिकल्प्य मूलमुच्चार्य्यामुकमूर्त्तये नमः इति कल्पतरुच्छायायां मूर्त्तिं पूजयित्वा कल्पोक्तरूपां ध्यात्वा मूलाधारे दीपकलिकानिभं देवतातेजश्चिन्तयित्वा मूलमन्त्रेण सुषुम्णा वर्त्मना सदाशिवे संयोज्य ललाटान्तमानीय पूर्णचन्द्रनिभं चिन्तयित्वा करस्थपुष्पसंचये मातृकाम्भोजतया ध्याते प्रवहनाड्या संयोज्य परिकल्पितमूर्त्तौ तस्या वाहनस्थापनसन्निधापनसन्निरोधनसंमुखीकरणसकलीकरणावगुण्ठनामृतीकरणपरमीकरणानि तत्तन्मुद्राभिर्विदध्यात्।- ततो देवशरीरा

द्वह्निभूतं स्फुलिङ्गाकारं परिवारगणं चिन्तयित्वा तदीयस्थानेषूपवेशयेत्, ततो मूलमुच्चार्य्य इदमासनममुकाय नमइत्यासनन्दत्वा जलन्दद्यात्। एवं विशेषानुक्तौ उपचारदानमन्त्रो द्रष्टव्यः। जलदानञ्च सर्वोपचारानन्तरान्तरे विधेयम्। यश्चोपचारो न सम्पद्यते तदात्मतया ध्यात्वा पुष्पं दद्यात् मनसैव वा दद्यात्। ततः स्वागतं कुशलञ्च पृष्ट्वा मूलमुच्चार्य्य इदं पाद्यं अमुकाय नमः इति पादयोः श्यावाकदूर्वाब्जविष्णुक्रान्ताजलात्मकं पाद्यम्, मूलानन्तरमिदमाचमनीयममुकाय स्वधेति मुखे वारत्रयं जातीलवङ्गकङ्कोलरुपमाचमनीयं मूलमुच्चार्य्य एषोऽर्घः अमुकाय स्वाहेति शिरसि गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलसर्षप दूर्वा जलात्मकमर्घं, मूलमुक्त्वा एष मधुपर्कः अमुकाय स्वधेति मुखे दधिमध्वाज्यात्मकं मधुपर्कं आचमनीयमन्त्रेण जलात्मकं पुनराचमनीयं गन्धोदकं स्नानीयं यथोचितगात्रमार्जनीयवस्त्रभूषणानि दत्वा देवताशरीरे गन्धपुष्पाभ्यां षडङ्गं पञ्चाङ्गं वा सम्पूज्य कल्पेषु विभूत्यादि पूजाविधौ तां विधाय गन्धपुष्पाभ्यां मूलेन देवतामभ्यर्च्च्य शिरोहृदयाधारपादसर्वाङ्गेषु क्रमेण प्रशस्तपुष्पाञ्जलिपञ्चकं दद्यात्। विष्णुपूजायां दक्षिणपादे श्वेततुलस्या वामपादे कृष्णतुलस्या हृदि करवीरद्वयेन शिरसि पद्मद्वयेन सर्वाङ्गेषु तुलसीद्वयकरवीरद्वयपद्मद्वयं रञ्जलिपञ्चकं, तत्र श्वेतचन्दनसिक्तानि श्वेतानि पुष्पाणि दक्षिणभागे रक्तचन्दनसिक्तानि रक्तानि वामभागे दातव्यानि। ततः कल्पोक्तावरणान्तराणि सम्पूज्य लोकपालान् तदस्त्राणि च पूजयेत्। यथापूर्वादिदिक्षु इन्द्राय सुराधिपतये साङ्गाय सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय नमः। एवम् अग्नये तेजोऽधिपतये, यमाय प्रेताधिपतये, निर्ऋतये रक्षोधिपतये वरुणाय जलाधिपतये वायवे प्राणाधिपतये, सोमायनक्षत्राधिपतये, ईशानाय विद्याधिपतये। निर्ऋतिवरुणोर्मध्ये अधः अनन्ताय नागाधिपतये, इन्द्रेशानयोर्मध्ये ऊर्ध्वं ब्रह्मणे लोकाधिपतये साङ्गायेत्यादि सर्वत्र योजनीयम्। ततस्तेषां वहिस्तदस्त्राणि तानि च वज्रशक्तिदण्डखड्गपाशाङ्कुशगदात्रिशूलचक्रपद्मानि। ततः गन्धपुष्पाक्षतार्चितां घण्टां वामहस्तेनवादयानो दक्षिणे देवस्याधस्ताद् धूपं दत्वा उपरि दीपं दद्यात्। ततः पुष्पाञ्जलिन्दत्वा नैवेद्यार्थं पाद्याचमनीये दत्वा "निवेदयामि भवते जुषाणेदं हविर्हरमुक्त्वेति नैवेद्यं दद्यात्। इह वा आवरणपूजां कुर्यात्। ततो निवेद्यमैशान्यामुच्छिष्टभोजिने दद्यात्। ते च विष्णोर्विष्वक्सेनः भानोस्तेजश्चण्डः शक्तेश्चण्डेश्वरी, शिवस्य चण्डेशः

गणेशस्य लम्बोदर इति । ततो निवेद्यस्थानमुपलिप्य गन्डूषदन्तधावनाचमनीयहस्तानुपलेपनमुखवासकगन्धमाल्यभूषणताम्बूलादितत्कालोचितं दत्वा पुनर्गन्धादिभिर्देवतां सम्पूज्यार्घन्दत्वा पुष्पाञ्जलिन्दद्यात् । ततः स्तुत्वा प्रदक्षिणीकृत्याष्टाङ्गं पञ्चाङ्गं वा प्रणम्य विष्णुपूजायां ब्रह्मार्पणमन्त्रेणात्मानमर्पयेत् । ततः प्राणायामत्रयं कृत्वा सुप्रसन्नां देवतां चिन्तयन् यथाशक्ति जप्त्वा ओं गुह्यातिगुह्ये त्यादिना दक्षिणे देवताहस्ते जपं समर्पयेत् । ततः प्राणायामत्रयं कृत्वा छत्रचामरादिराजोपचारैस्तोषयित्वा उपसंहारमुद्रया परिवारगणं देवताशरीरे उपसंहृत्य अमुक ! क्षमस्व स्वस्थानं गच्छेति विसृज्य व्यापकत्रयं कृत्वा पुष्पमाघ्राय सुषुम्णा वर्त्मना देवतां स्वहृदयाम्बुजं नीत्वा इदानीं प्राणायामत्रयं कृत्वा गुरुनमस्कारं कुर्यात् । गुरोरसन्निधाने तदुद्देशेनापि तन्नमस्कारः । सकलावरणपूजनाशक्तौ अङ्गेन्द्रवज्राद्यावरणत्रयमेव पूजयेत् । तत्राप्यशक्तौ देवतामात्रपूजां सम्यक्तया तत्राप्यशक्तौ पूजामात्रं कुर्यात् । तत्राप्यशक्तौ अन्यस्मै पूजासाधनं दत्वा तद् द्वारा पूजां कारयेत् । तत्राप्यशक्तौ अन्यविधीयमानपूजां पश्येदिति ।

इति श्रीभवानन्दरायकारिते

श्री गोविन्दविरचिते

पूजाप्रदीपे

सामान्य पूजापद्धति परिच्छेदः — (२)

❀❀❀❀

पितरमधिकभक्त्या केशवं नाम नत्वा
तदनु च सचिनाथं भ्रातरं तं प्रणम्य ।
अथ विहितनिदेशः श्रीभवानन्दरायै-
र्लिखति मनुविशेषानेष गोविन्द शर्मा ॥ १ ॥

तत्रान्तरपूजायाः तवैरनुष्ठानाद् बाह्यपूजायाश्च सर्वसाधारणतया तदनुरुद्धक्रमेणैव विशेषो लिख्यते। तत्र प्रथमं सरस्वतीमन्त्राः। तत्र मातृकासरस्वतीमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्रं च्छन्दो मातृकासरस्वती देवता हलो वीजं स्वराः शक्तयः विद्याद्यभीष्टसिद्धौ विनियोगः। प्राणायामान् कृत्वा कराङ्गन्यासौ वर्णन्यासश्च मातृकान्यासे कथितान् कुर्यात्। दौः इतिकार्णकं स्वरयुग्माष्टकेन स्फुरत्केसरं पत्रान्तः स्थितवर्गाष्टकं दिक्षु वकारयुक्तेन कोणेषु च कारयुक्तेन भूपूरेण वेष्टितं अमृदलं पद्मं पूजायन्त्रम्। भूपुरेखातो वहिर्जलवीजं अकारादिवर्णाश्च सविन्दवो लेखनीया इति प्रपञ्चसारविवरणम्। मेधा, प्रज्ञा, प्रभा, विद्या. धी, धृति, स्मृति, बुद्धि, विद्येश्वर्य्यः पीठशक्तयः। दौः इति पीठमन्त्रः। पञ्चाशत् लिपिभिरित्यादि न्यासप्रकरणोक्तं ध्यानम्। आवरणपूजायां केसरमूलेष्वाग्नयादिकोणेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि अग्रे नेत्राणि, दिक्षु अस्त्रं, केसरेषु अं आं नम इत्यादि क्रमेण तत्तद्वर्णमूर्तीर्ध्यात्वा स्वरयुग्माष्टकं पत्रमूलेषु कं खं गं घं ङं नम इत्यादिक्रमेण तद्वर्णमूर्तीर्ध्यात्वा वर्गाष्टकं पूजयेत्। केचित्तु अकाराकाराभ्यां नम इत्यादि प्रकारेण पूजयन्ति। ततः पत्रमध्येषु व्यापिनी, पालिनी, पाविनी, धारिणी, मालिनी, हंसिनी, शान्तिनीः पत्राग्रेषु ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी चामुण्डा महालक्ष्मीः। तद्वहिर्लोकपालान्। तद्वहिस्तदस्त्राणि च पूजयेत्। अथैतेषां ध्यानं व्यापिन्यादीरभिधाय, शुभ्राः पत्रेषु संपूज्या धृताक्षगुणपुस्तकाः।

दण्डं कमण्डलुं पश्चादक्षसूत्रमथाभयम्।
विभ्रतीकनकच्छाया ब्राह्मी कृष्णाजिनोज्वला ॥ २ ॥

दण्डं कमण्डलुमिति वामाधोहस्तमारभ्य प्रादक्षिण्येन।

शूलं परश्वधं क्षुद्रदुन्दुभिं नृकरोटिकाम् ।
वहन्ती हिमसङ्काशा ध्येया माहेश्वरी शुभा ॥ ३ ॥

क्षुद्रदुन्दुभिर्डमरुः, नृकरोटिका नृकपालास्थि ।

अङ्कुशं दण्डखट्वाङ्गौ पाशञ्च दधती करैः ।
ध्येया बन्धूकसंकाशा कौमारी कामदायिनी ॥ ४ ॥
चक्रं घण्टां कपालञ्च शंखं च दधती करैः ।
तमालश्यामला ध्येया वैष्णवी विभ्रमोज्ज्वला ॥ ५ ॥
मुसलं करवालञ्च खेटकं दधती हलम् ।
करैश्चतुर्भिर्वाराही ध्येया कालघनच्छविः ॥ ६ ॥
अङ्कुशं तोमरं विद्युत्कुलिशे बिभ्रती करैः ।
इन्द्रनीलनिभेन्द्राणी ध्येया सर्वसमृद्धिदा ॥ ७ ॥
शूलं कृपाणं नृशिरः कपालं दधती करैः ।
मुण्डस्रग् मण्डिता ध्येया चामुण्डा रक्तविग्रहा ॥ ८ ॥
अक्षस्रजं बीजपूरं कपालं पङ्कजं करैः ।
वहन्ती हेमसङ्काशा महालक्ष्मीः समीरिता ॥ ९ ॥
दीक्षितः प्रोक्तमार्गेण न्यसेद्दक्षं समाहितः ।
जपेत्तत्संख्यया विद्वान् युतं मधुराप्लुतैः ॥ ॥ १० ॥
विदधीत तिलैर्होमं मातृकामन्वहं यजेत् ।

अथ भूतलिपि मन्त्रः—

पञ्चह्रस्वाः सन्धिवर्णा व्योमेवाग्निजलन्धरा ।
अन्त्यमाद्यं द्वितीयञ्च चतुर्थं मध्यमं क्रमात् ॥ ११ ॥
पञ्चवर्गाक्षराणिस्युर्वान्तश्वेतेन्दुभिस्सह ।
एषा भूतलिपिः प्रोक्ता द्विचत्वारिंशदक्षरैः ॥ १२ ॥

आयस्वराणां वर्गाणां पञ्चमाः शार्णसंयुताः ।

वर्गाद्य इति विज्ञेया नववर्गाः स्मृता अमी ।

व्योमेवाग्नि जलक्षोणीः वर्गवर्णान् पृथग् विदुः ॥ १३ ॥

अस्य ॐ मन्त्रस्य दक्षिणामूर्त्तिऋ्षिर्गायत्र च्छन्दः सरस्वती देवता विद्याद्यभीष्टसिद्धये विनियोगः। हं यं रं वं लं हृदयाय नमः, ङं कं खं घं गं शिरसे स्वाहा, ञं चं छं झं जं शिखायै वषट्, णं टं ठं ढं डं कवचाय हुँ, नं तं थं धं दं नेत्रत्रयाय वौषट्, मं पं फं भं बं अस्त्राय फट्—इत्यङ्गमन्त्राः।

अथमन्त्रन्यासः—आधारे अ, अधिष्ठाने इ, नाभौ उ, हृदि ऋ, गले लृ, भ्रूयुगमध्ये ए, तदुपरि नादे ऐ, तदुपरि शक्त्याम् ओ, तदुपरि शिरसि औ, ऊर्ध्वमुखे ह, पूर्वमुखे य, दक्षिणमुखे र, उत्तरमुखे व, पश्चिममुखे ल, दक्षिण वाहोरङ्गुल्यग्रे ङ, मूले क, द्वितीयसन्धौ ख, अङ्गुलीमूले घ, करमूले ग, एवं वामवाहौ ञ च छ झ ज, दक्षिणपादे ण ट ठ ढ ड, वामपादे न त थ ध द, उपरि म, पार्श्वयोः प फ, नाभौ भ, पृष्ठे व, गुह्ये श, हृदि ष, भ्रूमध्ये स, अयं सृष्टिप्रकारेण मन्त्रवर्णन्यासः। अत्र वर्णा विसर्गान्ता न्यसनीयाः।

अथस्थितिप्रकारः।

वर्गाणां तृतीयद्वितीयचतुर्थप्रथमपञ्चमान् विन्दुविसर्गसहितान् वर्णान् क्रमेणोक्तस्थानेषु न्यसेत्।

अथ संहारः।

तत्र विलोमक्रमेण सविन्दुकान् वर्णानुक्तस्थानेषु न्यसेत्। प्रथमं चतुर्दलं, तदवहिरष्टदलं, तद्वहिः षोडशदलं, तद्वहिर्द्वात्रिंशद्दलं, तद्वहिः चतुःषष्टिदलं पद्मं पूजायन्त्रम्। मेधा प्रज्ञा प्रभा विद्या धी धृति बुद्धि विद्येश्वर्य्यः पीठशक्तयः। ह्सौः इति पीठमन्त्रः।

ध्यानन्तु—

ध्यायेल्लिपितरोर्मूले देवीन्तन्मयपङ्कजे।

वदन्ति सुधियो वृक्षं नित्यं वर्णमयं शुभम् ॥ १४ ॥

परसम्विन्महावीजं विन्दुनादमहाशिरम्।

पृथिव्यक्षरशाखाभिः सर्वाशासु विजृम्भितम् ॥ १५ ॥

सलिलाक्षरपत्रैः स्वैः संच्छादितदिगन्तरम् ।
वह्निवर्णाङ्कुरैर्दीप्तं रत्नैरिव सुरद्रुमम् ॥ १६ ॥
मरुद्वर्णल सत्पुष्पैर्द्योतयन्तं वपुः श्रियः ।
आकाशार्णफलैर्नम्रं सर्वभूताश्रयं परम् ॥ १७ ॥

परामृताख्यमधुभिः सिञ्चन्तं परमेश्वरीम् ।
वेदागमादिभिः क्लृप्तसमुन्नतिमनोहरम् ॥ १८ ॥
शिवशक्तिमयं साक्षात् छायाश्रितजगत्त्रयम् ।
एनमाश्रित्य सुधियः सर्वान्कामानवाप्नुयुः ॥ १९ ॥

अङ्कोन्मुक्तशशाङ्ककोटिसदृशी–
मापीनतुङ्गस्तनीम् ।
चन्द्रार्धाङ्कितमस्तकाम्मधुमदा–
दालोलनेत्रत्रयाम् ॥ २० ॥

बिभ्राणामनिशं वरं जपवटीं
विद्यां ... ...
... ...
... ...

स्वा । वामनासापुटे दि, मुखे नि, लिङ्गे स्वा; गुदे हा इति-वर्णन्यासः ।

अं कं खं गं घं ङं आँ हृदयाय नमः, इं चं छं जं झं जं ईं शिरसे स्वाहा, उं टं ठं डं ढं णं ऊं शिखायै वषट्, एं तं थं दं धं नं ऐं कवचाय हुँ, ओं पं फं बं भं मं औं नेत्रास्त्रां वौषट्, अं यं रं लं वं शं पं सं हं लं क्षः अः अस्त्राय फट् इत्यङ्गमन्त्राः । आवाहनप्रकरणोक्त स्वरूपं पद्मं पूजायन्त्रं, मेधा, प्रज्ञा, प्रभा, विद्या, धी, धृति, स्मृति, बुद्धि, विद्येश्वर्य्यः पीठ-शक्तयः । हसौ इति पीठमन्त्रः । ध्यानन्तु—

तरुणशकलमिन्दोर्बिभ्रतीशुभ्रकान्तिः
कुचभरनमिताङ्गी सन्निषण्णासिताब्जे ।
निजकरकमलोद्यल्लेखिनीपुस्तकश्रीः
सकलविभवसिध्द्यै पातु वाग्देवता वः ॥ २१ ॥

लेखिनीपुस्तके दक्षिणवामकरयोः । आवरणपूजायाम् आग्नेयादिकोण-केसरेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि अग्रे नेत्रं दिक्केसरेषु अस्त्रं, पूर्वादिदलेषु योगा-सत्या-विमला-ज्ञाना-बुद्धि-स्मृति-मेधाप्रज्ञाः, दलाग्रेषु ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराहीन्द्राणी, चामुण्डा, महालक्ष्मीः, तद्बहिर्लोकपान्, तद्बहिस्तदस्त्राणि च पूजयेदिति । अत्र योगादयो ज्ञानमुद्रा पुस्तकहस्ता ध्येयाः । ब्राह्म्यादिध्यानन्तु मातृकामन्त्रे द्रष्टव्यम् ।

दशलक्षं जपेन्मत्रं दशांसं जुहुयात्ततः ।
पुण्डरीकैः पयोयुक्तैस्तिलैर्वामधुराप्लुतैः ॥ २२ ॥

हृदयान्ते भगवति वद शब्दयुगं ततः ।
वाग्देवि वह्निजायान्तं वाग्भवाद्यं समुद्धरेत् ॥ २३ ॥

मनुं षोडशवर्णाढ्यं वागैश्वर्य्यफलप्रदम् ।

अत्र "मनोः षड्भिः पदैः कुर्यात् षडङ्गं जातिसंयुतैः" रित्यत्र वदवदेत्येकं पदं नित्यवीप्सयोरितिसूत्रेण निमित्तार्थस्य वीप्सार्थस्य च विहितायां पचति पचति वृक्षं वृक्षं सिञ्चतीत्यादि द्विरुक्तौ पदभेदाभावस्य व्यवस्थितत्वात् । अतएव "सम्भवामि युगे युगे" यो यो यां यामित्यादौ द्वितीययकारो लघुः पठ्यते । एतस्मिन्मत्रे अङ्गमन्त्रध्यानातिरिक्तं सर्वं पूर्वदशाक्षरतुल्यं, षडङ्ग-मन्त्रास्तु ऐँ हृदयाय नमः, नमः शिरसे स्वाहा, भगवति शिखायै वषट्, वद वद कवचाय हुँ, वाग्देवि नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय, फट् इति । ध्यानन्तु—

शुभ्रां स्वच्छविलेपमाल्यवसनां
शीतांशुखण्डोज्ज्वलाम्

व्याख्यामक्षगुणं सुधाढ्यकलशं
विद्याञ्च हस्ताम्बुजैः ।
बिभ्राणां कमलासनां कुचलतां
वाग्देवतां सुस्मिताम्
वन्दे वाग्विभवप्रदां त्रिनयनां
सौभाग्यसम्पत्करीम् ॥ २४ ॥

व्याख्यामक्षगुणमिति दक्षिणाधो हस्तमारभ्य प्रादक्षिण्येन ।

हविष्याशी जपेत्सम्यक् वसुलक्षमनन्यधीः ।
दशांसं जुहुयादन्ते तिलैराज्यपरिप्लुतैः ॥ २५ ॥

तारो मायाधरो विन्दुः शक्तिस्तारः सरस्वती ।
ङेन्तानत्यन्तिको मन्त्रः प्रोक्त एकादशाक्षरः ॥ २६ ॥

अस्यैकादशाक्षरसरस्वतीमन्त्रस्य कण्वऋषिर्विराट्च्छदः सरस्वतीदेवता विद्याद्यभीष्टसिद्धौ विनियोगः इति स्मृत्वा शिरोवदनहृत्सु ऋषिछन्दोदेवता विन्यस्य वर्णन्यासं कुर्यात्। तत्र ब्रह्मरन्ध्रे ओँ भ्रूमध्ये ह्रीँ, दक्षिणकर्ण-रन्ध्रे ऐँ, वामकर्णरन्ध्रे ह्रीँ, दक्षिणनेत्रे ओँ, वामनेत्रे स, दक्षिणनासापुटे र, वामनासापुटे स्व, मुखे त्यै, लिङ्गे न, गुदे मः। ऐँ हृदयाय नमः, ऐँ शिरसे स्वाहा, ऐँ शिखायै वषट्, ऐँ कवचाय हुँ, ऐँ नेत्राभ्यां वौषट्, ऐँ अस्त्राय फट्, इत्यङ्गमन्त्राः। आवाहनप्रकारणोक्तमातृकाम्भोजं पूजायन्त्रम्। मेधा, प्रज्ञा, प्रभा, विद्या, धी, धृति, स्मृति, बुद्धि विद्येश्वर्यः पीठशक्तयः। हसौः पीठमन्त्रः ध्यानन्तु—

वाणीं पूर्णनिशाकरोज्ज्वलमुखीं
कर्पूरकुन्दप्रभाम् ।
चन्द्रार्धाङ्कितमस्तकां निजकरैः
संबिभ्रतीमादरात् ॥ २७ ॥

वीणामक्षगुणं सुधाढ्यकलशं
विद्याञ्च तुङ्गस्तनीम् ।
दिव्यैराभरणैर्व्विभूषिततनुं
हंसाधिरूढां भजेदिति ॥ २८ ॥

वीणामक्षगुणमिति दक्षिणाधोहस्तमारभ्य प्रादक्षिण्येन । आवरणपूजायां देव्या दक्षिणपार्श्वे संस्कृतावाङ्मयी, वामपार्श्वे प्राकृतावाङ्मयी, अग्न्यादिकोणकेसरेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि, अग्रे नेत्रे, दिक्केसरेषु अस्त्रं, पूर्वाद्यष्टपत्रेषु प्रज्ञा, मेधा, श्रुति, शक्ति, स्मृति, वागीश्वरी, मति स्वस्तयः । दलाग्रेषु ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराहीन्द्राणी, चामुण्डा, महालक्ष्म्यः । तद्बहिर्लोकपालाः, तद्बहिस्तदस्त्राणि पूजनीयानि । ब्राह्म्याादिध्यानं मातृकापटले द्रष्टव्यम् ।

वाणीं पूर्णनिशाकरोज्ज्वलमुखीं
कर्पूरकुन्दप्रभाम् ।
चन्द्रार्धाङ्कितमस्तकां निजकरैः
संविभ्रतीमादरात ॥ २९ ॥
वीणामक्षगुणं सुधाढ्यकलशं
विद्याञ्चतुङ्गस्तनीम् ।
दिव्यैराभरणैर्व्विभूषिततनुं
हंसाधिरूढां भजेदिति ॥ ३० ॥

वीणामक्षगुणमिति दक्षिणाधोहस्तमारभ्य प्रादक्षिणेन । आवरणपूजायां देवता दक्षिणपार्श्वे संस्कृता वाङ्मयी वामपार्श्वे प्राकृतावाङ्मयीं, अग्न्यादिकोण-केसरेषु हृदयशिरः शिखाकवचानि, अग्रे नेत्रे, दिक्केसरेषु अस्त्रं पूर्वाद्यष्टपत्रेषु प्रज्ञा, मेधा, श्रुति, शक्ति, स्मृति, वागीश्वरी, मतिस्वस्तयः । दलाग्रेषु ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराहीन्द्राणी, चामुण्डा, महालक्ष्म्यः । तद्बहिर्लोक-

पालाः, तद्वहिस्तरः दस्त्राणि पूजनीयानि। ब्राह्म्यादिध्यानं मातृकापटले द्रष्टव्यम्।

जपेद्द्वादशलक्षाणि तत्सहस्रं सिताम्बुजैः
नागचम्पकपुष्पैर्वा जुहुयात्साधकोत्तमः।
वाचस्पते अमृते भूयः प्लुवः प्लविति कीर्तयेत्।
वागाद्यो मुनिभिः प्रोक्तो रुद्रसंख्याक्षरो मनुः ॥ ३१ ॥

अत्रावरणपूजायां "पूजयेत्तां यथा पुरे" ति वचनेनाव्यवहितपूर्वतारं मायाघरे विन्दुरित्याद्युक्तैकादशाक्षरोक्तस्यैवातिदेशः न पुनर्व्यवहितपूर्वतारं दशाक्षरोक्तस्य। अस्यैकादशाक्षरमन्त्रस्य कण्वऋषिर्विराट्छन्दः वाग्देवताविद्याप्सभीष्टार्थे विनियोगः। ऐं हृदयायनमः, वाचस्पते शिरसे स्वाहा, अमृते शिखायै वषट्, प्लवः कवचाय हुँ, प्लूः अस्त्राय फट् इति पञ्चाङ्गमन्त्राः। आवाहनप्रस्तावोक्तं मातृकाम्भोजं पूजायन्त्रम्। मेधा, प्रज्ञा, प्रभा, विद्या, धीः, धृति, स्मृति, बुद्धि, विद्येश्वर्य्यः पीठशक्तयः। हसौः इति पीठमन्त्रः। ध्यानन्तु—

आसीना कमले करैर्ज्जपवटीं
पद्मद्वयं पुस्तकम्
बिभ्राणा तरुणेन्दुरुद्धमुकुटां
मुक्तेन्दुकुन्दप्रभाम्,
भालोन्मीलितलोचनाकुचभर—
क्लान्ता भवद्भूतये
भूयाद्वागधिदेवता मुनिगणै—
रासेव्यमानानिशम् ॥ ३२ ॥

दक्षिणाधोहस्तमारभ्य जपमालादिकं ध्येयम्। आवारणपूजायान्तु देव्या दक्षिणपार्श्वे संस्कृता, वामपार्श्वे प्राकृतावाङ्मयो देवी। अग्न्यादिकोणकेसरेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि, दिक्केसरेष्वस्त्रं, दलेषु प्रज्ञा, मेधा, श्रुति.

शक्तिः, स्मृति, वागीश्वरी, मति, स्वस्तयः। दलाग्रेषु ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी. वैष्णवी, वाराहीन्द्राणी, चामुण्डा, महालक्ष्म्यः, तद्बहिर्लोकेशास्तद्बहिस्तदस्त्राणि पूजनीयानीति। ब्राह्मयादिध्यानं मातृकामन्त्रे द्रष्टव्यम्।

रुद्रलक्षं जपेन्मन्त्रम् दशांसं जुहुयाद् घृतैः।
तोयस्थं शयनं विष्णोः सकेवलचतुर्मुखम्॥ ३३॥
विन्दुर्धीशयुतो वह्निरिन्दुसव्याम्बुभानभृगुः।
उक्तानि त्रीणि बीजानि सद्भिः सारस्वतार्थिनाम्॥ ३४॥

अत्र तोयं, वकारः, तत्रस्थं विष्णोः शयनमनन्त आकारः कीदृशं केवलः मस्तकन्यस्तः अङ्कारः, चतुर्मुखो जकारः, ताभ्यां सहितम् एतावता ज्वां इति-बीजमित्येके। तोयस्थं विष्णोः शयनं वाकारः केवलेन अजविर्राहतेन चतुर्मुखेन सहितं तेन वाग् इति पर्य्यवसितेन वाग्बीजमैकारः प्रतिपाद्यत इत्यपरे। एवं सति लक्षितलक्षणापत्त्या वागिति स्वरूपमेवेत्यपरे। तत्रान्त्यः पक्षः साधीयान् नारायण्याद्येकवाक्यतानुरोधात्। अत्रापि मन्त्रे प्राक्प्रस्तुतेन मार्गेणेतिवचनेन तारं मायाधरो विन्दुरित्याद्युक्तैकादशाक्षरोक्तपूजा अतिदिश्यते सान्निध्यात्। अस्य मन्त्रस्य कण्वऋषिर्विराट् छन्दः सरस्वतीदेवता विद्याद्यभीष्टसिद्धौ विनियोगः। ज्वाँ हृदयाय नमः, वं शिरसे स्वाहा, स्वौं शिखायै वषट्, ज्वां कवचाय हुं, ॠं नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वों अस्त्राय फट्—इत्यङ्गमन्त्राः। प्रथम-वीजस्यान्यथोद्धारे हृदयकवचमन्त्रयोस्तदुपक्षेपः। आवाहनप्रकारोक्तमातृकाम्भोजं पूजायन्त्रम्। मेधा, प्रज्ञा, प्रभा, विद्या, धी, धृति, स्मृति, बुद्धि विद्येश्वर्य्यः पीठशक्तयः। ह्सौः इत्यासनमन्त्रः। ध्यानम्पु—

मुक्ताहारावदतां शिरसि शशिकला—
लङ्कृतां बाहुभिः स्वै—
र्व्याख्यां वर्णाक्षमालां मणिमयकलशं
पुस्तकं चोद्वहन्ती।

आपीनोतुङ्गपक्षोरुहवलिविलस—
न्मध्यदेशामधीशां ।
वाचामीहे चिराय त्रिभुवनविनुतां
पुण्डरीके निषण्णाम् ॥ ३५ ॥

व्याख्याक्षमाले दक्षिणहस्तयोः। आवरणपूजायां देव्या दक्षिणपार्श्वे संस्कृतां वामपार्श्वे प्राकृतां वाङ्मयीं देवीम्। अग्न्यादिकोणे केसरेषु हृदयशिरः शिखाकवचानि। अग्रे केसरे नेत्रे दिक्केसरेष्वस्त्रं, पूर्वाद्यष्टपत्रेषु प्रज्ञा, मेधा, श्रुति, शक्ति, स्मृति, वागीश्वरी, मात, सुधीः। दलाग्रेषु ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराहीन्द्राणी, चामुण्डा, महालक्ष्मीः। तद्बहिर्लोकपालान् तद्बहिस्तद-स्त्राणि च पूजयेदिति। ब्राह्म्याादिध्यानं मातृकापटलेऽनुसन्धेयम्।

त्रिलक्षं प्रजपेन्मन्त्रं जुहुयात्तद्दशांशतः ।
पायसेनाज्यसिक्तेन संस्कृते हव्यवाहने ॥ ३६ ॥
वाग्भवं वामनेत्रञ्च विन्दुमद्भुवनेश्वरी ।
उक्तानि त्रीणि बीजानि सद्भिः सारस्वतार्थिनाम् ॥ ३७ ॥

अत्र ऋष्यादिपूजा च सर्वं तारं माया इत्याद्युक्तैकदशार्णवत् ॥

एवमुक्तेषु मन्त्रेषु दीक्षितो यतमानसः ।
एकं यो भजते भक्त्या संभवेद् भक्ति मुक्तिभाक् ॥ ३८ ॥

स्वसितैर्गन्धकुसमैः पूजासारस्वते मनौ
दूर्वा चीनाङ्कुरं पुष्पं राजवृक्षसमुद्भवम् ।
उत्पलानि प्रशस्तानि सिन्दूराङ्कुराणि च ॥ ३९ ॥
भजन् सरस्वतीं नित्यमेतानि परिवर्जयेत् ।
आम्रातं गृञ्जनं विल्वं करञ्जं लसुनं तथा
तैलं पलाण्डुं पिण्याकं साङ्गस्थमपि भोजने ॥ ४० ॥

सर्वं पर्य्युषितं त्याज्यं सदा सारस्वतान्विना ।
न चरेन्निशि ताम्बूलं स्त्रियं गच्छेद्दिवा च न
न सन्ध्ययोः स्वपेज्जातु नाशुचिः किञ्चिदुच्चरेत् ॥ ४१ ॥
प्रदीपेषु भजेन्मौनं दिग्वस्त्राञ्च विलोकयेत् ।
न पुष्पितां स्त्रियं गच्छेन्न निन्देद् वामलोचनाम् ॥ ४२ ॥
न मृषावचनं ब्रूयान्नाक्रामेत्पुस्तकं सुधीः ।
अक्षराद्यानि पत्राणि नोपेक्षेत न लङ्घयेत् ॥ ४३ ॥
चतुर्दश्यष्टमीपर्वप्रतिपद्ग्रहणेषु च ।
संक्रमेषु च सर्वेषु विद्यान्नैव पठेद्बुधः ॥ ४४ ॥
व्याख्याने संत्यजेन्निद्रामालस्यं जृम्भणं बुधः ।
क्रोधं निष्ठीवनं चोर्ध्वं नीचाङ्गस्पर्शनं तथा ॥ ४५ ॥
मनुष्यसर्पमार्जारमण्डूकनकुलादयः ।
अन्तरा यदि गच्छेयुः तदा व्याख्यां परित्यजेन् ॥ ४६ ॥
निशासु दीपभ्रंशे च पाठं सद्यः परित्यजेत् ।
उक्तान्दोषानिदान् सम्यक् ज्ञात्वा यो भवतीं यजेत् ॥ ४७ ॥

वाचां सिद्धिमवाप्नोति वाचस्पतिरिवापरः। स्तवस्तु—

अमलकमलाधिवासिनि
मनसो वैमन्यदायिनी मनोज्ञे ।
सुन्दरगात्रि सुशीले
तव चरणाम्भोरुहं नमामि सदा ॥ ४८ ॥
अचलात्मजा च दुर्गा
कमलात्रिपुरेतिभेदिता जगति ।
यासां त्वमेव वाचामीश्वरि
सर्वात्मना प्रसीद मम ॥ ४९ ॥

त्वच्चरणाम्भोरुहयोः
प्रणामहीनः पुनर्द्विजातिरपि ।
भूयादनेऽमूकः
त्वद्भक्तो भवति सर्वज्ञः ॥ ५० ॥

मूलाधारमुखोदात
विसतन्तु निभयप्रभाप्रभावतया ।
विसृतलिपित्राताहित-
मुखचरणादिके प्रसीद मम ॥ ५१ ॥

वर्णतनोऽमृतवर्णे
नियतमणिर्वर्णितोपि योगी.....।
निर्णीतकरणविन्दवे
वर्णयितुं देवि देहि सामर्थ्यम् ॥ ५२ ॥

ससुरासुरमौलिलसन्-
मणिप्रभादीपितांघ्रियुगनलिने ।
सकलागमनस्वरूपे
सर्वेश्वरि सन्निधिं निधेहि मयि ॥ ५३ ॥

पुस्तकजपवटिहस्ते
वरदाभयचिह्नचारुबाहुलते ।
कर्पूरामलदेहे
वागीश्वरि शोधयाशु मम चेतः ॥ ५४ ॥

क्षौमाम्बरपरिधाने
मुक्तामणिभूषणे मुदावासे ।
स्मितचन्द्रिकाविकाशित-
मुखेन्दुबिम्बेऽम्बिके प्रसीद मम ॥ ५५ ॥

विद्यारूपेऽविद्या-

नाशिनि वेद्ये विद्योतितान्तरात्मविद्यां ।

गद्यैस्सपद्यजातै-

र्मुनिभिः स्तुते प्रसीद मम ॥ ५६ ॥

त्रिमुखि त्रयीस्वरूपे

त्रिपुरे त्रिदशाभिवन्दितांघ्रियुगे ।

····क्षणविलसितवक्त्रे

त्रिमूर्त्तिमूलात्मिके प्रसीद मम ॥ ५७ ॥

त्वच्चरणसरसिजन्मस्थित-

महितधियां न लिप्यते दोषः ।

भगवति भक्तिमतस्त्वयि

परमां परमेश्वरि प्रसीद मम ॥ ५८ ॥

बोधात्मिके बुधानां

हृदयाम्बुजचारुरङ्गनटनपरे ।

भगवति भवभङ्ग-

करीन्ददभक्तिभक्तार्थदे प्रसीद मम ॥ ५९ ॥

वागीशीस्तवमिति यो

जपार्चनाहवनवृत्तिषु प्रजपेत् ।

सतु विमलचित्तवृत्ति-

र्देहापदिनित्यशुद्धमेति पदम् ॥ ६० ॥

इति प्रपञ्चसारीयः ।

इति भवानन्दरायकारिते श्रीगोविन्दकृते

पूजाप्रदीपे

सरस्वती-पूजा-परिच्छेदः ।

******

अथ लक्ष्मीमन्त्राः ।

तत्र—

वान्तं वह्निसमारूढं वामनेत्रेन्दुभूषितम् ।

बीजमेतच्छ्रियःप्रोक्तं चिन्तारत्नमिवापरम् ॥ १ ॥

अस्य श्री बीजस्य भृगुऋॅषिर्निवृत्तच्छन्दः श्रीदेवताभीष्टार्थंसिद्धौ विनियोगः। श्रां हृदयाय नमः। श्रीं शिरसे स्वाहा। श्रूं शिखायै वषट्। श्रैं कवचाय हुँ। श्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। श्रः अस्त्राय फट् इत्यङ्गमन्त्राः।

विभूत्युन्नतिकान्तिहृष्टि उत्कीर्त्ति सन्नति व्युष्टि उत्कृष्टि ऋद्धयः पीठशक्तयः।

बीजेनैवासनदानम् ।

अथ ध्यानम्—

कान्त्या काञ्चनसन्निभां हरगिरि-

प्रख्यैश्चतुर्भिर्गजै

र्हस्तोत्क्षिप्तहिरण्ययामृतघटै-

रासिच्यमानां श्रियम् ।

बिभ्राणां वरमब्जयुग्ममभयं

हस्तैः किरीटोज्ज्वलाम्-

क्षौमावद्धनितम्बविम्बललितां

वन्देऽरविन्दस्थिताम् ॥ २ ॥

अधो दक्षिणहस्तमारभ्य वरादीनि ध्येयानि। आवरणपूजा तु आग्नेयादिकोणकेसरेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि। अग्रे केसरे नेत्रं, दिक्केसरेष्वस्त्रं, पूर्वादिदिग्दलेषु वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्नानिरुद्धान्, शङ्खचक्रगदा—पद्महस्तान् पीतवस्त्रान् यथाक्रमं हिमपीततमालेन्द्रनीलाभान् आग्नेयादिकोणे दलेषु दमकसलिलगुग्गुलुकुरन्टकान् गजान् देवीदक्षिणे वसुधान्वितं शंखं निधि

वामे वसुमतीयुक्तं पद्मनिधिं, दलाग्रेषु वलाको, विमला, कमला, वनमालिका, विभीषिका, मालिका, शाङ्करी, वसुमालिकाः, तद्बहिल्लोकपालान्-तद्बहिस्तदस्त्राणि च पूजयेत् ।

अत्र च—

यजेच्छंखनिधिं देव्याः दक्षिणे दयितान्वितम् ।
मुक्तामाणिक्यसंकाशौ किञ्चित्स्मितमुखाम्बुजौ ॥ ३ ॥

अन्योन्यालिङ्गनपरौ शंखपङ्कजधारिणौ ।
विगलद्रत्नवर्षाभ्यां शंखाभ्यां मूर्न्द्धिलाञ्छितौ ॥ ४ ॥

तुन्दिलं कम्बुकनिधिं वसुधारां घनस्तनीम् ।
वामतः पङ्कजनिधिं प्रियया सहितं यजेत् ॥ ५ ॥

सिन्दुराभौ भुजाश्लिष्टौ रक्तपद्मोत्पलान्वितौ ।
निस्सरद्रत्नवर्षाभ्यां प्रद्माभ्यां मूर्न्द्धि राजितौ ॥ ६ ॥

तुन्दिलं पङ्कजनिधिं तन्वीं वसुमतीमपि ।

इति वाक्ये वसुधारां घनस्तनीं तन्वीं वसुमतीमपीति । वसुधारा वसुमत्योः कर्मणोर्यजेदिति क्रिययान्वयात्तयोरपि पूज्यत्वं, न तु शंखपद्मनिधिध्यानमात्रोपयोगित्वमिति ।

भानुलक्षं जपेन्मन्त्रं दीक्षितो विजितेन्द्रियः ।
श्रियमभ्यर्चयेन्नित्यं सुगन्धिकुसुमादिभिः ॥ ७ ॥

तत्सहस्रं प्रजूहुयात्कमलैर्मधुरोक्षितैः ।
जपान्ते जूहुयान्मन्त्री तिलैर्वा मधुरोक्षितैः ॥ ८ ॥

विल्वैः फलैर्वा जूहुयान्त्रिभिर्वा साधकोत्तमः ।
वाग्भवं वनिता विष्णोर्म्मायामकरकेतनः ।
चतुर्बीजात्मको मन्त्रश्चतुर्वर्गफलावहः ॥ ९ ॥

अथ चतुरक्षर श्रीमन्त्रस्य ध्यानं विना सर्वं श्रीबीजवत्। ध्यानन्तु—

माणिक्यप्रतिमप्रभां हिमनिभै-
स्तुङ्गैश्चतुर्भिर्गजै—
र्हस्ताग्राहितरत्नकुम्भसलिलै-
रासिच्यमानां सदा।
हस्ताब्जैर्वरदानमम्बुजयुगा-
भीतीर्दधानां हरेः
कान्तां काङ्क्षितपारिजातलतिकां
वन्दे सरोजासनाम्॥ १०॥

वरादयोऽधोदक्षिणहस्तमारभ्याधो वामहस्तपर्य्यन्तं ध्येयाः।

भानुलक्षं हविष्याशी जपेदन्ते सरोरुहैः।
जुहुयादरुणैः फुल्लैस्तत्सहस्त्रं जितेन्द्रियः॥ ११॥
दीर्घसारादिसर्गान्तौ ब्रह्मभानुवसुन्धराः।
वान्ते सिन्यै प्रियावह्निर्मन्त्रः प्रोक्तो दशाक्षरः॥ १२॥

दीर्घात्मौ नकारमकारौ यथाक्रममादिसर्गान्तौ, आदिभूतश्च विसर्गान्तश्च तौ, आदिभूतः प्रथमः, यद्वा दीर्घाशब्देन न रूपव्यञ्जनमात्रमुक्तां तथा च अस्य अकारस्य आदिरिति व्युत्पत्त्या आदिशब्देन साको नकारो लभ्यते—एतावता नम इति रूपम्। अस्य दशाक्षरलक्ष्मीमन्त्रस्य दक्षऋषिर्विराटछन्दः श्रीर्देवता अभीष्टार्थसिद्धौ विनियोगः।

ओं देव्यै नमो हृदयाय नमः। ओं पद्मिन्यै नमः शिरसे स्वाहा। ओं विष्णुपत्न्यै नमः शिखायै वषट्। ओं वरदायै नमःकवचाय हुँ। ओं कमलरूपायै नमः अस्त्राय फट् इति पञ्चाङ्गमन्त्राः।

विभूति, उन्नति, कान्ति, हृष्टि, कीर्ति, सन्नति, व्युष्टि, उत्कृष्टि, एताः पीठशक्तयः।

बीजेनैवासनदानम्।

ध्यानम्—

आसीना सरसीरुहे स्मितमुखी-
हस्ताम्बुजैर्बिभ्रती
दानं पद्मयुगाभये च वपुषा-
सौदामिनी सन्निभा ।
मुक्तादामविराजमानपृथुलो—
त्तुङ्गस्तनोद्भासिनी-
पायाद् वः कमलाकटाक्षविभवैरानन्द-
यन्ती हरिम् ॥ १३ ॥

दानं वरमुद्रादानादीनि चाधोदक्षिणहस्तभारभ्य प्रादक्षिण्येन ध्यातव्यानि ।

आवरणपूजायां आग्नेयादिकोणकेसरे हृदयशिरःशिखाकवचानि. दिक्के-सरेष्वस्त्रं, पूर्वादिष्टदलेषु बलाका, विमला, कमला, वनमालिका, विभीषिका, बालिका, शाङ्करी वसुमलिकाः, तद्बहिर्लोकपालाः तद्वहिस्तदस्त्राणि पूजनीयानि ।

दशलक्षं जपेदेनं मन्त्रविद्विजितेन्द्रियः ।
दशांशं जुहुयान्मन्त्री मधुराक्तैः सरोरुहैः ॥ १४ ॥
वाग्भवं शम्भुर्बनितारमामकरकेतनाः ।
तार्त्तीयश्च जगत्पार्श्वौ बह्निवीजसमुज्ज्वलः ॥ १५ ॥
अर्घीशाठ्योभृगुस्त्यैहन्मन्त्रोऽयं द्वादशाक्षरः ।
महालक्ष्म्याः समुस्थाराध्यः सर्वसिद्धिदः ॥ १६ ॥

तार्त्तीयश्च 'हसौः' इति वीजम् । अस्य द्वादशाक्षरमहालक्ष्मीमन्त्रस्य ब्रह्मात्रृषिर्गायत्रं छन्दो महालक्ष्मीर्देवता अभीष्टार्थसिद्धौ विनियोगः । इति स्मृत्वा ऋष्यादिकं न्यासं विधाय मूलमन्त्रेण हस्तौ संशोध्य अङ्गुष्ठयोः ओँ ऐँ नमः । तर्जन्योः ओँ ह्रीँ नमः । मध्यमयोः ओँ श्रीँ नमः अनामिकयोः ओँ क्लीँ नमः । कनिष्ठयोः ओँ सौँ नमः । करतलयोः ओँ जगत्सूत्यै नमः । इति

विन्यस्य मूर्द्धादिचरणान्तं मन्त्रं विन्यस्य मूर्द्धि ऐं, नेत्रयोः ह्रीं, हृदये श्रीं, गुह्ये क्लीं, पादयोः श्रौं हृदित्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्रेषुधातुषु जगत्प्रसूत्यै नमः इतिवर्णान् यथाक्रमं विन्यसेत्। ऐं ज्ञानाय हृदयाय नमः, ह्रीं ऐश्वर्याय शिरसे-स्वाहा, श्रीं शक्तये शिखायै वषट्, क्लीं बलाय-कवचाय हुं, श्रौं वीर्याय नेत्रत्रयाय वौषट्। जगत्प्रसूत्यै नमः तेजसे अस्त्राय फट् इति खडङ्गमन्त्राः।

विभूति, उन्नति, कान्ति, हृष्टि, कीर्त्ति, सन्तति, व्युष्टि, उत्कृटि, ऋद्धि, एता पीठशक्तयः।

श्रौं इति पीठमन्त्रम्।

अथ ध्यानम्—

एवं न्यस्तशरीरे सौ स्मरेद्ध्यानमद्भुतम्।
तन्मध्यस्थस्य सरसः पुलिनेऽति मनोहरे ॥ १७ ॥
परितः पारिजाताख्यमण्डपंमणिकुट्टिमम्।
तन्मध्ये भावयेन्मन्त्री पारिजातं मनोहरम् ॥ १८ ॥
तस्याधस्तात्स्मरेन्मन्त्री रत्नसिंहासनं महत्।
तत्र सञ्चिन्तयेन्मन्त्री महालक्ष्मीं मनोहराम् ॥ १९ ॥

वालार्कद्युतिमिन्दुखण्डविलसत्
कोटीरहारोज्ज्वलाम्
रत्नकल्पविभूषितां कुचनतां
शालेः करैर्म्मञ्जरीम्
पद्मौ कौस्तुभरत्नमप्यविरतं
सम्बिभ्रतीं सस्मिताम्
फुल्लाम्भोजविलोचनत्रययुतां
ध्यायेत्परां देवताम् ॥ २० ॥

शालिमञ्जर्य्यादीनि अधो दक्षिणस्तमारभ्य प्रादक्षिण्येन चिन्तनीयानि। विस्तरेण तु ध्यानं शारदायां द्रष्टव्यम्।

अथावरणपूजा—तत्र देवीदक्षिणे शङ्करनन्दनम्, वामे कन्दर्पं, आग्नेयादि-कोणकेसरचतुष्टये हृदयशिरः शिखाकवचानि, अग्रे नेत्रं—दिक्वेसरेष्वस्त्रम्, पत्रम-ध्येषु-उमा-श्री-सरस्वती, दुर्गा, धरणी, गायत्री, देवी, उषाः, एताश्च पद्महस्ताः स्वभूषणाः ध्येयाः। अग्रे गङ्गां यमुनाञ्च, दक्षिणवामपार्श्वयोः शङ्ख-पद्मनिधी, देव्याः पश्चात् वरुणं परितः राशिमण्डलानुसारेण-मेष, वृष, मिथुन, कर्कट, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भराशीन्, तद्बहिः रविचन्द्रमङ्गलबुधबृहस्पतिशुक्रशनै-श्चरराहुकेतून् ग्रहान्। पूर्वादिदिक्षु चतुर्दन्तान् ऐरावत, पुण्डरीक, वामन कुमुदाञ्जन, पुष्पदन्त सार्वभौम सुप्रतीकान् दिग्गजान् तद्बहिर्लोकपालान्, तद्बहि-स्तदस्त्राणि च पूजयेदिति।

आवरणध्यानं तत्र कन्दर्पं पुष्पाञ्जलिकरम् उमाद्याः शक्तयो ध्येया. पद्महस्ताः स्वभूषणाः।

जह्नुसूर्यसूते पूज्ये पादप्रक्षालनोद्यते।
शंखपद्मनिधी पूज्यौ पार्श्वयोर्धृतचामरौ ॥ २१ ॥

धृतातपत्रं वरुणं पूजयेद् पश्चिमे ततः।
अर्च्चयेद्दिग्गजान् दिक्षु चतुर्दन्तविभूषितान् ॥ २२ ॥

एवं सञ्चिन्तयेद्देवीं हविष्याशी जितेन्द्रियः।
भानुलक्षं जपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयाद्घृतैः ॥ २३ ॥

जुहुयाच्छ्रीफलैः पद्मैः प्रत्येकमयुतं ततः।
तर्पयेत्सलिलैः शुद्धैः सुगन्धैरयुतं द्वयम् ॥ २४ ॥

शम्भुपत्नी श्रिया रुद्धा कमौ भगवती मही।
ब्रह्मादित्यौ धरादीर्घा लक्षादिर्भगवान्मरुत् ॥ २५ ॥

प्रसीद युगलं भूयः श्रीरुद्धा भुवनेश्वरी।
महालक्ष्मी नमोन्तः स्यात् प्रणवादिरयम्मनुः ॥
सप्तविंशत्यक्षराढ्यः प्रोक्तः सर्वसमृद्धिदः ॥ २६ ॥

लाभादिरिति लक्षयोर्मध्ये आदिर्लकार एव।

अस्य मन्त्रस्य ब्रह्माऋषिर्गायत्रंच्छन्दो महालक्ष्मीर्देवता अभीष्टार्थसिद्धौ विनियोगः। श्रीँ ह्राँ श्रीँ कमले श्रीँ ह्राँ श्रीँ हृदयाय नमः, श्रीँ ह्रीँ श्रीँ कमलालये श्रीँ ह्रूँ श्रीँ शिरसे स्वाहा, श्रीँ ह्रीँ श्रीँ प्रसीद श्रीँ ह्रीँ श्रीँ शिखायै वषट्, श्रीँ ह्रोँ श्रीँ प्रसीद श्रीँ ह्रोँ श्रीँ कवचाय हुँ, श्रीँ ह्रीँ श्रीँ महालक्ष्मि श्रीँ ह्रीँ श्रीँ अस्त्राय फट्, इति पञ्चाङ्गमन्त्राः।

विभूत्युन्नति, कान्ति, हृष्टि कीर्ति, सन्तति, व्यष्टि, उत्कृष्ट ऋद्धयः पीठशक्तयः।

श्रीँ इति पीठमन्त्रः।

सिन्दुरारुणकान्तिमब्जवसतिं
सौन्दर्य्यवारान्निधिम्
कोटीराङ्गदहारिकुण्डलकटी
सूत्रादिभिर्भूषिताम्।
हस्ताब्जैर्वसुपात्रमब्जयुगला-
दर्शौ वहन्तीं परा-
मावीतां परिचारिकाभिरनिशं
ध्यायेत प्रियां शार्ङ्गिणः॥ २७॥

इति ध्यानम्।

वसुपात्रादानि दक्षिणाधोहस्तमारभ्य ध्यातव्यानि। आवरणपूजायां केसरेषु आग्नेयादिकोणेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि, दिक्षु अस्त्रं, दलमूलेषु श्रीधर, हृषीकेश, वैकुण्ठ, विश्वरूप, वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्नानिरुद्धाः। दलमध्येषु भारती, पार्वती, चान्द्री, शची, दमक, सलिल, गुग्गुलुकुरुनृकाः, दलाग्रेषु अनुराग, विसम्वाद, विजयवल्लभ, मद, हर्ष बल तेजांसि देवीवाणाः। तद्वहिर्लोकपाला-स्तद्बहिस्तदस्त्राणि च पूजनीयानि।

लक्षं जपेत् फलैर्विल्वैर्जुहुयान्मधुरोक्षितैः।
दशांशं संस्कृते वह्नौ प्राक् प्रोक्तेनैव वर्त्मना॥ २८॥

अथ श्रीमन्त्रेषु साधारणधर्मा :—

श्रियो मन्त्रं भजन्मन्त्री श्रीसूक्तान्यपि सञ्जपेत् ।
भूयसीं श्रियमाकांक्षन् सत्यवादी भवेत्सदा । २९ ॥
अत्यगाशामुखोऽश्नीयात् स्मितपूर्वं प्रियम्वदेत् ।
शयीत शुद्धशय्यायां तरुण्या सह नान्यया ।
नग्नो नावतेरदम्भस्तैलाभ्यक्तो न भक्षयेत् ॥ ३० ॥
हरिद्रां न मुखे लिम्पेन्नजप्यादशुचिः कचित् ।
न वृथा विलिखेद्भूमिं न विल्वं द्रोणमम्बुजम् ॥ ३१ ॥
धारयेन्मूर्ध्नि नैवेद्यादानं तैलञ्च केवलम् ।
मलिनोनभवेज्जातु कुत्सितान्नं न भक्षयेत् ॥ ३२ ॥
द्रोणपङ्कजविल्वानि पद्भ्यां जातु न लंघयेत् ।
सहदेवीमिन्दुवर्णां श्रीदेवीं विष्णुवल्लभाम् ।
कन्यां जम्बुप्रवालञ्च धारयेन्मूर्द्धि न सर्वदा ॥ ३३ ॥
इत्याचारपरो नित्यं विष्णुभक्तो दृढव्रतः ।
श्रियमाप्नोति महतीं देवानामपि दुर्ल्लभाम् ॥ ३४ ॥

अथ श्रीसूक्तम् ।

ओँ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो भजावह ॥ १ ॥
ताम्म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ॥ २ ॥
अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रबोधिनीम् ।
श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्म्मा देवी जुषताम् ॥ ३ ॥

कांसोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम् ।
पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥ ४ ॥

चन्द्रां प्रभासां यशसाज्वलन्ती-
श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम् ।
तां पद्मिनीं शरणं प्रपद्येऽलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे ॥ ५ ॥

आदित्यवर्णे तपसोधिजातो
वनस्पतिस्तववृक्षोऽथ बिल्वः ।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु
मायाऽन्तरायाश्च बाह्याऽलक्ष्मीः ॥ ६ ॥

उपैतु, मां देवसखः कीर्त्तिश्च मणिना सह ।
प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे ॥ ७ ॥

क्षुत्पिपासाममलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम् ।
अभूतिमसमृद्धिञ्च सर्वान् निर्णुद मे गृहात् ॥ ८ ॥

गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥ ९ ॥

मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि ।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ॥ १० ॥

कर्दमेन प्रजाभूता मयि सम्भवकर्दम ।
श्रियं वासय मे गृहे मातरं पद्ममालिनीम् ॥ ११ ॥

आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे ।
नीच देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले ॥ १२ ॥

आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्
सूर्य्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो मआवह ॥ १३ ॥

आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो मआवह ॥ १४ ॥
तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽ--
श्वान् विन्देयं पुरुषानहम् ॥ १५ ॥
यः शुचिः प्रणतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम्
श्रियः पञ्च दशर्चञ्च श्रीकामः सततं जपेत् ॥ १६ ॥
पद्मानने पद्मरूपे पद्माक्षि पद्मसम्भवे ।
त्वं मां भजस्व पद्माक्षि येन सौख्यं लभाम्यहम् ॥ १७ ॥
अश्वदायि गोदायि धनदायि महाधने
धनम्मे जुषतां देवि सर्वकामार्थसिद्धये ॥ १८ ॥
पुत्रपौत्रधनंधान्यं हस्त्यश्वाँश्च वै रथम् ।
प्रजानां भवसि मातरायुष्मन्तं करोतु माम् ॥ १९ ॥
वर्षन्तु ते विभाव·······दैवोऽभ्रस्य विद्युतः ।
रोहन्तु सर्ववीजान्य·······विधौ जहि ॥ २० ॥

इति ऋग्वेदीयं श्रीसूक्तम् ।

इति भवानन्दरायकारिते श्रीगोविन्दकृते
पूजाप्रदीपे
श्रीमन्त्रपूजापरिच्छेदः ।

******

अथ भुवनेश्वरीमन्त्राः ।

नकुलीशोऽग्निमारूढो वामनेत्रेन्दुचन्द्रवान् ।

वीजं तस्यां समाख्यातं सेवितं सिद्धकाङ्क्षिभिः ॥ १ ॥

अत्र संहारप्रकारेण सृष्टिप्रकारेण च मातृकां विन्यस्य प्राणायामादिकम्विधाय अस्य श्रीभुवनेश्वरीमन्त्रस्य शक्तिऋ षिर्गायत्री छन्दो भुवनेश्वरीदेवताऽभीष्टार्थं-सिद्धौ विनियोगः इति स्मृत्वा शिरोवदनहृत्सु ऋषिच्छन्दोदेवता विन्यस्य षड्दीर्घ-भाजामूलेन षड्ङ्गानि विन्यस्य मूलेन व्यापकं कृत्वा मस्तके ओँ हृल्लेखायै नमः, वदने ऐँ गगनायै नमः, हृदये उँ रक्तायै नमः, गुह्ये इँ करालिकायै नमः, पदद्वये अँ महोच्छूष्मायै नमः, ऊर्ध्वमुखे ओँ हृल्लेखायै नमः, पूर्वमुखे ऐँ गगनायै नमः, दक्षिणमुखे उँ रक्तायै नमः, उत्तरमुखे इं करालिकायै नमः, पश्चिममुखे अँ महो-च्छुष्मायै नमः, इति विन्यस्य कराङ्गन्यासं कुर्यात् । तत्र ह्रां हृदयाय नमः, ह्रीँ शिरसे स्वाहा, ह्रूँ शिखायै वषट्, ह्रैँ कवचाय हुं, ह्रौँ नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्रः अस्त्राय फट् इतिमन्त्राः । ततः भाले गायत्रीसहितब्रह्मणे नमः, दक्षिणकपोले सावित्रीसहितविष्णवे नमः, वामकपोले वागीश्वरीसहितमहेश्वराय नमः, वामकर्णाग्रे श्रीसहितधनपतये नमः, मुखे रतिसहितस्मराय नमः, सव्यकर्णोपरि पुष्टिसहितगणपतये नमः, दक्षिणगण्डकर्णान्तराले शंखनिधये नमः, वामकर्ण-गण्डान्तराले पद्मनिधये नमः, मुखे मूलं न्यसेत् । कण्ठमूले गायत्री सहित ब्रह्मणे नमः, दक्षिणस्तने सावित्रीसहितविष्णवे नमः, वामस्तने वागीश्वरीसहित महेश्वराय नमः, दक्षिणांसे श्री सहितधनपतये नमः, हृदि रतिसहितस्मराय नमः, सव्यांसे पुष्टिसहितगणपतये नमः पार्श्वयोः शंखनिधये नमः, नाभिचक्रे पद्मनिधये नमः, भाले ब्राह्मीं, वामांसे माहेश्वरीं, वामपार्श्वे कौमारीं, जठो वैष्णवीं, दक्षिणपार्श्वे वाराहीं, दक्षिणांसे इन्द्राणीं, अपरगले चामुण्डां, हृदि महालक्ष्मीं, विन्यस्य व्यापकं कुर्यात् । ततः शेषं विधाय सूर्य्यमण्डले देवीं संचिन्त्यार्घं सूर्य्याय दद्यात् ।

पद्ममष्टदलं वाह्ये वृत्तं षोडशभिर्दलैः ।

विलिखेत् कर्णिकामध्ये षट्कोणमतिसुन्दरम् ॥ २ ॥

आचारात् भूपुरावृतं तदिति पूजायन्त्रम् ।

ततः पीठदेवताः पूजयेत् । जया, विजया, अजिता, अपराजिता, नित्या, विलासिनी, दोग्ध्री, अघोरा, मङ्गलाः पीठशक्तयः । ओं ह्रीं सर्वशक्तिपद्मासनाय नम. इति पीठं दद्यात् । बीजमेव पीठमन्त्राः ।

उद्यद्दिनद्युतिमिन्दुकिरीटां
तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम् ।
स्मेरमुखीं वरदाङ्कुशपाशा-
भीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम् ।। ३ ।।

इति ध्यानं कृत्वा देवतां षोडशोपचारैः सम्पूज्य आवरणपूजामारभेत् । यथा-कर्णिकायां मध्ये अं हृल्लेखां पूर्वतः, ऐं गगनां दक्षिणतः उँ रक्तां उत्तरतः, इं करालिकां पश्चिमतः अं महोच्छुष्मां पूजयेत् । आग्नेयादिकोणेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि, अग्रे नेत्राणि दिक्ष्वस्त्रम् । षट्कोणस्य पूर्वकोणे गायत्रीं ब्रह्माणञ्च निर्ऋतिकोणे सावित्रीं विष्णुञ्च वायुकोणे सरस्वतीं रुद्रञ्च, वह्निकोणे कुवेरं महालक्ष्मीञ्च, वारुणकोणे मदनं रतिञ्च, ईशानकोणे विघ्नराजं पुष्टिञ्च । षट्कोणपार्श्वयोः शङ्खपद्मनिधी । केसरेषु आग्नेयादिकोणेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि, अग्रे नेत्रम्, दिक्ष्वस्त्रम् । पूर्वाद्यष्टदलेषु अनङ्गकुसुमामनङ्गकुसुमातुरीमनङ्गमदनामनङ्गमदनातुरां भुवनपालां गगनवेगां शशिरेखां गगनरेखाम् । प्रागादिषोडशपत्रेषु कराली, विकरालधुमा, सरस्वती, श्री, दुर्गोषा, लक्ष्मी, श्रुति, स्मृति, धृति, श्रद्धा, मेधा, मतिकान्त्यार्याः । तद्वहिः अनङ्गरुपा, अनङ्गमदना मदनातुरा, भुवनवेगा, भुवनपाला, सर्वशिशिरा, अनङ्गवदना अनङ्गमेखलाः । तद्वहिः लोकपालाः, तद्वहिस्तदस्त्राणि च पूजयेत् ।

अथावरणध्यानम् —

हृल्लेखाद्याः समभ्यर्च्याः पञ्चभूतसमप्रभाः ।
वरपाशाङ्कुशाभीतिधारिण्योऽमितभूषणाः ।। ४ ।।

दण्डकुण्डिकाक्षमालाऽभयहस्तौ गायत्री ब्रह्माणौ, चक्रशार्ङ्गगदापद्मधारिणौ पीताम्वरौ सावित्रीविष्णू । परश्वक्षमालाऽभयवरहस्तौ श्वेतवर्णौ सरस्वतीरुद्रौ,

रत्नकुम्भमणिकरण्डकधरः तुन्दिलः कुवेरः, तदङ्गं आवामवाहुना तमालिङ्ग्य दक्षिणहस्तेन पद्मधारिणी महालक्ष्मीः, वाणपाशाङ्कुशवामसरासनहस्तो रक्तवर्णो रक्तमाल्यादिम्मंदनः, तद्दक्षिणबाहुना लिङ्गं वामेनोत्पलधारिणीरतिः, अङ्कुशपाश-हस्तः करेण कान्ताभगं स्पृशन् दिगम्वरो मध्वीकपूर्णकपालं धारयन् पुष्करेण चषकधारां रक्तवर्णो विघ्नेशः, मदविह्वला रक्तवर्णा एकपाणिना गणेशलिङ्गं स्पृशन्तीं अन्येन धृतरक्तोत्पलां समाश्लिष्टकान्तां दिगम्बरा पुष्टि, अनङ्गरूपाद्यास्तु कुसुमादयस्तु—"चषकम् तालवृन्तञ्च ताम्बूल छत्रमुज्ज्वलम् । चामरे शुक्लपुष्पञ्च विभ्राणाः करपल्लवैः" ॥ नानाभरणसन्दीप्ताः ... ... ॥

प्रजपेन्मन्त्रविन्मन्त्रं द्वात्रिंशल्लक्षमानतः ।
त्रिस्वादुयुक्तैर्जुहुयादष्टद्रव्यैर्दशांशतः । ॥ ५ ॥
दद्यादर्धं दिनेशाय तत्र संचिन्त्य पार्वतीम् ।
अश्वत्थोदुम्वरप्लक्षन्यग्रोधसमिधस्तिलाः ।
सिद्धार्थपायसाज्यानि द्रव्याण्यष्टौ विदुर्बुधाः ॥ ६ ॥
वाग्भवं शम्भुवनितारमावीजत्रयात्मकम् ।
मन्त्रं समुद्धरेन्मन्त्री त्रिवर्गफलसाधनम् ॥ ७ ॥

अस्य मन्त्रस्याङ्गमन्त्रध्यानातिरिक्तं सर्वं पूर्वोक्तभुवनेश्वरीवीजवत् अङ्गमन्त्रास्तु ऐं ह्रां हृदयाय नमः, ऐं ह्रीं शिरसे स्वाहा, ऐं ह्रूं शिखायै वषट्, ऐं ह्रैं कवचाय हुं, ऐं ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ऐं ह्रः अस्त्राय फट् इति ।

ध्यानन्तु —

सिन्दूरारुणविग्रहां त्रिनयनां-
माणिक्यमौलिस्फुर-
त्तारानायकशेखरां स्मितमुखी-
मापीनवक्षोरुहाम् ।
पाणिभ्यां मणिपूर्णरत्नचषकं-
रक्तोत्पलं विभ्रतीम्

सौम्यां रत्नघटस्थसव्यचरणां-

ध्यायेत्परामम्बिकाम् ॥ ८ ॥

इति रत्नचषकं दक्षिणहस्ते ।

रविलक्षं जपेन्मन्त्रं पायसैर्मधुराप्लुतैः

दशांशं जुहुयान्मन्त्री पीठे प्रागीरिते यजेत् ॥ ९ ॥

वाग्बीजपुटिता माया विद्येयं त्र्यक्षरी मता ।

अत्रापि पीठमन्त्रपर्य्यन्तम् अङ्गमन्त्रवर्जं भुवनेश्वरीवीजवत् । अङ्गमन्त्रास्तु ऐं ह्रां ऐं हृदयाय नमः, ऐं ह्रीं ऐं शिरसे स्वाहा, ऐं ह्रूं ऐं शिखायै वषट्, ऐं ह्रैं ऐं कवचाय हुँ, ऐं ह्रौं ऐं नेत्रत्रयाय वौषट्, ऐं ह्रः ऐं अस्त्राय फट् इति ।

ध्यानन्तु —

श्यामाङ्गीं शशिशेखरां निजकरै-

र्दानञ्च रक्तोत्पलम्-

रत्नाढ्यं चषकं वरं भयहरं

सम्बिभ्रतीं शाश्वतीम् ।

मुक्ताहारलसत्पयोधरवतीं

नेत्रत्रयोद्भासिनीम्-

वन्देऽहं सुरपूजितां हरवधूं

रक्तारविन्दे स्थिताम् ॥ १० ॥

वरादि अधोदक्षिणहस्तमारभ्य प्रादक्षिण्येन । पीठशक्त्यादि पूर्वोक्तबीजवत् । आवरणपूजायां कर्णिकायां मध्ये हृल्लेखां, पूर्वतः गगनां, दक्षिणतः रक्तां, उत्तरतः करालिकां पश्चात् महोच्छुष्मां । षट्कोणस्य पूर्वकोणे गायत्रीं ब्रह्माणञ्च, निर्ऋतिकोणे सावित्रीं विष्णुञ्च, वायुकोणे सरस्वतीं रुद्रञ्च, वह्निकोणे कुवेरं महालक्ष्मीञ्च, वारुणकोणे मदनं रतिञ्च, ईशकोणे विघ्नेशं पुष्टिञ्च । आग्नेयादिकोणकेसरेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि । अग्रे नेत्रम्, दिक्षस्त्रं, पूर्वादिदलेषु आं ब्राह्मीं, ईं माहेश्वरीं, ऊं कौमारीं, ॠं वैष्णवीं, ॡं वाराहीं, ऐं

इन्द्राणी, औं चामुण्डाः, अः महालक्ष्मीः। दलाग्रेषु अं असिताङ्गाय नमः, इं रूरवे, उं चण्डाय, ऋं क्रोधाय, लृं उन्मत्ताय, एं कपालिने, ओं भीषणाय; अं संहाराय, एतैर्मन्त्रैर्नमोन्तैरसिताङ्गादीन् भैरवान् पूजयेत्। ततः षोडशपत्रेषु कराली, विकराली, उमा, सरस्वती, श्री, दुर्गोषा, लक्ष्मी, श्रुति, स्मृति, धृति, श्रद्धा, मेधा, मति, कान्ति, आर्याः, तद्बहिः अनङ्गरूपा, अनङ्गमदना, मदनातुरा, भुवनवेगा, भुवनपालिका, सर्वशिशिरा, अनङ्गवदना, अनङ्गमेखलाः। तद्बहिर्लोकपालान्, तद्बहिस्तदस्त्राणि च पूजयेत्।

अथावरणध्यानम्। तत्र ब्राह्मीप्रभृतयः—"भैरवाङ्कसमारूढा स्मेरवक्त्रा-मदालसाः" भैरवाः—असिताङ्गादयश्च। "शूलं कपालं प्रेतञ्च, बिभ्राणाः दण्ड-दुन्दुभिम्। गजत्वगम्बराभीमाः कुटिलालकशोभिनो ध्यातव्याः। अपरेषान्तु ध्यानं भुवनेश्वरीवीजपद्धतौ द्रष्टव्यम्।

तत्त्वलक्षं जपेन्मन्त्रं जुहुयात्तद्दशांशतः।
पलाशपुष्पैः स्वादुक्तैः पुष्पैर्वा राजवृक्षजैः॥ ११॥

अनन्तो विन्दुसंयुक्तो मायाब्रह्माग्नितारवान्
पाशादिन्त्र्यक्षरो मन्त्रः सर्ववश्यफलप्रदः॥ १२॥

अस्य भुवनेश्वरीमन्त्रस्य शक्तिऋषि र्गायत्री छन्दो भुवनेश्वरी देवता अभीष्ट-सिद्धौ विनियोगः। ह्रां हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा, ह्रूं शिखायै वषट् ह्रैं कवचाय हुं, ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्रः अस्त्राय फट्, ह्रीं इत्यङ्गमन्त्राः। कर्णिकाष्टषट्कोणं षोडशपत्रावृतं आचाराद्भूपुरावृत्तमष्टदलं पूजायन्त्रम्। जया-विजया-अजिता—अपराजिता-नित्या-विलासिनी—दोग्ध्री, अघोरा, मङ्गलाः पीठशक्तयः। ह्रीं इति पीठमन्त्रः।

वराङ्कुशौ पाशमभीतिमुद्रां
करैर्वहन्तीं कमलासनस्थाम्।
वालार्ककोटिप्रतिभां त्रिनेत्रां
भजेऽहमाद्यां भुवनेश्वरीन्ताम्॥ १३॥

इति ध्यानम् ॥

वरदादयो दक्षिणहस्तमारभ्य वामाधोहस्तपर्य्यन्तम् । आवरणपूजायां कर्णिकायां मध्ये हृल्लेखा–पूर्वतः गगना, दक्षिणतो रक्ता उत्तरतः करालिका, पश्चिमतः महोच्छुष्मा । केसरेषु आग्नेयादिकोणेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि । अग्रे नेत्रम्, दिक्ष्वस्त्रम् । पत्रेषु ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा, महालक्ष्म्यः । तद्बहिर्लोकपालास्तद्बहिस्तदस्त्राणि च पूजनीयानि । हृल्लेखादिध्यानं भुवनेश्वरीवीजे ब्राह्मण्यादिध्यानं मातृकामन्त्र-परिच्छेदे द्रष्टव्यम् ।

हविष्यभुक् जपेन्मन्त्रं तत्त्वलक्षं जितेन्द्रियः
षट्सहस्रं प्रजुहुयाज्जपान्ते मन्त्रवित्तमः ।

दधिक्षौद्रघृताक्ताभिः समिद्भिः क्षीरभूरुहाम् ।
तत् संख्यया तिलैः शुद्धैः पयोजैर्जुहुयात्ततः ॥ १४ ॥

इति श्रीभवानन्दरायकारिते श्रीगोविन्दकृते
पूजाप्रदीपे भुवनेश्वरीपूजापरिच्छेदः ॥

अथ त्वरितात्रिपुरान्नपूर्णामन्त्राः ।

तारो माया वर्म्मबीजमृद्धिरीशस्वरान्विता ।
कूर्मस्तदन्तो भगवानक्षः स्त्रीदीर्घतनुच्छदम् ॥ १ ॥
सम्वर्त्तो भगवान्माया फडन्तो द्वादशाक्षरः ।

अत्र ध्याने ताटङ्कं गदादिकं ब्राह्मणादिसर्पैश्वर्यातव्यम् । तदुक्तं प्रपञ्चसारे—

श्यामतनुमरुणपङ्कजचरणतलां-
वृषणनागमञ्जीराम् ।
पर्णांशुकपरिधानां वैश्याहि-
द्वन्द्वमेष (ख) लाकलिताम् ॥ २ ॥
नृपमणिकेयूरान्तां गलविलसद्-
विविधमणिमुद्राभरणाम् ।
द्विजनागविहितकुण्डलमण्डित-
गण्डद्वयां मुकुटशोभाम् ॥ ३ ॥

अतएवाष्टमनागप्राप्तयेत्मेख (ष) ला च गुणश्चेति द्वन्द्वो नादरणीयः, अहिद्वयेन मेख (ष) लाया एवाभिधानात् । अस्य मन्त्रस्यार्जुनऋषिर्विराट्-च्छन्दस्त्वरिता देवता पुरुषार्थचतुष्टये विनियोगः । शिरसि ओं, भाले हुँ, गले खे, हृदि च, नाभौ छे, गुह्ये क्षः, ऊर्वोः स्त्रीः, जङ्घयोः क्षं, पादयोः फट्, इति विन्यसेत् । ओंकारानन्तरं शिरस्येव प्रथमां क्षेकारानन्तरं पादयोरेव द्वितीयां मायां न्यसेदिति प्रपञ्चसारटीका । मूलेन व्यापकं कृत्वा कराङ्गन्यासौ कुर्यात् , तत्र मन्त्राः—चच्छे हृदयाय नमः, छे क्षः, शिरसे स्वाहा, क्षः स्त्री शिखायै वषट्, स्त्रो हुँ कवचाय हुं, हुँ क्षे नेत्रत्रयाय वौषट् , क्षे ह्रों अस्त्राय फट् ॥ भुवनेश्वरीमन्त्रकथितं पूजायन्त्रम् ।

जया, विजया, अजिता, अपराजिता, नित्या, विलासिनी, दोग्ध्री, अघोरा, मङ्गला पीठशक्तय:। क्षूं हूं हं वज्रदेह पुरुगुरु हिङ्गुलु हिङ्गुलु गर्जं गर्जे हं हुँ क्षां पञ्चाननाय नम: इति पीठमन्त्र: ।

श्यामाम्वर्हिकलापशेखरयुता-
मावद्धपर्णांशुकाम्
गुञ्जाहारलसत्पयोधरभरा-
मष्टाहिपान् विभ्रतीम् ।
ताटङ्कांगदमेख (ष) लागुण-
रणन्मञ्जीरताम्प्रापिताम्
कैरातीं वरदाभयोद्यतकरां
देवीं त्रिनेत्रां भजेत् ॥ ४ ॥

इति ध्यानम् ।

अत्र ब्राह्मणसर्पाभ्यां ताटङ्कद्वयम् । क्षत्रियसर्पाभ्यामङ्गदद्वयम् । वैश्य-सर्पाभ्यां मेष (ख) ला । शूद्रसर्पाभ्यां मञ्जीरद्वयं ध्येयम् ।

आवरणपूजायां पूर्वास्वष्टकेसरेषु यथाक्रमं हृदयादिषडङ्गप्रणीता गायत्री। दलेषु हुँकारी, खेचरी, चण्डा, छेदिनी, क्षेपणी, स्त्री हुँकारी, क्षेमकारी: लोक-पालतुल्यायुधवर्णभूषणा: श्रीवीजेन पूजयेत् । तद्वहिर्देव्या अग्रे कोदण्डवाण-धारिणीं फट्कारीं, द्वारस्य पार्श्वयो: सुवर्णवेत्रकरे जयाविजये, तद्वहिर्ल्लगुड-हस्तं कृष्णरुक्षकेशं किङ्करं किङ्कराय रक्ष रक्ष त्वरिताज्ञा स्थिरो भव हुँ फट् इति मन्त्रेण पूजयेत् ।

लक्षं संजप्य मन्त्रज्ञो मन्त्रमेनं जितेन्द्रिय: ।
दशांशं जुहुयाद्वैल्वैर्मधुराक्तैस्समिद्वरै: ॥ ५ ॥
श्रीमायामदनै: प्रोक्तो मन्त्रो वीजत्रयात्मक: ।

अस्य मन्त्रस्य सम्मोहन ऋषिर्गायत्रीच्छन्दस्त्रिपुरादेवता कवितायभीष्टसिद्धौ विनियोग:। श्रीं हृदयाय नम:, ह्रीं शिरसे स्वाहा, क्लीं शिखायै वषट्,

श्रीं कवचाय हुँ, ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, क्लों अस्त्राय फट् इत्यङ्गमन्त्राः। षट्कोणगर्भमष्टदलमाचारात्सद्वारभूपुरावृत्तं पद्मं पूजायन्त्रम्। जया, विजया, अजिता, अपराजिता, नित्या, विलासिनी, दोग्ध्री, अघोरा, मङ्गलाः पीठ-शक्तयः।

पारिजातरत्नरम्ये मण्डपे मणिकुट्टिमे
रत्नसिंहासने सौम्ये पद्मे षट्कोणशोभिते ॥ ६ ॥

अधस्तात् कल्पवृक्षस्य निषण्णां देवतां स्मरेत्।
चापं पाशाम्बुजसरसिजान्यङ्कुशं पुष्पबाणान्।
बिभ्राणां तां करसरसिजै रत्नमौलिं त्रिनेत्राम् ॥ ७ ॥

हेमाब्जाभां कुचभरनतां रत्नमञ्जीरकाञ्ची
ग्रैवेयाद्यैर्विलसिततनुं भावयेच्छक्तिमाद्याम् ॥ ८ ॥

चामरादर्शताम्बूलकरन्डकसनामिकान्
वहन्तीभिः कुचार्ताभिर्दूतीभिः परिवारिताम्।
कारुण्यामृतवार्षिण्या पश्यन्तीं साधकं दृशा ॥ ९ ॥

चापादिकं ऊर्ध्ववामहस्तमारभ्य ऊर्ध्वदक्षिणहस्तपर्यन्तं ध्यातव्यमिति-ध्यानम्। आवरणपूजायां अग्न्यादिषट्कोणेषु लक्ष्मी, हरि, गौरी, शिवरति-स्मरान् पार्श्वयोः शङ्खनिधिपद्मनिधी, केसरेष्वग्न्यादिकोणेषु हृदयशिरः-शिखाकवचानि, अग्रे नेत्रं, दिक्ष्वस्त्रं, पत्रेषु ब्राह्मीमाहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराहीन्द्राणी, चामुण्डा-महालक्ष्मीः। तद्बहिः स्त्रीरूपान् सौम्यदेहान् लोकपालान्।

अथ लक्ष्म्यादिध्यानम्—

लक्ष्मीं हेमप्रभां तन्वीं सवराब्जयुगाभयाम्।
चक्रशंखगदाम्भोजधरं हेमनिभं हरिम् ॥ १० ॥

पाशाङ्कुशाभयाभीष्टधरां गौरीं जवारुणाम्
मृगटङ्काभयाभीष्टधरं स्वर्णनिभं शिवम् ॥ ११ ॥

नीलोत्पलकरां सौम्यां रतिं काञ्चनसन्निभाम्।
धृतपाशाङ्कुशेष्वास पुष्पेषुमरुणं स्मरम् ॥ १२ ॥

शङ्खपद्मनिधिध्यानम् श्रीबीजपद्धतौ ब्राह्म्यादिमातृध्यानं मातृकापूजा-परिच्छेदे द्रष्टव्यम् ।

भानुलक्षं जपेदेनं मनुं तावत्सहस्रकम्
बिल्वावपाध संभूतै र्मधुराक्तैः समिद्वरैः ।
जवापुष्पैश्च जुहुयात्तोषयेद् वसुना गुरुम् ।। १३ ।।

अथान्नपूर्णामन्त्रः ।

मायाहृद्भगवत्यन्ते माहेश्वरिपदं वदेत्
अन्नपूर्णे च युगलं मनुः सप्तदशाक्षरः ।। १४ ।।

अस्य मन्त्रस्य सम्मोहनऋषिर्गायत्री छन्दोऽन्नपूर्णादेवता अन्नश्रीसमृद्धौ विनियोगः । ह्रीं हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा, ह्रीं शिखायै वषट्, ह्रीं कवचाय हुँ, ह्रीं नेत्रत्रयाभ्यां वौषट्, ह्रीं अस्त्राय फट्, इत्यङ्गमन्त्राः । षोडशदलावृतमष्टदलं षट्कोणकर्णिकं भूपुरावृतं पद्मं पूजायन्त्रम् । जया, विजया, अजिता, अपराजिता, नित्या, विलासिनी, दोग्ध्रा-अघोरा. मङ्गला पीठशक्तयः ।

रक्तां विचित्रवसनां नवचन्द्रचूडा-
मन्नप्रदाननिरतां स्तनभारनम्राम् ।
नृत्यन्तमिन्दुशकलाभरणम्विलोक्य
हृष्टां भजेद् भगवतीं भवदुष्टहन्त्रीम् ।। १५ ।।

इति ध्यानम् ।

आवरणपूजायां केसरेष्वग्न्यादिकोणेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि, अग्रे नेत्रं, दिक्ष्वस्त्रं, तद्बहिर्लोकपालान्, तद्बहिस्तदस्त्राणि च पूजयेदिति ।

यथाविधिजपेन्मन्त्रं वसुयुग्मसहस्रकम् .
साज्येनान्नेन जुहुयात्तद्दशांशमनन्तरम् ।। १६ ।।

इति श्री भवानन्दकारिते श्रीगोविन्दकृते
पूजाप्रदीपे त्वरितात्रिपुरान्नपूर्णा-
पूजापरिच्छेदः (हरिपतेः)

॥ अथ दुर्गामन्त्राः ॥

मायाऽत्रिः कर्णविन्द्वाढ्यो भूयोसौ सर्गवान्भवेत् ।
पञ्चान्तकः प्रतिष्ठावान् मारुतो भौतिकासनः ।
तारादिहृदयान्तोऽयं मन्त्रो वस्वक्षरात्मकः ॥ १ ॥

अस्य मन्त्रस्य नारदऋषिर्गायत्रं छन्दो दुर्गादेवता सकलपुरुषार्थसिद्धौ विनियोगः। ओं ह्रीं दुं दुर्गायै ... ...

ह्रां हृदयाय नमः, ओं ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रीं शिरसे स्वाहा, ओं ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रूं शिखायै वषट्, ओं ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रैं कवचाय हुं, ओं ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ओं ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रः अस्त्राय फट् इत्यङ्गमन्त्राः।

प्रपञ्चसारमते तु दुं इति वीजरहिता एवाङ्गमन्त्राः। आं प्रभा, ईं माया, ऊं जया, ऐं सूक्ष्मा, ऐं विशुद्धा, ओं नन्दिनी, औं सुप्रभा, अं विजया, अः सर्वसिद्धिदा, इति सवीजाः पीठशक्तयः। ओं वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुं फट् नम इति पीठमन्त्रः।

सिंहस्था शशिशेखरामरकत-
प्रख्या चतुर्भिर्भुजैः,
शंखं चक्रधनुःशरांश्च दधती
नेत्रैस्त्रिभिः शोभिता ।
आमुक्ताङ्गदहारकङ्कणरण-
त्काञ्चीकणन्नूपुरा,
दुर्गादुर्गतिनाशिनी भवतु नो
रत्नोल्लसत्कुण्डला ॥ २ ॥

ऊर्ध्वदक्षिणहस्तमारभ्य प्रादक्षिण्येन शंखादिचतुष्टयं ध्येयमिति ध्यानम् ॥

आवरणपूजायां केसरेष्वग्न्यादिकोणेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि। अग्रे नेत्रम्। दिक्ष्वस्त्रं सम्पूज्य पूर्वादिपत्रेषु जं जयायै, विं विजयायै, कीं कीर्त्यै, प्रीं प्रीत्यै, प्रं प्रभायै, श्रं श्रद्धायै, में मेधायै, श्रुं श्रुत्यै, नमोऽन्तैरेभिः जयाद्याः पूजयेत्। ततः पत्राग्रेषु चक्रशंखगदाखड्गपाशाङ्कुशशरधनूंषि। तद्बहिर्लोकपालान्, तद्बहिस्तदस्त्राणि च पूजयेत्।

वसुलक्षं जपेन्मन्त्रं तिलैर्मधुरलोहितैः।
पयोन्धसा वा जुहुयात्सहस्त्रं जितेन्द्रियः ॥ ३ ॥

मायन्तं वियत्सनयनं श्वेतो मर्द्दने च द्वयम्
अष्टाक्षरी समाख्याता विद्या महिषमर्दिनी ॥ ४ ॥

अत्र दकारे इकारं केचिदिच्छन्ति तन्मूलाभावात्—

विषं हि मज्जाकालाग्निरत्रिनिष्ठो निचद्वयम्
मन्त्रो महिषमर्दिन्याः प्रोक्तो वस्वक्षरात्मकः ॥ ५ ॥

इति ग्रन्थान्तरविरोधाच्च नादेयम्। अस्य मन्त्रस्य नारदऋषिः गायत्रं छन्दो महिषमर्द्दिनीदेवताभीष्टसिद्धौ विनियोगः। महिषहिंसके हुं फट् हृदयाय नमः, महिषशत्रौमर्द्द हुं फट् शिरसे स्वाहा, महिषं ह्लेषय ह्लेषय हुं फट् शिखायै वषट्, महिषं हन हन देवि हुं फट् कवचाय हुं, महिषं सूदिनि हुं फट् अस्त्राय फट् इति पञ्चाङ्गमन्त्राः। आं प्रभा, ईं माया, ऊं जया, एं सूक्ष्मा, ऐं विशुद्धा, ओं नन्दिनी, औं सुप्रभा, अं विजया, अः सर्वसिद्धिदा, एता मन्त्रसहिताः पीठशक्तयः। ओं वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुं फट् नमः इति पीठमन्त्रः ॥

गारुडोपलसन्निभां मणिमौलिकुन्डलमण्डितां
नौमिभालविलोचनां महिषोत्तमाङ्गनिषेदुषीम्।
चक्रशंखकृपाणखेटकबाणकार्मुकशूलकम्
तर्जनीमपि बिभ्रतीं निजबाहुभिः शशिशेखराम् ॥ ६ ॥

इति ध्यानम् ।

ऊर्ध्वयोर्दक्षिणवामहस्तयोः चक्रशंखौ, तदधोहस्तयोः कृपाणखेटके एव-मग्रेऽपि । आवरणपूजायां केसरेष्वग्न्यादिकोणेषु हृदयशिर शिखाकवचानि । अग्रे नेत्राणि दिक्ष्व.त्रं सम्पूज्य पत्रेषु ओं दुर्गायै, इं वरवर्णिन्यै, ऊं आर्यायै, ऋं कनकप्रभायै, लृं कृत्तिकायै, ऐं अभयप्रदायै, ओं कन्यायै, अं स्वरूपायै नमः । पत्राग्रेषु यं चक्राय, रं शंखाय, लं खङ्गाय, वं खेटकाय, शं वाणाय, षं धनुषे, सं शूलाय, हं कपालाय, नमोऽन्तंरेभिः सम्पूज्य, तद्वहिर्ल्लोकपालान् तद्वहिस्तदस्त्राणि च पूजयेदिति ।

अष्ट लक्षं जपेन्मन्त्रं तत्सहस्त्रं तिलैः शुभैः ।
हुत्वा प्रागीरिते पीठे यजेन्महिषमर्द्दिनीम् ॥ ७ ॥

तारो दुर्गे युगं रक्षमन्त्यो ठान्तं सलोचनम् ।
द्विठान्ता जय दुर्गेयं विद्या वैद्यादशाक्षरी ॥ ८ ॥

अस्य मन्त्रस्य नारदऋषिर्गायत्रं छन्दो जयदुर्गा देवता युद्धजयाद्यभीष्टाऽथ विनियोगः । ओं दुर्गे हृदयाय नमः, दुर्गे शिरसे स्वाहा, दुर्गायै शिखायै वषट्, भूतरक्षिणि कवचाय हुं, ओं दुर्गं दुर्गे रक्षिणि नेत्रत्रयाय वौषट्, ओं दुर्गे दुर्गे रक्षिणि अस्त्राय फट्, इत्यङ्गमन्त्राः । ओं वज्रनखदंष्ट्रायुधाय हुं फट इति पीठमन्त्रः ।

कालाभ्राभां कटाक्षैररिकुलभयदां-
मौलिवद्धेन्दुलेखाम्,
शंखं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करै-
रुद्वहन्तीन्त्रिनेत्राम् ।
सिंहस्कन्धाधिरूढां त्रिभुवनमखिलं-
तेजसा पूरयन्तीं,
ध्यायेद्दुर्गां जयाख्यां त्रिदशपरिवृतां
सेवितां सिद्धिकामैः ॥ ९ ॥

ऊर्ध्ववामहस्तमारभ्य शंखादीनि प्रादक्षिण्येन ध्येयानि इति ध्यानम्। आवरणपूजायां केसरेष्वग्न्यादिकोणेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि। अग्रे नेत्रं, दिक्ष्वस्त्रं सम्पूज्य पत्रेषु आं दुर्गायै, ईं वरवर्णिन्यै, ऊं आर्यायै, ॠं कनकप्रभायै, लृं कृत्तिकायै, ऐं अभयप्रदायै, औं कन्यायै, अं स्वरूपायै, पत्राग्रेषु यं चक्राय, रं शंखाय, लं खड्गाय, वं खेटकाय, शं त्राणाय, षं धनुषे, सं शूलाय, हं कपालाय, एभिर्नमोऽन्तैः सम्पूज्य तद्बहिर्लोकपालान्, तद्बहिस्तदस्त्राणि पूजयेत्।

····लक्षं जपेन्मन्त्रं घृतेन जुहुयात्ततः।
दशांशं संस्कृते वह्नौ ब्राह्मणानपि भोजयेत् ॥ १० ॥
ज्वल ज्वल पदस्यान्ते शूलिनि द्वितयं पुनः।

... ...
... ...

अस्य मन्त्रस्य दीर्घतमा ऋषिः ककुद् छन्दः, शूलिनी देवता वित्ताद्यभीष्टसिद्धये विनियोगः। शूलिनि दुर्गे हुं फट् हृदयाय नमः, शूलिनि वरदे हुं फट् शिरसे स्वाहा, शूलिनि विन्ध्यवासिनि हुं फट् शिखायै वषट्, शूलिन्यसुरमर्द्दिनि युद्धप्रिये त्रासय त्रासय हुं फट् कवचाय हुं, शूलिनि देवसिद्धसुपूजिते नन्दिनि रक्ष रक्ष महायोगेश्वरि हुं फट् अस्त्राय फट् इति पञ्चाङ्गमन्त्राः। आं प्रभा, ईं माया, ऊं जया, एं सूक्ष्मा, ऐं विशुद्धा, ओं नन्दनी, औं सुप्रभा, अं विजया, अः सर्वसिद्धिदा एताः सबीजपीठशक्तयः। ओं वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुं फट् नमः इत्यासनमन्त्रः।

अध्यारूढां मृगेन्द्रं सजलजलधर-
श्यामलां हस्तपद्मैः
शूलं वाणं कृपाणमपिजलजगदा-
चापपाशान्वहन्तीम्।
चन्द्रोत्तंसां त्रिनेत्रां चतसृभिरसिना-
खेटकं बिभ्रतीभिः,
कन्याभिः सेव्यमानां प्रतिभटभयदां
शूलिनीं भावयामि ॥ ११ ॥

असिनेति असिनासह खेटकं बिभ्रतीभिरित्यर्थः। इति ध्यानम्।

अत्राधो दक्षिणहस्तमारभ्याधोवामहस्तपर्य्यन्तं शूलादीनि ध्येयानि। आवरणपूजायां केसरेष्वग्न्यादिकोणेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि। दिक्ष्वस्त्रं, पत्रेषु दुर्गा, वरदा, विन्ध्यवासिनी, असुरमर्दिनी, युद्धप्रिया, देवसिद्धपूजिता, नन्दिनी, महायोगेश्वर्य्यः। दलाग्रेषु चक्रशंखखड्गगदाशरधनुःशूलपाशान्, तद्बहिर्लोकपालान् पूजयेत्। अत्र दिक्पालास्त्रावरणन्नास्ति।

मनुमेनं जपेन्मन्त्री वर्णलक्षं विचक्षणः
सर्पिषान्नेन वा होमस्तद्दशांशमितोभवेत् ॥ १२ ॥

उत्तिष्ठपदमाभाष्य पुरुषिस्यात्पदं पुनः।
पितामहः सनेत्रेन्दुः स्वपिषि स्याद् भयं च मे ॥ १३ ॥

समुपस्थितमुच्चार्य यदिशक्यमनन्तरम्
अशक्यं वा पुनस्तन्मे वदेद्भगवतीं ततः ॥
शमयाग्निवधूः सप्त त्रिंशद्वर्णात्मको मनुः ॥ १४ ॥

अस्य मन्त्रस्यारण्यक ऋषिरनुष्टुप्छन्दो वनदुर्गादेवता धनाद्यभीष्टार्थ-सिद्धौ विनियोगः। इति स्मृत्वा शिरोवदनहृत्स्वेव ऋष्यादीन् विन्यस्य दक्षिण-पादसन्धिचतुष्टये··· ··· ··· ··· ··· ·· यथाक्रमं उत्तिष्ठ पु, वामपादसन्धिचतुष्टये रुषि किं स्व, गुदे पि, लिङ्गे षि, आधारे भ, उदरे यं, पार्श्वयोः मे स, हृदि मु, स्तनयोः पस्थि, कण्ठे तं, दक्षिणबाहुसन्धिचतुष्टये यदि शक्यं, वामबाहुसन्धि-चतुष्टये मशक्यम्वा, मुखे त, नासापुटयोः न्मेभ, कपोलयोः गव, नेत्रयोः ति श, कर्णयोः मय, भ्रूमध्ये स्वा, शिरसि हा, इति विन्यस्य कराङ्गन्यासङ्कुर्यात्। तत्र मन्त्रा :—

उत्तिष्ठ पुरुषि हृदयाय नमः, किं स्वपिषि शिरसे स्वाहा, भयम्मे समुपस्थितं शिखायै वषट्, यदिशक्यमशक्यम्वा कवचाय हुँ, तन्मे भगवति नेत्रत्रयाय वौषट्, शमय स्वाहा अस्त्राय फट् इति। आं प्रभा, ईं माया, ऊँ जया, एँ सूक्ष्मा, ऐं विशुद्धा, ओं नन्दिनी, औं सुभ्रा, अं विजया, अः सर्वसिद्धिदा एताः सबीज-पीठशक्तयः। ओं वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुँ फट् नम इति पीठमन्त्रः।

सौवर्णाम्बुजमध्यगां त्रिनयनां
सौदामिनीसन्निभाम्-
चक्रं शंखवराभयानि दधती-
मिन्दोः कलां बिभ्रतीम् ॥ १५ ॥

ग्रैवेयाङ्गदहारकुण्डलधरा-
माखण्डलाद्यैः स्तुताम्,
ध्यायेद् विन्ध्यनिवासिनीं शशिमुखीं-
पार्श्वस्थपञ्चाननम् ॥ १६ ॥

इति ध्यानम् ।

पञ्चाननः सिंहः, चक्रादीनि चाधोवामहस्तमारभ्य दक्षिणक्रमेण ध्येयानि ।

आवरणपूजायां केसरेष्वग्न्यादिकोणेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि । अग्रे नेत्राणि, दिक्ष्वस्त्रं, दलमूलेषु आर्या, दुर्गा, भद्रा, भद्रकाली, अम्बिका, क्षेम्या. लोलगर्भा, क्षेमङ्कर्य्यः । पत्रमध्येषु चक्रशंखखड्गखेटकबाणधनुःशूलकपालानि । दलाग्रेषु ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा, महालक्ष्म्यः । तद्बहिर्लोकपालाः पूजनीयाः । अत्र दिक्पालास्त्रावरणं नास्ति । प्रपञ्चसारे षोडशभुजत्वादिविशेषाः उक्ताः, ते तत्रानुसन्धेयाः । उक्तं ध्यानं प्रयोगातिरिक्तम्मूले । प्रयोगे पुनः देवीमेवं ध्यायेत्—तद्यथा—

आकाशपावकसन्निभां
कलिताद्धचन्द्रशिरोरुहाम् ।
भालनेत्रविभीषणां
भयदायिसिंहनिषेदुषीम् ॥ १७ ॥

चक्रशंखकृपाणखेटक-
चापबाणकरोटिका ।

शूलवाहिभुजां भजे
विजिताखिलासुरसैनिकाम् ॥ १८ ॥

ब्राह्म्यादिध्यानं मातृकामन्त्रे द्रष्टव्यम् ।

एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षं चतुष्कं तद्दशांशतः
जुहुयाद् हविषा मन्त्री शालिभिः सर्पिषा तिलैः ॥ १९ ॥

इति श्री भवानन्दरायकारिते
श्री गोविन्दकृते पूजाप्रदीपे
दुर्गापूजापरिच्छेदः ।

अथ त्रिपुरामन्त्रः ।

वियत्तदादिकेन्द्रोऽग्निस्थितं वामाक्षिविन्दुमत् ।

आकाशभृगुवह्निस्थो मनुः सर्गेन्दुखण्डवान् ॥ १ ॥

वाग्भवं प्रथमं वीजं कामराजं द्वितीयकम् ।

तृतीयं शक्तिवीजाख्यं त्रिभिर्बीजैरुदाहृता ॥ २ ॥

पञ्चकूटात्मिका विद्या प्रोक्ता त्रिपुरभैरवी ।

अथ प्रथमान्तवीजयोः रेफव्यतिरेकेण अन्तविन्दुव्यतिरेकेणोक्तं सारसमुच्चये शप्तं बालामन्त्रमुपक्रम्य शिवशक्तिवीजमत एव शम्भुना निहृतं तयोरूपरि पूर्ववीजयोः, अकुलं परोपरि च मध्यमाधरे दहनं, ततः प्रभृति सोज्जिता भवदिति । यथोदितस्यास्य मन्त्रस्य भैरवीतिनाम हकारं विना सकारादित्वे विद्येति सारसमुच्चयः । अत्र प्रथमादिर्वीजानां वाग्भवादिवीजतुल्यफलजनकतया गौण्य एव वाग्भवाद्याः संज्ञाः । अतो नाभेरावरणं न्यसेद्, वाग्भवमित्यादिस्वमन्त्रवीजान्येव लभ्यन्ते, तेन वीजैस्त्रिभिन्यर्सेदित्यादिप्रपञ्चसारेणैकवाक्यता । पञ्चकूटात्मिकेति पञ्चकूटमन्त्रवर्णघटितेत्यर्थः । प्रपञ्चसारे त्रिशन्मन्त्रा अत्रेत्युक्तम् । करयोः प्रत्येकं मिलितयोश्च वीजत्रयन्यासे यद्यप्याद्यं द्वितीयं करयोरिति शारदावचनात् प्रथमं दक्षिणहस्त एव न्यासो युज्यते, तथापि वीजैस्त्रिभिन्यर्सेत्तु हस्ततले च सव्ये दक्षाह्वये द्वितयमप्युभयोस्तृतीयमिति प्रपञ्चसारवचनानुरोधेन वामदक्षिणक्रमेणैव हस्ततलयोर्वीजद्वयन्यासः, नेत्रेषु वीजत्रयन्यासो दक्षिणवामोर्ध्वक्रमेणेति प्रपञ्चसारविवरणम् । सारसमुच्चये तु "सव्यापसव्येक्षणयोर्ल्ललाटे ततो बुधः कर्णयुगे च वक्त्रे" इत्यनेन वामादिरेव क्रम उक्तः । एवञ्च करनेत्रयोर्वामदक्षक्रमेण न्यासप्राप्तौ प्रपञ्चसारीय एव । अतः स एव क्रमो युज्यते ।

पूजायन्त्रे नवयोनिलेखनप्रकारश्च —

वह्नेः पुरद्वितयवासवयोनिमध्य—

सम्बद्धवह्निवरुणेशसमाश्रिताश्रि ।

देव्यर्चनाय विहितं मुनिभिः पुरैव
लोकेषु दुर्लभमिदं नवयोनिचक्रम् ॥ ३ ॥

इति प्रपञ्चसारे उक्तः। अत्र वासववह्नयादिपदान्यग्राह्युपलक्षणानि, तेन यदा उदङ्मुखेन पूजा क्रियते तदा दक्षिणाग्रमेकमुत्तराग्र चापरं त्रिकोणं विलिख्य उत्तरयोनिमध्यस्थमध्यस्थिताग्रं तृतीयं त्रिकोणं लिखेत्, एवं हि मध्यस्थयोनिर्वामदक्षिणाग्रकोणेषु इति, प्रीतिमनोभवानां पूजा सम्पद्यते, इत्यादि-पूजा च मध्यमयोनिकोणत्रय एव नतु वामादियोनिषु वामकोण इत्याद्यभिधानात्, योनिषु च तुरीयावरणपूजाविधानात्।

अस्य मन्त्रस्य दक्षिणामूर्त्तिऋंषिः पङ्क्तिश्छन्दः त्रिपुरभैरवीदेवता विद्याद्यभोष्टसिद्धौ विनियोगः॥ मूर्द्धगुह्यहृदयेषु। वामदक्षिणोर्ध्वनेत्रेषु। कर्णद्वयास्येषु। अंसद्वयसपृष्ठेषु। कफोणिद्वयनाभिमण्डलेषु च यथाक्रमं वोजत्रयं पञ्चावृत्या विन्यस्य नाभेश्चरणपर्य्यन्तं प्रथमं वीजं, हृदयान्नाभिपर्य्यन्तं द्वितीयं वीजं शिरसो हृदयपर्य्यन्तं तृतीयं वीजं विन्यस्य, वामदक्षिणकरतलयोरेकैकं, वीजद्वयं, करतलद्वये तृतीयम्बीजञ्च विन्यस्य क्रमेण मस्तकमूलाधारहृदयेषु वीजत्रयं न्यसेत्। ततो नवयोनिन्यासः दक्षिणवामकर्णयोश्चिबुके च यथाक्रमं, एवं दक्षिणवामललाटा-स्थिभागवदनेषु नेत्रद्वयनासिकासु अंसद्वयजठरेषु कफोणिद्वयकुक्षिषु, जानुद्वयलिङ्गा-ग्रेषु. पादद्वयगुह्येषु, पार्श्वद्वयहृदयाम्वुजेषु, स्तनद्वयकण्ठेषु च यथाक्रमं वीजत्रयं न्यसेत्। मूलाधारे ऐं रत्यै नमः, हृदि क्लीं प्रीत्यै नमः, भ्रूमध्ये सौः मनोभवायै नमः, इति विन्यस्य भ्रूमध्यहृदयमूलाधारेषु यथाक्रमं विलोमवीजत्रयपूर्व्विकाः अमृतेशी, योगेशो, विश्वयोनीः क्रमेण न्यसेत्।

अथमूर्तिन्यासः॥ मूर्ध्नि ह स रों ईशानमनोभवाय नमः, मुखे स ह रें तत्पुरुष-मकरध्वजाय नमः। हृदि स ह रुं अघोरकुमारकन्दर्पाय नमः। गुह्ये स्त्रिं वामदेवमन्मथाय नमः। पादयोः स्त्रुं (स्त्रं) सद्योजातकामदेवाय नमः। ऊर्ध्वमुखे स्त्रों ईशानमनोभवाय नम, पूर्वमुखे स्त्रें तत्पुरुषमकरध्वजाय नमः। दक्षिणमुखे स्त्रों अघोरकुमारकन्दर्पाय नमः, उत्तरमुखे स्त्रिं वामदेवमन्मथाय नमः, पश्चिममुखे स्त्रुं सद्योजातकामदेवाय नमः. एवं विन्यस्य कराङ्गन्यासं कुर्यात्। तत्र मन्त्राः ह्रां हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा, ह्रूं शिखायै वषट्, ह्रैं

कवचाय हुँ, ह्रौँ नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्रः अस्त्रायफट् इति । ततो वाणदेवता-न्यास :—मूर्ध्नि द्राँ द्राविण्यै नमः, पदे द्रीँ क्षोभिन्यै नमः, वक्त्रे क्लीं वशीकरिण्यै नमः, गुह्ये ब्लुँ आकर्षिण्यै नमः, हृदि सः सम्मोहिन्यै नमः । ततः ऐँ क्लीँ ब्लुँ स्त्राँ सः इतिपञ्चप्रणवादिकाः सुभगाद्या मालादिषु न्यसेत् । यथा भाले ऐँ क्लीँ ब्लुँ स्त्रीँ सः सुभगायै नमः, एवं भ्रूमध्ये भगां, वदने भगसर्पिणी, कण्ठिकायां भगमालिनीं, कण्ठे अनङ्गां, हृदि अनङ्गकुसुमां, नाभौ अनङ्गमेखलां, मूलाधारे अनङ्गमदनां न्यसेत् ।

ततो भूषणन्यासः—शिरसि अ, भाले आ, भ्रुवोः क्रमेण इ, ई, कर्णयोः उ, ऊ, नेत्रयोः ऋ, ॠ, नासिकायां लृ, गण्डयोः लॄ ए, ओष्ठधारयोः ऐ ओ, दन्तपंक्त्योः औ अं, मुखे अः, चिबुके क, गले ख, कण्ठे ग, पार्श्वयोः घ ङ, स्तनद्वये च, दोर्मूलयोः छ ज, कफोण्योः झ ञ, हस्तयोः ट ठ, नाभौ ट, गुह्ये ण, ऊर्व्वोः त थ, जानुनोः द ध, जंघयोः न प, स्फिचोः फ ष, पत्तलयाः भ म, चरणाङ्गुष्ठयोः य र, कठ्यां व, ग्रैवेयके ल, (कटके ल), हृदि श, गुह्ये च, कुण्डलयोः स ष, मौलौ ह, इति न्यसेत् । अशक्तौ तु नवयोनिन्यासात्पूर्वमुक्तान् न्यासान् विधाय कराङ्गन्यासमात्रं कुर्यादिति । नवयोनियुक्तकर्णिकमष्टदलपद्मं पूजायन्त्रम् । तत्र प्रथमं षट्कोणं विलिख्य तदग्रे योनिमध्यस्थं षट्कोणमध्याग्रं त्रिकोणं लिखेत्, एवं नवयोनिचक्रं सम्पद्यते । इच्छा, ज्ञाना, क्रिया, कामिनी, कामदायिनी रति, रतिप्रिया, नन्दा, मनोन्मन्यः पीठशक्तयः । प्रपञ्चसारे तु रामादिद्वादशशक्तय उक्ताः । ऐँ परायै अपरायै, परापरायै, हसौः सदाशिव-महाप्रेतपद्मासनाय नम. इति पीठमन्त्रेण पीठं सम्पूज्य ऐँ क्लीँ श्रीँ ह स खे स्फ्रे स्फ्रौँ इति पञ्चप्रणवेन मध्यमयोनौ मूर्त्ति परिकल्पयेत् ।

उद्यद्भानुसहस्रकान्तिमरुण-
क्षौमां शिरोमालिकां,
रक्तालिप्तपयोधरां जपवटीं
विद्यामभीतिम्वराम् ।
हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्रविलसद्
वक्त्रारविन्दश्रियम् ।

देवीमृद्धद्धिमांशुरत्नमुकुटां

वन्दे समन्दस्मिताम् ॥ ४ ॥

अत्र च जपवट्याादिकमूर्ध्वदक्षिणहस्तमारभ्य तदधोहस्तपर्य्यन्तं सदाशिवात्मकप्रेतरूढा च देवी इति ध्यानम् । अथावरणपूजामध्यमयानौ देव्या वामकोणे रतिं, दक्षिणकोणे प्रीतिं, अग्रकोणे मनोभवां, समभ्यर्च्य, तद्बहिर्योन्यष्टकाभ्यन्तरे आग्नेयादिकोणेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि, अग्रे नेत्राणि, दिक्ष्वस्त्रम् । अङ्गपूजा च वाग्भवेन कर्त्तव्या । तद्बहिरष्टयोन्यभ्यन्तर एव पूर्वादिदिक्षु अग्रे च द्राँ द्राविण्यै नमः, ह्रीँ क्षोभिण्यै नमः, क्लीँ वशीकरिण्यै नमः, अग्रे सः सम्मोहिन्यै नमः इति सम्पूज्य, प्रागाद्यष्टयोनिषु सुभगा, भगा, भगसर्पिणी, भगमालिनी, अनङ्गा, अनङ्गकुसुमा, अनङ्गमेखला, अनङ्गमदना, ऐँ क्लीँ, क्लुँ, स्त्रीँ सः इति मन्त्रेण संपूज्य तद्बहिः पत्रेषु ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा, महालक्ष्मीः, तद्बहिर्लोकपालान्, तद्बहिस्तदस्त्राणि च पूजयेत् । महालक्ष्मीस्थाने चाण्डिका पूजनीया । दलाग्रेऽष्टभैरवाश्च पूजनीया इति प्रपञ्चसारः । पूजा च देव्या लोहितगन्धपुष्पाभ्याम् । अथावरणध्यानम् —

वामकोणे यजेद्देव्या रतिमिन्दुसमप्रभाम् ।
नतिपाशधरां सौम्यां मदविह्वलविभ्रमाम् ॥ ५ ॥

प्रीतिं दक्षिणकोणस्थां तप्तकाञ्चनसन्निभां,
अङ्कुशं प्रणतिं दोर्भ्यां धारयन्तीं समर्चयेत ॥ ६ ॥

अग्रे मनोभवां रक्तां रक्तपुष्पाद्यलङ्कृताम्
इक्षुकार्मुकपुष्पेषुधारिणीं सस्मिताननाम् ॥ ७ ॥

दिक्ष्वग्रे च निजैर्मन्त्रैः पूजयेद् बाणदेवताः ।
हस्ताब्जैर्धृतपुष्पेषु प्रलीनाभूतसप्रभाः ॥ ८ ॥

लोकपालाँस्ततो दिक्षु तेषामस्त्राणि तद्बहिः ।
अष्टयोनिष्वष्टशक्तीः पूजयेत् सुभगादिकाः ॥ ९ ॥

मातरो भैरवाङ्कस्था मदविभ्रममन्थराः ।
अष्टपत्रेषु संपूज्या यथावत् कुसुमादिभिः ॥ १० ॥
सुभगादिध्यानं सर्वामदविभ्रममन्थराः ।
प्रधानदेवतावर्णभूषणाद्यैरलङ्कृताः ॥ ११ ॥

अक्षस्रक् पुस्तकाभीतिवरदाढ्यकराम्बुजाः
अधरोविन्दुमानाढ्यं ब्रह्मेन्द्रस्थः शशीयुतः ।
द्वितीयं भृगुसर्गाढ्यो मनुस्तार्तार्यमीरितम् ॥ १२ ॥

सारसच्चये विन्दुरप्युक्तः, तदुक्तम्—

दन्तान्तेन युतं सदण्डिसकलं ।
संमोहनाख्यं कुलम् ॥ १३ ॥

इति ।

एषा वरलेति विख्याता
त्रैलोक्यवशकारिणी ॥ १४ ॥

शशीयुत इति शशिना विन्दुना इकारेण युक्त इत्यर्थं । अस्य मन्त्रस्य सर्वं पूर्वंभैरवीमन्त्रवत् । पुरश्चरणमपि तुल्यमेव । अथ त्रिपुरास्तुति :—''ब्रह्मादयः स्तुतिशतैरपि सूक्ष्मरूपामि''त्यादि शारदायाम् ॥

इति भवानन्दरायकारिते श्रीगोविन्दकृते
पूजाप्रदीपे
त्रिपुरापूजापरिच्छेदः ।

******

अथ गणपतिमन्त्राः ।

पञ्चान्तकं शशियुतं

बीजं गणपतेर्विदुः ।

प्रपञ्चसारे —

चतुरीयो विलोमेन तारादिर्विन्दुसंयुतः ।

वैघ्नमन्त्रो हृदन्तो र्वा विधौ होमे द्विठान्तकः ॥ १ ॥

अनयोर्मन्त्रयोर्गणकऋषिर्निवृच्छन्दो गणपतिर्देवताऽभीष्टार्थसिद्धौ विनियोगः । गाँ हृदयाय नमः, गीं शिरसे स्वाहा, गूँ शिखायै वषट्, गैं कवचाय हुँ, गौं नेत्रत्रयाय वौषट्, गः अस्त्राय फट् इति षडङ्गमन्त्राः । तीव्रा, ज्वालिनी, नन्दा, भोगदा, कामरूपिणी—उग्रा, तेजोवती, सत्या, विघ्ननाशिन्यः पीठशक्तयः । सर्वशक्तिकमलासनाय नमः इत्यासनमन्त्रः ।

सिन्दूराभं त्रिनेत्रं पृथुतरजठरं हस्तपद्मैर्दधानम् ।

दन्तं पाशाङ्कुशेष्टान्युरुकरविलसद्बीजपूराभिरामम् ।

बालेन्दुद्योतिमौलिं करिपतिवदनं नादपूर्वार्द्धगण्डम्,

भोगीन्द्राबद्धभूषं भजत गणपतिं रक्तवस्त्राङ्गरागम् ॥ २ ॥

इति ध्यानम् ।

अत्र दन्तादीनि दक्षिणोर्ध्वहस्तमारभ्य तदधोहस्तपर्यन्तं ध्यातव्यानि । आवरणपूजायां कर्णिकायां पूर्वादिदिक्षु गणाधिपगणेशान्, गणनायक, गणक्रीडान्, केसरेष्वग्नेयादि हृदयशिरःशिखाकवचानि । अग्रे नेत्रं, दिक्ष्वस्त्रम् । पूर्वादि-पत्रमध्ये वक्रतुण्डैकरद— महोदर गजानन— लम्बोदर— विकट— विघ्नराज— धूम्रवर्णान्, दलाग्रेषु ब्राह्मी, माहेश्वरी कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा, महालक्ष्मीः । तद्बहिर्ल्लोकपालान् तद्बहिस्तदस्त्राणि च पूजयेत् । गणाधिपादिध्यानन्तु—पूजयेदित्युपक्रम्य पीतगौररक्तनीलरुचः क्रमात् ।

सर्वान्नागेन्द्रभूषाढ्यान्-

भक्ष्यलक्षितपुष्करान् ।

ब्राह्म्यादिध्यानं मातृकामन्त्रपद्धतौ द्रष्टव्यम् ।

वेदलक्षं जपेन्मन्त्रं दशांशं

जुहुयात्ततः ।

मोदकैः पृथुकैर्लाजैः सक्तुभिः

सेक्षुपर्व्वभिः ॥ ३ ॥

नारिकेलैस्तिलैः शुद्धैः स्वपक्कैः

कदलीफलैः ॥ ४ ॥

श्रीशक्तिस्मरभूविघ्नवीजानि प्रथमं वदेत् ।

ङेन्तं गणपतिं पश्चाद्वरान्ते वरदं पदम् ॥ ५ ॥

तुण्डा सर्वजनं मे न्ते वशमानय च द्वयम् ।

अष्टाविंशत्यक्षरोऽयं ताराद्यो मनुरीरितः ॥ ६ ॥

अत्र "षड्वीजस्थ स्ववीजेन दीर्घभाजा प्रकल्पयेत् ।" षडङ्गानीत्यत्र षड्वीजस्थत्वं तदादिकत्वमेत्र विवक्षितम् । "ताराधाराख्याविद्धाः कृष्टाध्वनस्तथैते मनव" इत्यत्र ताराधार इतिवत् । न तु तत्सम्बन्धः । ओंकारादियुक्तत्वे आकारादियोगविरोधात् । षड्वीजानि च यथाक्रमं षडङ्गेषु योजनीयानि यथासंख्यमन्वयस्य त्यागे वीजाभावात् । प्रणवादित्रीजपीठस्थितेन दीर्घान्वितेन सता । "अङ्गानि षड्विदध्यान्मन्त्री विघ्नेश्वरस्थवीजेनेति" प्रपञ्चसारस्याप्येतदर्थंकृतत्वात् । प्रपञ्चसारविवरणे तु उक्तपक्षं साम्प्रदायिकत्वेनाभिधाय वीजपञ्चकोत्तरषड्दीर्घयुक्तस्ववीजेनाङ्गकल्पनेति केचिदित्युक्तं, सपक्षः शारदाविरुद्ध एव षड्वीजस्थस्ववीजेनेतितद्वचनात् । आवरणपूजायाम्—

अग्रस्थविल्ववृक्षाधः श्रियं श्रीपतिमर्चयेत् ।

दक्षिणेवटवृक्षाधो गौरीं गौरपतिं यजेत् ।

पश्चिमे पिप्पलस्याधो रतिं रतिपतिं यजेत् ॥ ७ ॥

सौम्ये प्रियङ्गुवृक्षाधो महींपोत्रिणमर्चयेदिति शारदावचनेषु देवतापेक्षाग्रत्वाद्यर्थे क्षयस्थः पूर्वाभिमुखत्वेऽग्रे पश्चिमत इत्यनयोरर्थैक्यं पूर्वंदिग्लाभः, उदङ्मुत्वेऽग्रे दक्षिणत इत्यनयोरर्थैक्यं पूर्वंदिग्लाभः ।

एवमामोदं सिद्धिसहितमग्रकोणे समर्चयेत् ।
समृद्धयायुतमभ्यर्चेत्प्रमोदं वह्निकोणतः ॥ ८ ॥
सुमुखं कान्तिसंयुक्तमीशकोणे समर्चयेत् ।
दुर्मुखं मदनावत्या यजेद्वरुणकोणके
विघ्नं मदद्रवा युक्तं कोणे नैशाचरेऽर्चयेत ।
वायव्ये विघ्नकर्त्तारं द्राविण्या सह संजयेत् ॥ ९ ॥

इति वचनेष्वीदृशो दोषः। वह्निकोण इत्यादौ वक्ष्यमाणप्रपञ्चसार-वचनविरोधश्च। नचाग्रत इत्यस्य पूर्वत इत्यर्थः।]

अग्रस्थविल्वमभितश्चरमारमेशौ
तद्दक्षिणे वटजुषौ गिरिजावृषाङ्कौ ।
पृष्ठे च पिप्पलजुषौ रतिपुष्पवाणौ
सव्ये प्रियङ्गुमभितश्च महीवराटौ ॥ १० ॥
अग्राग्रावामोदः प्रमोदसुमुखौ च तमभितोस्त्रियुगे ।
पृष्ठे च दुर्मुखाख्यस्तमभितोऽविघ्नविघ्नकर्त्तारौ ॥ ११ ॥

इति ॥

ध्यानप्रकारस्तु प्रपञ्चसारवचनाभ्यामुभयथापि विरोधात् । न च पश्चिम-सौम्यादिशब्दानां पृष्ठोत्तरादिषु शक्तिरिति । अत्रोच्यते । शारदावचनानां—

यष्टुरभिमुखादेवा देवाभिमुखतो दश
प्राच्यादिर्वहिरितो ज्ञेयाः पूजाहोमादिकर्मसु ॥ १२ ॥

इति वचनानुरोधेन प्रवृत्तत्वानोक्तदोषावकाशः। न चैतद् वाक्यप्रामाण्येन सर्वत्रावरणपूजायामेवं दिग्व्यवहारप्रसङ्गः, पूर्वादिपदानां मुख्यार्थपरत्वे वाधक-सत्तायामेतद्वचनानुरोधादित्येके। अपरे तु तत्रेष्टापत्तेरित्याहुः । युक्तञ्चैतत् यतो नारायणाष्टाक्षरमन्त्रपूजायां ध्वजं वरुणदिग्भावे श्यामलं पूजयेत्तत इत्यत्र परमेश्वरस्य पृष्ठभाग एव वरुणदिक्त्वेनोक्तः, अत्रापि च दक्षिणवायव्यनैर्ऋतादयः

सौम्याग्नेयैशानादित्वेनोक्ताः। किञ्चैवं सति गोपालादिपूजायां रुक्मिणीवासुदेवादीनां मुख्यानान्देवाग्रे पूजा सम्पद्यते। देवतानां पश्चिमाभिमुखत्वे दक्षिणाभिमुखत्वे वा प्रधानामप्रधानानाञ्च परिवाराणामुचितं स्थानञ्च सम्पद्यते इत्यादिकमालोचनीयम्।

ध्याने च—

पीठं सिंहमुखं पादं—

सिंहमुखपादपीठगलिपिमयपद्मे षट्कोणोल्लसिते—इति प्रपञ्चसारवचनात्।

"कराग्रधृतमाणिक्य कुम्भवक्त्रविनिःसृतै"

रित्यत्र कराग्रं करपुष्करंकरम्॥ करपुष्करधृतकलशेत्यादितद्वचनात्।

वीजापूरगदाधनुस्त्रिशिष (ख) युक्-
चक्राब्जपाशोत्पल,
व्रीह्यग्रश्चविषाणरत्नकलशान्-
हस्तैर्वहन्तं भजे।

इत्यत्र वीजापूरादीन्यधोदक्षिणहस्तमारभ्य वामाधो हस्तपर्य्यन्तं ध्येयानीति प्रपञ्चसारविवरणम्, तन्न युक्तम्, धनुषउभयहस्तधार्यत्वेपि पाशस्य दक्षिणहस्तमात्रधार्य्यत्वात्। तस्माद् वामस्तुरीयहस्तमारभ्यतृतीयहस्तपर्य्यन्तानि चिन्तनीयानि। तेन शूलपाशयोर्द्दक्षिणहस्ते धनुषश्च वामहस्ते स्थितिर्भवतीति।

अस्य मन्त्रस्य गणकऋषिर्निवृद्द गायत्रीछन्दो महागणपतिर्द्देवता-धनाद्यभीष्टसिद्धौ विनियोगः। ओं गां हृदयाय नमः, श्रीं गीं शिरसे स्वाहा, ह्रीं गूं शिखायै वषट्, क्लीं गैं कयचाय हुं, ग्लौं गौं नेत्रत्रयाय वौषट्, गं गः अस्त्राय फट् इत्यङ्गमन्त्राः।

आवाहनप्रकरणोक्तस्वरूपं मातृकाम्भोजं त्रिकोणं गर्भंषड्कोणगर्भं पूजायन्त्रम्। तीव्रा, ज्वालिनी, नन्दा, भोगदा, कामरूपिणी, उग्रा, तेजोवती, सत्या, विघ्ननाशिन्यः पीठशक्तयः। सर्वशक्तिकमलासनाय नमः इतिपीठमन्त्रः।

अथ ध्यानम् —

नवरत्नमयं द्वीपं स्मरेद्दिक्षुरसाम्वुधौ ।
तद्वीचिधौतपर्यन्तं मन्दमारुतसेवितम् ।। १३ ।।

मन्दारपारिजातादिकल्पवृक्षलतान्वितम् ।
तद्वृत्तरत्नछायाभिररुणीकृतभूतलम् ।। १४ ।।

उद्यद्दिनकरेन्दुभ्यामुद्दीपितदिगन्तरम् ।
तस्य मध्ये पारिजातं नवरत्नमयं स्मरेत् ।। १५ ।।

ऋतुभिः सेवितं षड्भिरनिशं प्रीतिवर्द्धनैः ।
तस्याधस्तान्महापीठे रचितामातृकाम्बुजे ।
षट्कोणान्तत्रिकोणस्थं महागणपतिं स्मरेत् ।। १६ ।।

हस्तीन्द्राननमिन्दुचूड़मरुणं-
छायं त्रिनेत्रं रसा-
दाश्लिष्टं प्रियया सपद्मकरया-
स्वाङ्कस्थया सन्ततम् ।
बीजापूरगदाधनुस्त्रिशिखयुक्
चक्राब्जपाशोत्पल-
व्रीह्यग्रस्वविषाणरत्नकलशान्
हस्तैर्भजन्तं भजे ।। १७ ।।

गण्डपालीगलद्दानपूरलालसमानसान् ।
द्विरेफान् कर्णतालाभ्यां धारयन्तं मुहुर्मुहुः ।। १८ ।।

कराग्रधृतमाणिक्यकुम्भवक्त्रविनिःसृतैः ।
रत्नवर्षैः प्रीणयन्तं साधकं मदविह्वलम् ।। १९ ।।

माणिक्यमुकुटोपेतं रत्नाभरणभूषितम् ।

पीठं सिंहमुखपादं देवस्य वामोरुस्था वामकरेण पद्मधारिणी दक्षिणेन देवमालिङ्गन्ती देवी बीजापूरादीनि चतुर्थं वामहस्तमारभ्यतत्तृतीयं यावत् । धनुः इक्षुनिर्मितम् । श्री श्रीपत्यादयः पद्मनिधिपर्यन्ताः आवरणोक्तध्यातव्याः । आवरणपूजायां त्रिकोणाद्बहिः देवस्याग्रे विल्ववृक्षाधस्तात्तत्पार्श्वयोः श्रीश्रीपती, दक्षिणे वटवृक्षाधस्तत्पार्श्वयोः गौरी गौरीपती, पृष्ठदेशे पिप्पलस्याधस्तदुभयतः रतिरतिपती, वामे प्रियङ्गुवृक्षाधस्तदुभयतः महीवराहौ, अग्रे लक्ष्मी गणनायकौ च पूजनीयौ । ततः कर्णिकास्थषट्कोणस्यदेवस्याग्रकोणे सिद्धिसहितमामोदं, देवापेक्षया परिभाषितवह्निकोणे समृद्धिसहितंप्रमोदं, एवं परिभाषिते ईशानकोणे कान्तियुतं सुमुखं, पृष्ठस्थकोणे मदनावतीयुक्तं दुर्मुखं, परिभाषिते निर्ऋतिकोणे मदद्रवायुक्तं विघ्नं, पारिभाषिकवायुकोणे द्राविणीयुतं विघ्नकर्तारं, षट्कोणस्य देवदक्षिणपार्श्वे वसुधारासहितं शङ्खनिधिं, वामपार्श्वे वसुमतीसहितं पद्मनिधिं केसरेष्वग्न्यादिकोणेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि । अग्रे नेत्रं, दिक्ष्वस्त्रम् । पूर्वादिपत्रमध्येषु ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा, महालक्ष्मीः । तद्बहिर्लोकपालान्, तद्बहिस्तदस्त्राणि च पूजयेदिति ॥

अथ श्रीप्रभृतिध्यानम् :

पद्मयुग्मधरा पद्मा शङ्खचक्रधरो हरिः ।
पाशाङ्कुशधरा गौरी टङ्कशूलधरो हरः ॥ २० ॥
रतिरुत्पलहस्ताढ्या कोदण्डास्त्रधरः स्मरः ।
शुकव्रीह्यग्रहस्ताभूर्गदाचक्रधरः पतिः ।

अथामोदादीनां षण्णां सिद्ध्यादीनाञ्च ध्यानम् —

पाशाङ्कुशाभयाभीष्टधारिणो रुणविग्रहाः ।
गण्डभित्तिगलद्दानपूरधौतमुखाम्बुजाः ॥ २१ ॥
विघ्नास्तत्प्रमदाः सर्वा मदाघूर्णितलोचनाः ।
एकहस्तधृताम्भोजा इतरालिङ्गितप्रियाः ।
शङ्खपद्मयोर्ध्यानं श्रीवीजपूजायां लिखितम् ॥ २२ ॥

ध्यायेन्मन्त्री जपेन्मन्त्रं चतुर्ल्लक्षं समाहितः ।
चतुः सहस्रसंयुक्तं चत्वारिंशत्सहस्रकम ।। २३ ।।

दशांशं जुहुयाद्द्रव्यैरष्टकैर्म्मोदकादिभिः ।
तर्पयेद्दिनेशो विघ्नं प्रागुक्तेनैव वर्त्मना ।। २४ ।।

मोदकपृथूकलाजसक्त्विक्षुपर्वनारिकेलतिलपक्वकदलीफलानि । मोदकादीनि अष्टद्रव्याणि ।

तर्पयेत् सलिलैः शुद्धैर्दिनेशो गणनायकम् ।
चतुर्थश्चत्वारिंशदाढ्यं चतुःशतमतन्त्रितः ॥ २५ ॥

इति प्रागुक्तवर्त्म ।

मायाविरिपदद्वन्द्वं ततो गणपतिं वदेत् ।
खड्गीशपावकौ पश्चात् वरदान्ते वदेत्पुनः ॥ २६ ॥
सर्वलोकं मे पदान्तं वशमानय च द्वयम् ।
षड्विंशत्यक्षरो मन्त्रो भजतां सुरपादपः ॥ २७ ॥

अस्य मन्त्रस्य गणकऋषिर्गायत्रीच्छन्दो विरिविघ्नेश्वरो देवता सर्वाभीष्टसिद्धौ विनियोगः, ह्रीं विरिविरि हृदयाय नमः, ह्रीं गणपतिशिरसे स्वाहा, ह्रीं वरवरद शिखायै वषट्, ह्रीं सर्वजनम्मे कवचाय हुँ, ह्रीं वशमानय नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्रीं स्वाहा अस्त्राय फट् इत्यङ्गमन्त्राः ।

आवाहनप्रकरणोक्तस्वरूपं मातृकाम्भोजं.................. । ....
त्रिकोणगर्भं पूजायन्त्रम् । तीव्रा, ज्वालिनी, नन्दा, भोगदा, कामरूपिणी, उग्रा, तेजोवती, सत्या, विघ्ननाशिन्यः पीठशक्तयः । सर्वशक्तिकमलासनाय नमः इत्यासनमन्त्रः ।

ध्यानन्तु —

नवरत्नमयं द्वीपं स्मरेदीक्षुरसाम्बुधौ ।
तद्वीचिधौतपर्य्यन्तं मन्दमारुतसेवितम् ॥ २८ ॥

मन्दारपारिजातादिकल्पवृक्षलतान्वितम् ।
तद्व तुरत्नच्छायाभिररुणीकृतभूतलम् ॥ २९ ॥
उद्यद्दिनकरेन्दुभ्यामुद्दीपितदिगन्तरम् ।
तस्य मध्ये पारिजातं नवरत्नमयं स्मरेत् ॥ ३० ॥

ऋतुभिः सेवितं षड्भिरनिशं
प्रीतिवर्द्धनैः ।
तस्याधस्तान्महापीठे रचिते मातृकाम्बुजे
त्रिकोणषट्कोणस्थं देवं गणपतिं स्मरेत ।
सिन्दूराभमिभाननं त्रिनयनं-
हस्तेषु पाशाङ्कुशौ,
बिभ्राणं मधुमत्कपालमनिशं
सार्द्धेन्दुमौलिम्भजे ॥ ३१ ॥
पुष्ट्याश्लिष्टतनुं ध्वजाग्रकरया-
पद्मोल्लसद्धस्तया ;
तद्‍योन्याहितपाणिमात्रवसुमत्-
पात्रोल्लसत्पुष्करम् ॥ ३२ ॥

आवरणपूजायाँ त्रिकोणबाह्ये देवाग्रे विल्ववृक्षाधस्ताद् वृक्षमभितः श्रीश्रीपती, दक्षिणे वटवृक्षाधस्तदुभयतः गौरी गौरपती, देवपृष्ठतः पिप्पलवृक्षाधस्तदुभयतः रतिरतिपती, देववामे प्रियङ्गुवृक्षाधस्तादुभयतः महीवराहौ, देवाग्रे लक्ष्मोगणनायकौ। षट्कोणस्य देवाग्रकोणे सिद्धिसहितमामोदं, देवापेक्षया, पारिभाषितवह्निकोणे समृद्धिसहितं प्रमोदं, एवं परिभाषित इशानकोणे कान्तिसहितं सुमुखं, पृष्ठकोणे मदनावतीसहितं दुर्मुखं, परिभाषितनिर्ऋतिकोणे मदद्रवासहितविघ्नम्। पारिभाषिक वायुकोणे द्राविणीयुक्तं विघ्नकर्त्तारं पूजयेत्। एते चामोदादयो दिगम्बराः महागणपतिमन्त्रोक्तध्यानाः। केसरेष्वग्न्यादिकोणेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि। अग्रे नेत्रं, दिक्ष्वस्त्रम्, पीठेषु

ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराह्मीन्द्राणी, चामुण्डा, महालक्ष्मीः। तद्बहिर्ल्लोकपालान् तद्वहिस्तदस्त्राणि च पूजयेदिति। श्री श्रीपत्यादिध्यानं महागणपतिमन्त्रे। ब्राह्मीप्रभृतिध्यानं मातृकामन्त्रे द्रष्टव्यम्॥

मुक्तागौरं मदगजमुखं-
चन्द्रचूडं त्रिनेत्रम्,
हस्तैः स्वीयैर्दधतमरवि-
न्दाङ्कुशौ रत्नकुम्भम्॥ ३३॥

अङ्कस्थायास्सरसिजरुचेः-
सध्वजालम्बिपाणे-
र्देव्या योनौ विनिहितकरं
रत्नमौलिं भजामः॥ ३४॥

इति॥

अधस्तनोर्ध्वयोर्दक्षिणहस्तयोः ऊर्ध्वे वामहस्ते च अरविन्दादीनि ध्येयानि।

लक्षमेनं जपेन्मन्त्रमपूपैस्तद्दशांशतः।
जुहुयादर्चिते वह्नौ दिनेशो देवमर्चयेत्॥ ३५॥

शक्त्यारुद्धं निजं वीजं वाणमानथ ठद्वयम्
ताराद्यो मनुराख्यातो रुद्रसंख्याक्षरान्वितः॥ ३६॥

अत्र अङ्गमन्त्रपदैर्भवेत्।

एकेनादौ त्रिभिर्द्वाभ्यां त्रिभिर्द्वाभ्यामनन्तरम्।
समस्तेनास्त्रमाख्यातमङ्गक्लृप्तिरियंमता॥ ३७॥

इत्यत्र एकेन वर्णेन एवं त्रिभिर्द्वाभ्यामित्यादीन्यपि वर्णविशेषणान्येव। नच अङ्गमन्त्रपदैर्भवेदित्युपक्रमा देके नेत्यादीनि पदविशेषणान्येवेति वाच्यम्,

तथ।सति समुचितव्यवस्थाया असम्भवात् । नन्वेवं पदैर्भवेदितिवचनं निबन्धकमिति चेत्, न शिखामन्त्रे वशमित्यस्य द्वितीयान्तस्य प्राप्त्यर्थं तद्वचनात्,—अन्यथा वर्णद्वयप्राप्तौ श्रीशक्तिनिर्विभक्तिकवर्णद्वयस्य प्राप्तिप्रसङ्गात् ।

अस्य मन्त्रस्य गणकऋषिर्निवृद् गायत्री छन्दः शक्तिगणेश्वरो देवताऽभीष्टार्थसिद्धौ विनियोगः । शेषमङ्गमन्त्रध्यानवर्जं मायाविरिपदद्वन्द्वमित्यादि विरिगणपतिमन्त्रवत् । अङ्गमन्त्रास्तु ओँ हृदयाय नमः, ह्रोँ गँ ह्रीँ शिरसे स्वाहा, वशं शिखायै वषट्, आनय कवचाय हुँ, स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट्, ओँ ह्रा गँ ह्रीँ वशमानय स्वाहा, अस्त्राय फट्, इति षड्ङ्गमन्त्राः ।

हस्तैर्बिभ्रतमिक्षुदण्डवरदौ-
पाशाङ्कुशौ पुष्करः,
स्पृष्टस्वप्रमदावराङ्गमनया-
श्लिष्टं ध्वजाग्रस्पृशा ।
श्यामाङ्ग्या विधृताब्जया त्रिनयनं-
चन्द्रार्धचूडं जवा,
रक्तं हस्तिमुखं स्मरामि सततं
भोगातिलोलं विभुम् ॥ ३८ ॥

इति ध्यानम् ।

अत्रावामहस्तमारभ्य इक्षुदण्डादिकं प्रदक्षिणक्रमेण ध्येयम् ।

लक्षत्रयं जपेन्मन्त्रमिक्षुखण्डैर्दशांशतः
अपूपैराज्ययुक्तैर्वा जुहुयान्मन्त्रसिद्धये ॥ ३९ ॥

स्वगुरुं धनधान्याद्यैः प्रीणयेत् प्रीतिमानसः ।
संवर्तको नेत्रयुतः पार्श्वौ वह्न्यासने स्थितः ।
प्रसादनाय ह्मन्त्रः स्वबीजाढ्यो दशाक्षरः ॥ ४० ॥

अस्य मन्त्रस्य गणकऋषिर्विराट्छन्दः क्षिप्रप्रसादनो गणेशो देवताऽभीष्टार्थसिद्धौ विनियोगः । गां हृदयाय नमः, गीं शिरसे स्वाहा, गूँ शिखायै

वषट्, गैं कवचाय हुँ, गौं नेत्रत्रयाय वौषट्, गः अस्त्राय फट् इत्यङ्गमन्त्राः। तीव्रा, ज्वालिनी, नन्दा, भोगदा, कामरूपिणी, उग्रा, तेजोवती, सत्या, विघ्ननाशिन्यः पीठशक्तयः। सर्वशक्तिकमलासनाय नमः, इति पीठमन्त्रः।

पाशाङ्कुशौ कल्पलतां विषाणं

दधत्स्वतुण्डाहितबीजपूरः ।

रक्तस्त्रिनेत्रस्तरुणेन्दुमौलि-

र्हारोज्ज्वलो हस्तिमुखोऽवताद्वः ।

भास्वरभूषणदीप्तो बृहदुदरः —

पद्मविस्तरोल्लसितः ।

ध्येयोऽनायततुदो

पत्सरसीरुहसम्पदः सदामनुजैः ॥ ४१ ॥

इति ध्यानम् ।

अत्र उपरिहस्तयोः पाशाङ्कुशौ अधोहस्तयोर्दन्तकल्पलते इति प्रपञ्चसारविवरणम्। वस्तुतस्तु अधोदक्षिणहस्तमारभ्य वामाधोहस्तपर्य्यन्तं चत्वारि ध्येयानि। पाशाङ्कुशयोर्दक्षिणहस्ताधेयत्वस्य शैवागमे प्रतिपादनात्। आवरणपूजायां केसरेष्वग्न्यादिकोणेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि। अग्रे नेत्रं दिक्ष्वस्त्रम्। पत्रेषु विघ्नविनायकवीर, शूरवरद, एकरद, लम्बोदर एतान्। पत्राग्रेषु ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराहीन्द्राणी, चामुण्डा, महालक्ष्मीः। तद्बहिर्लोकपालान्, तद्बहिस्तदस्त्राणि च पूजयेदिति। ब्राह्म्यादिध्यानं मातृकामन्त्रे द्रष्टव्यम्।

लक्षं जपेज्जपस्यान्ते जुहुयादयुतं तिलैः ।

समधुत्रितयैर्द्रव्यैरथवाष्टभिरीरितैः ॥ ४२ ॥

मोदकपृथुकलाजसक्त्विक्षुपर्व्वनारिकेलतिलपक्वकदलीफलान्यष्टद्रव्याणि ।।

पञ्चान्तको विन्दुयुतो वामकर्णविभूषितः ।

तारादिर्हृदयान्तोऽयं हेरम्बमनुरीरितः ।। ४३ ॥

चतुर्वर्णात्मको नृणां चतुर्वर्गप्रदायकः ।

अस्य मन्त्रस्य गणकऋषिर्विराट्छन्दोहेरम्बो देवताऽभीष्टार्थसिद्धौ विनियोगः।

गां हृदयाय नमः, गीं शिरसे स्वाहा, गूं शिखायै वषट्, गैं कवचाय हुँ, गौं नेत्रत्रयाय वौषट्, गः अस्त्राय फट्. इत्यङ्गमन्त्राः। ओं गं इति मूर्त्ति-कल्पनमन्त्रः। तीव्रा, ज्वालिनी, नन्दा, भोगदा, कामरूपिणी, उग्रा, तेजोवती, सत्या, विघ्ननाशिन्यः पीठशक्तयः। ओं हुँ हुँ महासिंहाय गां हेरम्बासनाय नमः, इत्यासनमन्त्राः।

मुक्ताकाञ्चननीलकुन्दघुसृण-
च्छायैस्त्रिनेत्रान्वितै,
र्नागास्यैर्हरिवाहनं शशिधरं-
हेरम्बमर्कप्रभम्।
दृप्तं दानमभीतिमोदकदरान्
टङ्कं शिरोक्षात्मिकाम्,
मालामुदारमङ्कुशं त्रिशिखिकं
दोर्भिर्दधानं भजे ॥ ४४ ॥

इति ध्यानम्।

अत्र नागास्यैरिति हस्तितुल्यमुखैर्लक्षितमित्यर्थः। ऊर्ध्वयोर्दक्षिणवाम-हस्तयोर्दानाभयेतयोरधस्तनयोर्मोदकरदौ, एवमग्रेऽपि मुक्ताकाञ्चनेत्यादि ऊर्ध्व-पूर्वादि क्रमेण। आवरणपूजायां केसरेषु आग्नेयादिकोणेषु हृदयशिरःशिखा-कवचानि। अग्रे नेत्रं, दिक्ष्वस्त्रम्, तद्बाह्ये लोकेशाः, तद्बहिस्तदस्त्राणि च पूजनीयानि।

लक्षत्रयं जपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयात्तिलैः।
तारं खड्गीश्वरः कूर्मो निस्वरो णान्त ईरितः।
भुवे नतिः ससवर्णः सुब्रह्मण्यात्मको मनुः ॥ ४५ ॥

अस्य मन्त्रस्य गणकऋर्षिर्विराट् छन्दः सुब्रह्मण्योदेवताऽष्टसिद्धौ विनियोगः। रां हृदयाय नमः, रीं शिरसे स्वाहा, रुं शिखायै वषट्, रैं कवचाय हुँ, रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, रः अस्त्राय फट्, इत्यङ्गमन्त्राः। धर्मज्ञानादारभ्य वह्निमण्डलान्तैः पीठं, अत्र पीठे सत्त्वादयो न पूज्याः। सर्वशक्तिकमलासनाय नमः त्यासनमन्त्रः।

सिन्दूरारुणकान्तिमिन्दुवदनं-
केयूरहारादिभि-
र्दिव्यैराभरणैर्विभूषिततनुं
स्वर्गस्य सौख्यप्रदम्।
अम्भोजाभयशक्तिकुक्कुटधरं
रक्ताङ्गरागांशुकम्,
सुब्रह्मण्यमुपास्महे प्रणमतां
भीतिप्रणाशोद्यतम् ॥ ४६ ॥

इति ध्यानम्।

आवरणपूजायां केसरेषु आग्नेयादिकोणेषु हृदयशिरःशिखकवचानि। अग्रे नेत्रम्, दिक्ष्वस्त्रम्, पत्रमध्येषु शक्तिवज्रधरान्—जयन्ताग्निवैश्यकृत्तिकापुत्रभुतपतिसेनानीगुहहेमशूलविशालान्, दिग्दलाग्रेषु देवसेनापतिविद्यामेघाव्रजाः। कोणदलाग्रेषु शक्तिकुक्कुटमयूरद्विपान्, तद्बहिर्ल्लोकपालान्, तद्बहिस्तदस्त्राणि च पूजयेदिति।

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं साज्येन हविषा ततः।
दशांशं जुहुयादन्ते ब्राह्मणानपि भोजयेत् ॥ ४७ ॥

जपतर्पणपूजादौ विघ्नेशं सर्वसिद्धिदम्।
प्रीणयेदनया स्तुत्या प्राप्तये सर्वसम्पदाम् ॥ ४८ ॥

ओँकारमाद्यं प्रवदन्ति सन्तो-

वाचः श्रुतीनामपि संगृणन्ति

गजाननं देवगणानतांघ्रि

भजेऽहमर्धेन्दुकृतावतंसम् ॥ ४१ ॥

इत्यादि शारदायाम् ।

इति श्री भवानन्दरायकारिते

श्री गोविन्दकृते पूजाप्रदीपे

गणेशपूजापरिच्छेदः ।

अथ सोममन्त्रः ।

खङ्गीशस्थो भृगुर्ब्बिन्दुमनुस्वारसमन्वितः

सोमाय हृदयान्तोऽयं मन्त्रः प्रोक्तः षडक्षरः ॥ १ ॥

अस्य मन्त्रस्य भृगुर्ऋषिः पङ्क्तिश्छन्दः सोमो देवता धनाद्यभीष्टसिद्धौ विनियोगः। स्वां हृदयाय नमः, स्वीं शिरसे स्वाहा, स्वूँ शिखायै वषट्, स्वैं कवचाय हुँ, स्वौं नेत्राभ्यां वौषट्। स्वः अस्त्राय फट् इतिषडङ्गमन्त्राः। आधारशक्त्यादिसोममण्डलान्तं पीठे सम्पूज्य रागादि नव शक्ती र्यजेत्। ताश्च रागा, कुमुद्वती, नन्दा, सुधा, सञ्जीवनी, क्षमा, आप्यायिनी, चन्द्रिकाह्लादिन्यः। सोमासनाय नमः इत्यासनमन्त्रः।

कर्पूरस्फटिकावदातमनिशं-

पूर्णेन्दुबिम्बाननम्,-

मुक्तादामविभूषितेन वपुषा

निर्म्मूलयन्तं तमः ।

हस्ताभ्यां कुमुदं वरञ्च दधतं

नीलालकोद्भासितम्,

अस्याङ्कस्थमृगोदिताश्रयगुणं

सोमं सुधाब्धिं भजे ॥ २ ॥

इति ध्यानम् ।

आवरणपूजायां केसरेषु अग्न्यादिकोणेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि, अग्रे नेत्रे, दिक्ष्वस्त्रम्। पत्रमध्येषु रोहिणी, कृत्तिका, रेवती, भरणी, रात्रि, आर्द्रा, ज्योत्स्ना, कलाः, दलाग्रेषु, आं आदित्य, मं मङ्गल, बुं बुध, मं मन्द, गुं गुरु, रां राहु, शुं शुक्र, कें केतून्। तद्बहिरिन्द्रादीन्, तद्बहिर्वज्रादींश्च पूजयेदिति ।

अथावरणध्यानम् —

रोहिण्याद्याः················हारसमप्रभाः ।
सितमाल्याम्वरधरामुक्ताहारविभूषणाः ।
पयोधरभराक्रान्ता रचिताञ्जलयः शुभाः ।। ३ ।।
वल्लभासक्तमनसो मदविभ्रममन्थराः ।
समभ्यर्च्यास्सरोजाक्ष्यश्चन्द्रविम्वनिभाननाः ।। ४ ।।
ग्रहाः स्ववर्णाम्वरोपेताः स्वनामाद्यवर्णवीजकाः ।
रक्तारुणश्वेतनीलपीतधूम्रसितासिताः ।
वामोरून्यस्ततद्धस्ता दक्षिणेन धृताभयाः ।
अम्वुजाढ्यकरो भानुर्दंष्ट्राभीममुखः शनिः ।। ५ ।।
राहुर्विकृतवक्त्रः स्यात् केतुः स्याद्-
विधृताञ्जलिः ।

तद्धस्तो वामहस्तः ।

रसलक्षं जपेन्मन्त्रं साधको विजितेन्द्रियः ।
षट्सहस्त्रं प्रजुहुयात् पायसेन ससर्पिषा ।। ६ ।।

इति श्रीभवानन्दकारिते
श्रीगोविन्दकृते
पूजाप्रदीपे
सोम – पूजा – परिच्छेदः ।।

अथ सूर्य्यमन्त्राः ।

तारो घृणिभृगुः पश्चात्वामकर्णविभूषितः ।

पद्मासनो मरुच्छेषः सनेत्रोत्रित्यपश्चिमः ॥ १ ॥

अष्टाक्षरो मनुः प्रोक्तो भानोरभिमतप्रदः ।

शेषोऽनन्तः आकारः, त्य पश्चिमः, त्यस्य पश्चिमः पूर्वं इत्यर्थः । अत्र मूर्त्तिन्यासपक्षे 'पञ्चह्रस्वै' रिति प्रपञ्चसारस्य "ह्रस्वमद्यादि पञ्चभि" रिति शारदावचनेनैकवाक्यतया, ओंकारादिपञ्चह्रस्वैरेव मूर्त्तिन्यासो न तु अकारादिभिरिति। वर्णन्यासे मूर्द्धांसकण्ठहृदयेत्ति न युक्तः पाठः। "मूद्धास्ये"त्येवमुक्तः शशिरोमुखगलहृदयेति प्रपञ्चसारवचनात् । "मन्त्रवर्णान्न्यसेदष्टौ, प्रत्येकं प्रणवादिकानिति"वचनस्य सर्वं वर्णा ओंकारादीकृत्य न्यस्तव्या इत्यर्थः, प्रत्येकमिति स्वरसात् । प्रणवादिकानित्यस्यान्यथा व्यर्थत्वापाताच्च । न च छन्दःपूरणानुरोधेनैव तदुपादानमिति युक्तं, सार्थकत्वस्य सम्भवात् । "प्रणवाद्यैरष्टार्णैः क्रमेण सोऽयं तदक्षरन्यास" इति प्रपञ्चसारेऽपि "प्रणवाद्यैरि"ति विशेषणोपादानाच्च । न हि एकत्रच्छन्दःपूरकमपरत्रापि तथैवोपादीयत इति । पीठपूजादौ प्रभूताविमलादि पूजास्थाने—"प्रयजेदथ प्रभूतां विमलां साराह्वयां समाराध्याम् । परमसुखामन्त्यादिषु मध्ये च पीठक्लृप्तेः प्रागिति प्रपञ्चसारोक्तकल्पेन विकल्प एव । आवरणपूजायां मातृभिररुणान्ताभिरित्यस्य प्र१ञ्चसारीयवचनस्य व्य।ख्याने महालक्ष्मीस्थाने अरुणः पूज्य इत्यर्थं इति टीका न समादरणीया । "पत्राग्रसंस्था ब्राह्म्याद्याः पुरतोऽरुणमर्चयेदि"ति शारदावचने नवमस्यारुणस्याग्रे पूजाभिधाने प्रपञ्चसारस्यापि तदर्थकत्वसम्भवात्, महालक्ष्मीस्थानेऽरुणपूजाविधानेऽग्रेऽरुण-पूजा न स्यात्, पूर्वादिक्रमेण ब्राह्म्यादिपूजनेऽग्रे देशस्य महालक्ष्मीपूजास्थानत्वा-सम्भवात् । न चैतदनुरोधेनैव पारिभाषिकाग्नेयादिक्रमेण ब्राह्म्यादिपूजनं कल्प्यमिति वाच्यम्, अस्यासिद्धत्वेनाकल्पकत्वात् । अन्योन्याश्रयत्वात् । आव-रणपूजाशेषे च सूर्यपार्षदेभ्यो नम इति तत्पार्षदान् पूजयेत्, तदुक्तं प्रपञ्चसार एव "मातृभिररुणान्ताभिग्रहैः सुरैः चान्तपार्षदकैरि"ति । अस्य मन्त्रस्य देवभार्गव-ऋषिर्गायत्रीच्छन्द आदित्यो देवता नैरुज्याद्यभीष्टसिद्धौ विनियोगः । सत्याय

तेजो ज्वालामणि हुँ फट् स्वाहा हृदयाय नमः, ब्रह्मणे तेजो ज्वालामणि हुँ फट् स्वाहा शिरसे स्वाहा, विष्णवे तेजो ज्वालामणि हुँ फट् स्वाहा शिखायै वषट्, रुद्राय तेजो ज्वालामणि हुँ फट् स्वाहा, कवचाय हुँ, अग्नये तेजो ज्वालामणि हुँ फट् स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट्। शर्वाय तेजो ज्वालामलिङ्ग फट् स्वाहा अस्त्राय फट् इत्यङ्गमन्त्राः।

अथ मन्त्रादिन्यासः। तत्रप्रथममूर्त्तिन्यासः। यथा—शिरसि ओँ आदित्याय नमः, मुखे ऐँ रवये नमः, हृदि उँ भानवे नमः, गुह्ये इं भास्कराय नमः, पादयोः अं सूर्याय नमः इति। ततो मन्त्रवर्णन्यासः शिरसि ओँ ओँ, मुखे ओँ घृं, कण्ठे ओँ णि हृदि ओं सू, उदरे ओं र्य्यं, नाभौ ओँ आ, लिङ्गे ओँ दि, चरणयोः ओँ त्य, इति न्यसेत्। पीठपूजायां प्रथमं दिक्षु मध्ये च प्रभूतं विमलसारसमाराध्य, परमसुखान् संपूज्याधारशक्त्यादिकं पूजयित्वा रां दीप्तायै नमः, रीं सूक्ष्मा रुं जया, रेँ भद्रा, रैँ विभूति, रोँ विमला, रौँ अघोरा, रं विद्युता, रः सर्वतोमुखा, एताः सवीजपीठशक्तीः पूजयेत्। ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाय सौराय योगपीठात्मने नमः, इति पीठमन्त्रः। ओँ खं खोल्काय इति मूर्त्तिकल्पनमन्त्रः।

रक्ताब्जयुग्माभयदानहस्तं-
केयूरहाराङ्गदकुण्डलाढ्यम्।
माणिक्यमौलिं दिननाथमीडे
वन्धूककान्तिं विलसत्त्रिनेत्रम्॥ २॥

रक्तारविन्दस्थितश्च देवो ध्यातव्यः इति ध्यानम्। आवरणपूजायां केसरेष्वग्न्यादिकोणेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि। अग्रे नेत्रम्, दिक्ष्वस्त्रम्। पूर्वादिदिग्दलेषु आं आदित्याय नमः, रं रवये नमः भाँ भानवे नमः, भां भास्कराय नमः। अग्न्यादिकोणपत्रेषु उँ उषायै नमः, प्रं प्रभायै नमः, सं सन्ध्यायै नमः, पत्राग्रेषु ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराहीन्द्राणी, चामुण्डा, महालक्ष्मीः। अग्रे तद्बहिः, अरुणं, तद्बहिः चन्द्रमङ्गलबुधबृहस्पतिशुक्रशनैश्चरराहुकेतून्, तद्बहिर्लोकपालान्, तद्बहिरस्त्राणि, तद्बहिः सूर्यपार्षदेभ्यो नमः, इति सूर्यपार्षदांश्च पूजयेदिति। अर्घदानविधिः काम्यो मार्तण्डभैरवीयमन्त्रे द्रष्टव्यः।

वसुलक्षं जपेन्मन्त्रं समिद्भिः क्षीरभूरुहाम् ।

तत्सहस्रं प्रजुहुयात् क्षीराक्तामिर्जितेन्द्रियः ॥ ३ ॥

आकाशमग्निदीर्घेन्दुसंयुतं भुवनेश्वरी ।

सर्गान्वितो भृगुर्भानोस्त्यक्षरो मनुरीरितः ॥ ४ ॥

अस्य मन्त्रस्य देवभागऋषिर्गायत्रीछन्दः सूर्य्योदेवता नैरुज्यादिभोष्टसिद्धौ विनियोगः, आधारादिपादाग्रान्तं ह्रां, कण्ठादिमूलान्तं ह्रीं, मूर्द्धन्यादिकण्ठपर्य्यन्तं सः, इति विन्यस्य कराङ्गन्यासं कुर्यात् । ह्रां हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहाः ह्रूं शिखायै वषट्, ह्रैं कवचाय हुँ, ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्रः अस्त्राय फट्, इत्यङ्गमन्त्राः । पीठे प्रथमं चतुर्दिक्षु मध्ये च प्रभूतविमलसारसमाराध्य परम-सुखान् संपूज्याधारशक्त्यादीन् पूजयित्वा, रां दीप्तायै नमः, एवं रीं सूक्ष्मा, रुँ जया, रें भद्रा, रैं विभूति, रों विमला, रौं अमोघा, रं विद्युता, रः सर्वतो-मुखी एताः सवीजपीठशक्तयः पूज्याः । ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाय सौराय योग-पीठात्मने नमः इति पीठमन्त्रः । ओं खं खखोल्काय इति मूर्तिकल्पनमन्त्रः ।

रक्ताम्बुजासनविशेषगुणैकसिन्धुं

भानुं समस्तजगतामधिपं भजामि ।

पद्मद्वयाभयवरान्दधतं कराब्जै-

र्माणिक्यमौलिमरुणाङ्गरुचिं त्रिनेत्रम् ॥ ५ ॥

इति ध्यानम् ।

आवरणपूजायां केसरेषु अग्न्यादिकोणेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि । अग्रे नेत्रम्, दिक्षु अस्त्रम्, पूर्वादिदलेषु चन्द्रबुधगुरुशुक्रशनैश्चरराहुकेतून्, तद्बहिर्लोक-पालान्, तद्बहिस्तदस्त्राणि च पूजयेदिति ॥

भानुलक्षं जपेन्मन्त्रं सान्नाढ्येन दशांशतः ।

तिलैर्वामधुरासक्तैर्जुहुयाद्विजितेन्द्रियः ॥ ६ ॥

अर्घदानविधि काम्यो मार्त्तंडेयभैरवीयो द्रष्टव्य. ॥

आकाशमग्निपवनसद्यान्तार्धीशविन्दुमतः ।

मार्त्तण्डभैरवं नामवीजमेतदुदाहृतम् ॥ ७ ॥

पुटितं विम्ववीजेन सर्वकामफलप्रदम् ।
दान्तंदहननेत्रेन्दुसहितं तदुदाहृतम् । ८ ॥

सद्यान्त औकारः । अङ्गन्यासे दीर्घयुजेन वीजेन नेत्रान्ताङ्गानि विन्यसेदितिवचनान्नेत्रान्तानि पञ्चैवाङ्गानीत्येके । अस्त्रानन्तरं नेत्राङ्गमित्यपरे । तत्रोत्तरं तत्त्वं पुरुषोत्तममन्त्रे तथा दर्शनात् । अस्य मन्त्रस्य देवभागऋषिर्गायत्रीछन्दः—मार्तण्डभैरवो देवता धनाद्यभीष्टसिद्धौ विनियोगः । मध्यमायां ह्रयं सूर्य्याय नमः, तर्ज्जन्यां ह्रियं (ह्रीं) भास्करायनमः, अङ्गुष्ठे ह्रयूँ भानवे नमः, अनामिकायां ह्रयें रवये नमः, कनिष्ठायाँ ह्रचैँ दिवाकराय नमः इति विन्यस्य शिरो मुखहृदयलिङ्गचरणेष्वपि सूर्यादिपञ्चकं अङ्गल्युक्तवीजेन विन्यस्य कराङ्गन्यासं कुर्यात् । तत्र ह्रयां हृदयायनमः, ह्रयंशिरस स्वाहा, ह्रयूँ शिखायैवषट्, ह्रयैँ कवचाय हुँ, ह्रयोँ अस्त्रायफट्, ह्रयँश्च नेत्रत्रयाय वौषट् इति नेत्रान्ताङ्गमन्त्रान् विन्यस्य वीजेन व्यापकं कुर्यात् । रं दीप्ता, रीं सूक्ष्मा, रुँ जया, रेँ भद्रा, रैँ विभूति, रौँ अमाघा, र विद्युता, रं स्सर्वेतोमुखी एताः सवीजपीठशक्तयः । ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाय सौराय योगपोठात्मने नमः इतिपीठमन्त्रेण पीठं सम्पूज्य कर्णिकायां पूर्वादिदिक्षु उं उषायै, प्रं प्रज्ञायै, प्रं प्रभायै, सं सन्ध्यायै नमः, इति सम्पूज्य मूलेन मूर्त्तिं कल्पयेत् ।

हेमाम्भोजप्रवालप्रतिमनिजरुचिं-
चारुखट्वाङ्गपद्मौ
चक्रं शक्तिं कृपाणं शृणिमतिरुचिरा-
मक्षमालाङ्कपालम् ।
हस्ताम्भोजैर्दधानं त्रिनयनविलसद्
वेदवक्त्राभिरामम्
मार्तण्डं वल्लभार्द्धं मणिमयमुकुटं
हारदीप्तं भजामः ॥ ६ ॥

इति ध्यानम् । अत्र खट्वाङ्गादीनि वामोर्ध्वहस्तमारभ्यदक्षिणोर्ध्वहस्तपर्य्यन्तम् । आवरणपूजायां पूर्वादिचतुर्दिक्षुकर्णिकायां सूर्यभास्करभानुरवीन्, अग्न्यादिकोणेषु उं उषायै, प्रं प्रज्ञायै, प्रं प्रभायै, संन्ध्यायै नमः इति, केसरेषु अग्न्यादिकोणेषु हृदयशिर शिखाकवचानि, दिक्ष्वस्त्रम्, ऐशान्यां नेत्रम्, पत्रेषु चन्द्र, कुज, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहुकेपून्, तद्बहिर्लोकपालान् पूजयेदिति । अत्र वज्राद्यावरणं नास्ति ।

"अर्घप्रधानं प्रयजेन्मन्त्री मार्तण्डभैरवम् ।"

तस्य प्रकारः—प्रत्यहं रविवारे वा प्रभाते बहिर्मण्डलं कृत्वा तत्र पीठं सम्पूज्य पानीयप्रस्थग्राहिरम्यं ताम्रपात्रं तत्र निधाय शुभोदकेन मूलेन तत्पूरयित्वा तत्र भानुना ऐक्यं संकल्प्य कुङ्कुमरोचनाराजीरक्तचन्दनवैष्णवकरवीरजवाशालिकुशश्यामाकतण्डुलान् निःक्षिप्य तत्र साङ्गं देवं यथाविधि गन्धादिभिरभ्यर्च्य कराभ्यां तत्पात्रं पिधायाष्टोत्तरशतं मन्त्रं जप्त्वा पुनर्गन्धादिभिस्तत्रदेवमभ्यर्च्य जानुभ्यामवनीङ्गत्वा आमस्तकं तत्पात्रमुद्धृत्य सावरणे रवौ स्वैक्येन दृष्टिं निधाय मूलं मनसा जपन् सूर्यायार्घं प्रशस्तात्मा दद्यात् । ततः पुष्पाञ्जलिन्दत्वा अष्टोत्तरशतं जपेदिति ॥

लक्षत्रयं जपेन्मन्त्री वीजं विम्बपुटीकृतम् ।
दशांशं कमलैः फुल्लैर्जुहुयान्मधुरोक्षितैः ॥ १० ॥

वियदर्द्धेन्दुललितं तदादिः सर्गसंयुतः ।
अजपारुयो मनुः प्रोक्तो द्व्यक्षरः सुरपादपः ॥ ११ ॥

हसा षड्दीर्घयुक्तेनेत्यनेन ह्रामित्यादयोऽङ्गमन्त्राः प्रतिपादिताः । कलाषड्दीर्घकैरित्येकाक्षरगोपालमन्त्रेषु कलामित्याद्यङ्गमन्त्रवत् । पीठपूजायां सैवसमर्चनापीठे—इतिप्रपञ्चसारवचनाच्छक्तिवत्पीठमन्त्रोऽपि सौरपीठस्यैव पीठाद्यैक्येनैव चात्रप्रकरणेऽस्य मन्त्रस्योपन्यासः । अस्य ब्रह्माऋषिर्देवी.गायत्रीच्छन्द ईश्वरो देवता आयुरारोग्याद्यभीष्टसिद्धौ विनियोगः । ह्रां हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा, ह्रूं शिखायै वषट्, ह्रैं कवचाय हुं, ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्रः अस्त्राय फट्, इत्यङ्गमन्त्राः । रां दीप्ता, रिं सूक्ष्मा, रूं जया, रें भद्रा, रैं

त्रिमूर्ति. रौं विद्या, रौं अमोघा, रं विद्युता, रः सर्वतोमुखी एताः सर्वोजपीठ-शक्तयः । ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाय सौराय योगपीठात्मने नमः इति पीठमन्त्रः ।

उद्यद्भानुस्फुरिततड़िदाकार-

मर्द्धाम्बिकेशं

पाशाभीतीवरदपरशुसन्दधानं

कराब्जैः ।

दिव्याकल्पैर्मणिगणमयैः

शोभितं विम्बमूलम्-

सौम्याग्नेयं वपुरवतु व-

श्चन्द्रचूडं त्रिनेत्रम् ।। १२ ।।

इति ध्यानम् । ऊर्ध्वहस्तयोः पाशाभीतो अधोहस्तयोः वरपरशू ध्यातव्यौ । आवरपूजायां केसरेषु अग्न्यादिकोणेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि । अग्रे नेत्रम्, दिक्ष्वस्त्रम्, पत्रेषु पूर्वादि दिक्षु ऋतुवसुनरवरान्, विदिक्षु ऋ गजागीजाऽब्जाकु ....द्रिजाः, तद्बहिर्लोकपालान् तद्बहिस्तदस्त्राणि च पूजयेदिति । अर्घ्यदान-मष्टाक्षरसूर्य्यमन्त्रवत् ।

भानुलक्षं जपेन्मन्त्रं पायसेन ससर्पिषा ।

दशांशं जुहुयात्सम्यक् तस्यसिद्धो भवेन्मनुः ।। १३ ।।

इति श्रीभवानन्दरायकारिते

श्रीगोविन्दकृते पूजाप्रदोपे

सूर्य्यपरमात्मपूजापरिच्छेदः ।

******

अथाग्निमन्त्राः ।

व्याहृतित्रयमग्निः स्या-

ज्जातवेद इहावह ।

सर्वकर्माणि संभाव्य

साधयाग्निप्रिया ततः ।। १ ।।

ताराद्योऽयं मनुः प्रोक्तः

पञ्चविंशतिवर्णवान् ।

अत्र सम्बोधनान्तत्वे अर्थसङ्गतिकां साकाङ्क्षमानो अग्निः स्यादित्यत्राग्निः स्यादिति पाठं कल्पयति, तत्तत्कल्पनमेव "तारं व्याहृतयश्चाग्निर्जातवेद इहावह" इति प्रपञ्चसारस्य टीकायामग्निरिति प्रथमान्तः तथैव पाठनिर्णयः। "स्वमण्डलान्तं प्रयजेत्पीठं सनवशक्तिकमिति" वचनादाधारशक्त्यादिवह्निमण्डलपर्य्यन्तं पीठं सम्पूज्य पीताश्वेतादिपीठशक्तीः पूजयेत्। अस्य मन्त्रस्य भृगुर्ऋषिर्गायत्रं छन्दोऽग्निर्देवता धनाद्यभीष्टसिद्धौ विनियोगः। ओं भूर्भुवः स्वः हृदयाय नमः, अग्निर्जातवेदशिरसे स्वाहा, इहावह शिखायै वषट्, सर्वकर्माणि कवचाय हुँ, साधय नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट्, इत्यङ्गमन्त्राः। आधारशक्त्या-दिवह्निमण्डलान्तं पीठं सम्पूज्य पीता, श्वेता, अरुणा, कृष्णा, धूम्रा, तीव्रा, स्फुलिङ्गिनी, रुचिरा, ज्वलिनी, पीठशक्तीः पूजयेत्। रं इति पीठमन्त्रः।

अंसासक्तसुवर्णमाल्यमरुण-

स्रक्चन्दनालङ्कृतम्,

ज्वालापुञ्जजटाकलापविलस-

न्मौलिं सुशुक्लांशुकम्।

शक्तिस्वस्तिकदर्भमुष्टिकजप-

स्रक्स्रुक्स्रुवाभीवरान्

दोर्भिर्विभ्रतमञ्चितत्रिनयनं

रक्ताभमग्निं भजे ॥ २ ॥

अत्र वामदक्षिणक्रमेण ऊर्ध्वहस्तयोः शक्तिस्वस्तिके तदधः कुशमुष्टिजपमाले, तदधः स्रुक्स्रुवौ, तदधश्चाभयवरौ ध्यातव्यौ। आवरणपूजायां केसरेष्वग्न्यादिकोणेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि, अग्रे नेत्राणि, दिक्ष्वस्त्रं, पूर्वादिदलेषु जातवेदः, सप्तजिह्व, हव्यवाहन, स्वोदरज, वैश्वानर, कौमारु, तेजो, विश्वमुख, देवमुखान्, शक्तिस्वस्तिककरान्, तद्बहिर्ल्लोकपालान्, तद्बहिस्तदस्त्राणि च पूजयेत् ।

गुरोर्ल्लब्धमनुर्मन्त्री चतुर्दश्यामुपोषितः ।
जपेद्भानुसहस्राणि शुद्धाचारो जितेन्द्रियः ॥ ३ ॥
अमावास्यादिने विप्रान् भोजयेन्मधुरोत्तमैः ।
भक्ष्यैर्भोज्यैर्यथाशक्ति दद्यात्तेभ्योथदक्षिणाम् ॥ ४ ॥
भुत्वा स्वयं समानीय होमद्रव्याणि साधयेत् ।
अपरं दिनमारभ्य होमं कुर्यादतन्त्रितः ॥ ५ ॥
क्रमाद्वटसमिद्व्रीहितिलराजीहविर्घृतैः ।
प्रत्येकमष्टोत्तरशतं जुहुयाद्दिनशः सुधीः ॥ ६ ॥
दशाहमेवं निर्वृत्य विधानेन विधानवित् ।
दत्वा पूर्णाहुतिं सम्यगेकादश्यां द्विजोत्तमान् ॥ ७ ॥
संम्पूज्य तर्पयेद्वित्तैर्यथाविभवमादरात् ।
गुरवे दक्षिणां दद्यादरुणां गां पयस्विनीम् ॥ ८ ॥
वासांसिधनधान्यानि दत्वा संप्रीणयेत्पुनः ।
चतुर्दशी चैत्रकृष्णपक्षीया इति प्रपञ्चसारः ॥ ९ ॥
उच्छिष्ठ पुरुषं ब्रूयाद् हविःपिङ्गलतत्परम् ।
लोहिताक्षपदं देहि मे ददापय ठ द्वयम् ॥ १० ॥
चतुर्विंशत्यक्षरात्मा समृद्धिर्मनुरीरितः ।

अत्राङ्गध्याने विहाय सर्वं पञ्चविंशत्यक्षरवत् । अङ्गमन्त्रास्तु उत्तिष्ठ-पुरुष हृदयाय नमः, हविपिङ्गल शिरसे स्वाहा, लोहिताक्ष शिखायै वषट् देहि मे कवचाय हुँ, ददापय नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट् इति । ध्यानन्तु—

स्वर्णाश्वत्थविनिर्गतं हुतवहं
सिन्दूरपुञ्जप्रभम् ।
ज्वालाभिर्न्निचिताङ्गरोमनिचयं
कान्त्याजगन्मोहनम् ।
अश्वाकारमनर्घ्यरत्नविलसद्
भुषालसत्कन्धरम्-
रत्नै रिन्द्रियनिर्गतैर्वसुमती-
माच्छादयन्तं स्मरेत् ॥ ११ ॥

इति ।

लक्षं मनुं जपेदेनं पयोन्नेन ससर्पिषा ।
दशांशं जुहुयाद् वह्नौ तुरङ्गाग्निमनुस्मरेत् ॥ १२ ॥
वियतो दशमोर्घ्विसर्गयुक्तो
भुवसर्गोभृगुलान्तषोडशाचः
हुतभुक्दयिताध्रुवादिकोऽयं
मनुराजः सुसमृद्धिदः कृशानोः ॥ १३ ॥

वियतो दशमः, पूर्वो मकारः, अर्घीत्यर्घीशः । अस्य प्रपञ्चसारोक्तमन्त्रस्याङ्गमन्त्रध्याने विहाय सर्वं पञ्चविंशत्यक्षरवत् । अङ्गमन्त्रास्तु सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः, स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा, उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट्, धूमव्यापिने कवचाय हुँ, सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट्, धनुर्द्धरास्त्राय फट्, इति । अथवा भू हृदयाय नमः, भुवः शिरसे स्वाहा, स्वः शिखायै वषट्, भूः कवचाय हुँ, भुवः नेत्राभ्यां वौषट्, स्वः अस्त्राय फट् इति प्रपञ्चसारटीकानुरोधादङ्गमन्त्राः । ध्यानन्तु —

शक्तिस्वस्तिकपाशान्सांकुशवरदा-
भयान्दधत्त्रिमुखः ।
मुकुटादिविविधभूषोऽवताच्चिरं
पावकः प्रसन्नो वः ॥ १४ ॥

इति ॥

अत्र दक्षिणवामयोरुर्ध्वहस्तयोः शक्ति—स्वस्तिके, तदधः पाशशाङ्कुशौ, तदधोवरदाभये इति प्रपञ्चसारविवरणम्—परन्तु द्वितीयवामहस्तमारभ्य तदूर्ध्वहस्तान्तं शक्त्यादिसन्निवेशे, अङ्कुशस्यापि दक्षिणहस्ते निवेशनियमो न भज्यते। इति ।

प्रजपेदिमं मनुमृतुलक्षमादराद्दशांशतः ।
प्रजुहुयात्पयोन्धसा ससर्पिषाप्यसितरैः षाष्टिकैः
समर्चयेदथ विधिवद् विभावसुम् ॥ १५ ॥

इति श्रीभवानन्दरायकारिते श्रीगोविन्दकृते
पूजाप्रदीपे
अग्निपूजापरिच्छेदः ।

———

अथ शिवमन्त्राः ॥

हृदयं वपरं साक्षिलान्तोनन्तान्वितो मरुत् ।
पञ्चाक्षरो मनुः प्रोक्तस्ताराद्योऽयं षडक्षरः ॥ १ ॥

अत्र "मन्त्रवर्णादिकान्न्यसेत् पञ्चमूर्त्तीं यथाक्रम" मित्यत्र ओंकारस्य सर्वमूर्त्तिष्वन्वयः, नकारादीनान्तु यथाक्रममेकैकं तथैव संप्रदायात् । पञ्चानां षड्वर्णपूर्वकताया अन्यथोपपादयितुमशक्यत्वाच्च । षण्णामपि सर्वत्रान्वये मन्त्रादिकानित्येव हि ब्रूयान्नतु मन्त्रवर्णादिकानिति । गोलकन्यासे कण्ठे नाभौ द्विपार्श्वयोरित्यत्र कण्ठविहितो न्यासस्तन्मूलदेशे विधेयः । कण्ठमूले तथा लाभाविति प्रपञ्चसारवचनात् । गोलोकन्यासानन्तरं मूर्त्तीर्भालोदरांसेषु हृदये ताः पुनर्न्यसेदित्यत्र मूर्त्तीरितिस्थाने मूर्द्धेति, ता इति स्थाने तानिति पाठो न युक्तः, पुनस्तत्पुरुषाघोरसद्यवामेशसंज्ञकान् । ललाटजठरंध्रच सहृदयेषु क्रमान्न्यसेदिति प्रपञ्चसारेण प्रथमपाठस्यैकवाक्यत्वात् । गोलोकन्यासानन्तरं "ऊर्ध्वाधः क्रमतः कुर्याद् गोलकन्यासमुत्तमम्" इति प्रपञ्चसारे । अस्यार्थष्टीकायां मस्तकात्पदपर्य्यन्तं, पादाभ्यां मूर्द्धानञ्च गोलकन्यासप्रकाशक मूलमन्त्रन्यासं कुर्यादिति । पूजाचोदङ्मुखेनैव कर्त्तव्या,—"उदङ्मुखस्तु कुर्वीत शैवं कर्म सदैव ही"ति वचनात् ।

आवरणपूजायां कर्णिकायां "यजेन्मूर्त्ती" रिति सामान्यतोऽभिधाय ईशमीशानदिग्गतम्" इत्यादिवचनेषु प्रथममीशानस्य ततस्तत्पुरुषादीनां पूजाभिधानात्तथैव क्रमो ग्रहीतव्यः । अस्य मन्त्रद्वयस्य वामदेवऋषिः पङ्क्तिश्छन्दः शिवो देवताऽभीष्टप्राप्त्यर्थे विनियोगः । ओं हृदयाय नमः, नं शिरसे स्वाहा, मः शिखायै वषट्, शिं कवचाय हुं. वां नेत्रत्रयाय वौषट्, यं अस्त्राय फट्, इत्यङ्गमन्त्राः । एभिः करन्यासमात्रं प्रथमतः कृत्वा मूर्त्तिन्यासं कुर्यात् यथा तर्ज्जन्यां ओं नं तत्पुरुषाय नमः, मध्यमायां ओं मः अघोराय नमः, कनिष्ठायां ओं शिं सद्योजाताय नमः, अनामिकायां ओं वां वामदेवाय नमः, अङ्गुष्ठे ओं यं ईशानाय नमः, मुखे ओं नं तत्पुरुषाय नमः, हृदि ओं मः अघोराय नमः.

पादयोः शिं सद्योजाताय नमः, गुह्ये ओँ वामदेवाय नमः, मूर्ध्नि ओँ यं ईशानाय नमः। पूर्वमुखे ओँ नं तत्पुरुषाय नमः, दक्षिणमुखे ओँ मः अघोराय नमः, पश्चिममुखे ओँ शिं सद्योजाताय नमः, उत्तरमुखे ओँ वामदेवाय नमः, मध्यममुखे ओँ यं ईशानाय नमः। ततोऽङ्गन्यासं कृत्वा मन्त्रदशावृत्तिरूपं गोलकन्यासङ्कुर्यात्, स यथा, हृदि ओँ, मुखे न, दक्षिणांसे मः, दक्षिणोरौ वा, वामोरौ म, कण्ठमूले ओँ, नाभौ न, दक्षिणपार्श्वे मः, वामपार्श्वे शि, पृष्ठे वा, हृदि य, शिरसि ओँ, मुखे न, नेत्रयोः मः शि, नासापुटयोः वा य, दक्षिणबाहौ ओँ, तत्सन्धिचतुष्टये नमः, शिवा, तदग्रे य, वामबाहौ ओँ, तत्सन्धिचतुष्टये नमः शिवा, तदग्रे य, दक्षिणपादे ओँ तत्सन्धिचतुष्टये नमः शिवा, तदग्रे य वामपादे ओँ, तत्सन्धिचतुष्टये नमः शि वा, तदग्रे य, शिरसि ओँ, वदने न, हृदि मः, उदरे शि, ऊर्वोः वा, पादद्वये य, हृदि ओं मुखे न। देवतामयस्यात्मनः टङ्कादिकं परिकल्प्य टङ्के मः, मृगे शि, अभये वा, वरे य, वक्त्रे ओँ, अंसयोः न, हृदि मः, पादयोः शिः, ऊर्वोः वा, जठरे य, इति गोलकन्यासः। भाले ओँ नं तत्पुरुषाय नमः, उदरे ओँ मः अघोराय नमः, दक्षिणांसे ओँ शिं सद्योजाताय नमः, वामांसे ओँ वामदेवाय नमः, हृदि ओँ यं ईशानाय नमः, इति न्यसेत्।

नमोऽस्तु स्थाणुभूताय
ज्योतिर्लिङ्गामृतात्मने।
चतुर्मूर्त्तिवपुश्छाया
भासिताङ्गाय शम्भवे ॥ २ ॥

इति मन्त्रेण व्यापकं कुर्यात्। वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, कलविकरणी, बलविकरिणी, बलप्रमथिनी, सर्वभूतदमनी, मनोन्मनीति पीठशक्तयः। ओँ नमो भगवते सकलगुणात्मशक्तियुक्तायानन्ताय योगपीठात्मने नम इत्यासनमन्त्रः।

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभंचारुचन्द्रावतंसम्,
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात्स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानम्,
विश्वाद्यं विश्ववीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥ ३ ॥

इति ध्यानम्। अत्र ऊर्ध्वयोर्दक्षिणवामयोः ततस्तद्धस्तनयोः यद्वाऽधो वामहस्तमारभ्य परश्वादि ध्यातव्यम्। आवरणपूजायां कर्णिकायाम्, ईशकोणे ईशानं, पूर्वादिदिक्षु तत्पुरुषाघोरसद्योजातवामदेवान्, आग्नेयादिकोणचतुष्टयं निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्तीः। केसरेष्वग्न्यादिकोणेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि; अग्रे नेत्राणि, दिक्ष्वस्त्रं, पत्रेषु पूर्वादि अनन्त, सूक्ष्म, शिवोत्तम, एकनेत्र, एकरुद्र, त्रिमूर्त्ति, श्रीकण्ठ, शिखण्डिनः, उत्तरादिदलाग्रेषु उमा, चण्डेश्वर; नन्दि, महाकाल, गणेश, वृषभ, भृङ्गि, रिटिस्कन्दान्। तद्बहिरिन्द्रादीन्, तद्बहिर्वज्रादींश्च पूजयेत्। अथावरणध्यानं 'ईशमीशानदिग्गतं' 'शुद्धस्फटिकसंकाशं दिक्षु तत्पुरुषादिकान्'। "पीताञ्जनश्वेतरक्तान् प्रधानसदृशायुधान्। चतुर्वक्त्रसमायुक्तान् यथावत्संप्रपूजयेत् ॥" अनन्तादीनां विशेषणानि, 'रक्तपीतासितारक्तकृष्णरक्ताञ्जनासितान्। किरीटोर्मितबालेन्दून् पद्मस्थान् भूषणान्वितान्। त्रिनेत्रान् शूलवज्राम्रचापहस्तान्मनोरमान्। अस्त्र वाणः, तदादीनां ध्यानम्—

एतान्पद्मासनस्थितान्।
स्वर्णतोयारुणश्याममुक्तेन्दुसितपाटलान्।
तत्त्वलक्षं जपेन्मन्त्रं दीक्षितः शैववर्त्मना।
तावत्संख्यसहस्राणि जुहुयात्पायसैः शुभैः ॥ ४ ॥

अक्षरलक्षचतुष्कमिति प्रपञ्चसारात् ॥ इति ॥
षडक्षरः शक्तिरुद्धः कथितोऽष्टाक्षरो मनुः ॥ ५ ॥

अस्य वामदेवऋषिः पङ्क्तिश्छन्द उमापतिर्देवताऽभीष्टसिद्धौ विनियोगः। ओं हृदयाय नमः, नं शिरसे स्वाहा, मंः शिखायै वषट्, शिं कवचाय हुँ, वां नेत्रत्रयाय वौषट्, यं अस्त्राय फट् इत्यङ्गमन्त्राः। वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, कलविकरणी, बलविकरणी, बलप्रमथिनी, सर्वभूतदमनी मनोन्मन्यः पीठशक्तयः। ओं नमो भगवते सकलगुणात्मशक्तियुक्तायानन्ताय योगपीठात्मने नमः इति पीठमन्त्रः।

बन्धूकाभं त्रिनेत्रं शशिशकलधरं स्मेरवक्त्रं वहन्तम्,

हस्तैः शूलं कपालं वरदाभयदं चारुहासं भजामि ।

वामोरूस्तम्भगाथाकरतलविलसच्चारुरक्तोत्पलाया,—

हस्तेनाश्लिष्टदेहं मणिमयविलसद्भूषणायाः प्रियायाः ॥ ६ ॥

इति ध्यानम् । अत्र शूलकपाले ऊर्ध्वयोर्दक्षिणवामहस्तयोः वरदाभयदे तदधोहस्तयो र्ध्यातव्ये । आवरणपूजायां केसरेष्वग्न्यादिकोणेषु हृदयशिरः-शिखाकवचानि, अग्रे नेत्राणि, दिक्ष्वस्त्रं, मध्ये हृल्लेखां, अङ्गावृतेर्बहिः पूर्वतः गगनां, दक्षिणतः रक्तां, उत्तरतः करालिकां, पश्चिमतः महोच्छूष्मां, पूर्वादियत्रेषु वृषभ, क्षेत्रपाल, चण्डेश, दुर्गा, षण्मुख, नन्दि, विघ्नेशसेनापतीन् । पत्राग्रेषु ब्राह्मी, माहेश्वरी कौमारी, वैष्णवी, वाराहीन्द्राणी, चामुण्डा, महालक्ष्मीः, तद्बहिर्लोकपालान्, तद्बहिस्तदस्त्राणि, च पूजयेदिति । अथावरणध्यानम्—

हृल्लेखाद्याः क्रमाद् ध्येयाः पञ्चभूतसमप्रभाः ।

पाशाङ्कुशवराभीतिधारिण्यो मितभूषणाः ॥ ७ ॥

हिमालयाभं वृषभं तीक्ष्णशृङ्गं त्रिलोचनम् ।

सर्वाभरणसन्दीप्तं साक्षाच्छन्दःस्वरूपिणम् ॥ ८ ॥

कपालशूलविलसत्करं कालघनं प्रभम् ।

क्षेत्रपालं त्रिनयनं दिगम्बरमथार्चयेत् ॥ ९ ॥

शूलटङ्कारवलयकमण्डलुलसत्करम्

रक्ताकारं त्रिनयनं चण्डेशमथ पूजयेत् ॥ १० ॥

चक्रशंखाभयाभीष्टकरां मरकतप्रभाम्

दुर्गां प्रपूजयेत्सौम्यां त्रिनेत्रां चारुभूषणाम् ॥ ११ ॥

कल्पशाखारत्नघटान्दधानं द्वादशेक्षणम् ।

कालार्काभं शिशुं कान्तं षण्मुखं पूजयेत्ततः ॥ १२ ॥

नन्दिनं प्रयजेत्सौम्यं रत्नभूषणमण्डितम्

परश्वेणवराभीतिधारिणं श्यामविग्रहम् ।

पाशाङ्कुशवराभीष्टधारिणं कुङ्कुमप्रभम् ॥ १३ ॥

विघ्ननायकमभ्यर्चेच्चन्द्रार्धकृतशेखरम् ।

श्यामं रक्तोत्पलकरं वामाङ्कन्यस्ततत्करम् ।

द्विनेत्रं रक्तवस्त्राढ्यं सेनापतिमथार्चयेत् ॥ १४ ॥

मातृणां ध्यानं मातृकासरस्वतीमन्त्रपूजायामनुसन्धेयम् ।

मनुलक्षं जपेन्मन्त्रं तत्सहस्रं यथाविधि

जुहुयान्मधुरासिक्तैरारग्वधसमिद्वरैः ॥ १५ ॥

आरग्वधः आरोग इति प्रसिद्धः ।

सान्तः सद्यान्तसंयुक्तो विन्दुभूषितमस्तकः ।

प्रासादाख्यो मनुः प्रोक्तो भजतां सर्वसिद्धिदः ॥ १६ ॥

अत्र ईशानाद्यष्टत्रिंशत् कलान्यासे—

ततः प्रविन्यसेद्विद्वानष्टत्रिंशत्कलास्तनौ ।

ईशानाद्या ऋचः सम्यगङ्गुलीषु यथाक्रमम् ॥ १७ ॥

इत्यादिवचनप्रतिपादिता ऋगादिन्यासास्तदङ्गान्येव—

"वक्ष्यामि शैवागमसारमष्टा-

त्रिंशत्कलान्यासविधिं यथाविद्" ॥ १८ ॥

इत्युपक्रम्य तेषां प्रपञ्चसारेऽभिधानात् । अतः शारदातिलके—

"ततः प्रविन्यसेद्विद्वानष्टात्रिंशत्कलास्तनौ" वित्युक्त्वा कथमित्याका-ङ्क्षायाम् "ईशानाद्या ऋचः सम्यगङ्गुलीषु यथाक्रम" मित्यादिना तत्पूर्वं कृत्यानृगादिन्यासानभिधाय पूर्वदक्षिणपाश्चात्येत्यादिना कलान्यास उक्त इति ऋगादिन्यासानन्तरमेव कलान्यासो न तु प्रथममिति । तारपञ्चकमुच्चार्य

सर्वज्ञाय हृदयाय नम इत्यादि षडङ्गानि ऋग्पञ्चकस्येति प्रपञ्चसारे उक्तम्। तथा च तन्न्यासपूर्वमेव तदङ्गन्यासो युक्त इति प्रपञ्चसारे तथैवाभिहितः। शारदायान्तु ऋचां न्यासमभिधायाङ्गन्यास उक्तः। तत्र प्रमाणमनुसन्धेयम्।

... ... ईशानादिकलान्यासश्च न्यस्तत्तत्तन्मन्त्राभिरङ्गुलीभिः कर्तव्यः। विन्यसेदङ्गुलीभिरिति प्रपञ्चसारवचनात्। तत्रापि समुष्टिरङ्गुष्ठा इतरास्तु साङ्गुष्ठा इति तट्टीका, ऋग्पञ्चकन्यासे च ईशानः तत्पुरुषाघोरोवामदेवः सद्योजात इतिक्रमः। कलान्यासे तथैव क्रमाभिधानात्। अङ्गमन्त्रं 'तारपञ्चकमुच्चार्य सर्वज्ञाय हृदीरितमि'त्यत्र तारपञ्चकं पञ्च ओँकारा इत्येके। ऐँ क्लीँ ब्लूँ स्त्रीँ सः इत्यमी त्रिपुरापटलोक्ताः पञ्चप्रणवाख्या मन्त्रा इत्यपरे। ऐँ ह्रीँ श्रीँ ह्लेँ ह्सौः पञ्चबीजानीति प्रपञ्चसारटीका। शिरोमन्त्रे तृप्ताय इति शारदायां तृप्ताय इति प्रपञ्चसारे उद्धारः। नेत्रमन्त्रे "श्रौँ वौँ ह्रौँ इति सम्भाष्य परतो लुप्तशक्तये" इत्यत्रालुप्तत्यकारप्रश्लेषः प्रपञ्चसारटीकाद्यनुरोधात्, युक्तार्थत्वाच्च। वामदेवकलान्यासे,

गुह्यमुष्कोरुयुग्मेषु—

जानुजंघायुगे स्फिचोः।

"कट्यां पार्श्वद्वये वामकलान्यसेत्त्रयोदश" इति वाक्ये "मुष्कोऽण्डकोषो वृषण इत्यमरसिंहाभिधानात्" सचैक एव एतदभिप्रायेणैव गुह्याण्डयोश्चेति प्रपञ्चसारवचने द्वित्वनिर्देशः। ततो नातिभवेपदमित्यत्रानातिभवे इत्यकार प्रश्लेषः, वेदे तथैव पदनिर्णयात्। शैवागमस्वरसाच्च। तदुक्तं शैवागमे —

ईशानं विभजेन्नागवसुविश्वशरार्णवैः।
ततस्तत्पुरुषन्नागनागसागरसागरैः।
अघोरं वेदशरदृग्बाणाग्नीषु शरेषुभिः।
वामं हयेनाग्निशरैर्दुस्वर्गैर्दिक् शराध्वभिः।
सद्योजातन्तुवसुदिक्कराग्नीषु ·······दश्रमैः ॥ १९ ॥

अत्र च अघोरमन्त्रे सर्वत इति व्याधिकला सर्वेभ्यश्शर्वेभ्य इति मृत्युकलाभवतीति विशेषः। सद्योजातमन्त्रे वसुदिगिति सद्योजाताय वै नमोनम इति तंत्ति-

रीयशाखायाम्, नमोद्वयपाठानुरुद्धं शाखाविशेषे एकस्यैव नमः पदस्य दर्शनात्ततारा शारदा ... — ... ऽभवेऽनातिभवे इत्युभयत्राकारश्लेषादगीष्वित्यविशेषः। वामदेवमन्त्रे अघोरमन्त्रे ज्येष्ठाय नमः इत्यनन्तरं श्रेष्ठाय नमः इति तैत्तिरीय-शाखायां दर्शनादत्र च तथा विभागाभावेन शाखान्तरीयत्वमेव। वामं हृयेनेत्यादि हृयेन सप्तभिः अग्निशरैः पञ्चकत्रयेण, त्रिघ्घर्गैः प्रथमं द्वयं ततः सप्त एवं वारत्रय-मित्यर्थः। ध्याने "मुक्तापीते"त्यादि वर्णा ऊर्ध्वपूर्वादिमुखेषु क्रमेण ध्यातव्याः। ईशानतत्पुरुषादीनां तत्तद्वर्णतया तत्तन्मुखेषु तत्तद्वर्णतौचित्यात्। उपरितनं हस्तमारभ्य दक्षिणहस्तपञ्चके शूलादिपञ्चकं, उपरितनमेवारभ्य वामपञ्चके नागेन्द्रादि पञ्चकम्। न च ग्रन्थकारस्य नेयं शैली, स हि प्रादक्षिण्येन वा दक्षिण-वामक्रमेण वाऽस्त्राणि प्रतिपादयतीति वाच्यम्, "शूलाहीटङ्कघन्टाशृणिकुलिश-पाशाग्न्यभीतीर्दधानम्" इति प्रपञ्चसारेणान्यथा विरोधात्। तत्र दक्षिणवाम-क्रमेण तदभिधानात्। आवरणपूजायामुमादिपूजनमुत्तरादिक्रमेण पञ्चाक्षरे तथैव तत्पूजाकथनात्। प्रपञ्चसारे ता उक्त्वा संपूज्याश्चोत्तरादित इत्य-भिधानाच्च।

अस्य मन्त्रस्य वामदेव ऋषिः पङ्क्तिश्छन्दः शिवो देवता धनाद्यभीष्टसिद्धौ विनियोगः। ह्रां हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा, ह्रुं शिखायै वषट्, ह्रैं कवचाय हुं, ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्रः अस्त्राय फट् इत्यङ्गमन्त्राः।

अथ मूर्त्यादिन्यासः। अङ्गुष्ठे ह्रों ईशानाय नमः, तर्जन्यां हें तत्पुरुषाय नमः, मध्यमायां हुं अघोराय नमः, अनामिकायां हिं वामदेवाय नमः, कनिष्ठायां हं सद्योजाताय नमः इति न्यसेत्।

ततः शिरसि अङ्गुष्ठेन ह्रों ईशानाय नमः मुखे तर्जन्यां हें तत्पुरुषाय नमः, मध्यमायां हुं—अघोराय नमः, अनामिकायां हिं वामदेवाय नमः, कनिष्ठायां हं सद्योजाताय नमः इति न्यसेत्।

ततः शिरसि अङ्गुष्ठेन ह्रों ईशानाय नमः, मुखे तर्जन्यां हें तत्पुरुषाय नमः गुह्येऽनामिकया हिं वामदेवाय नमः, पादयोः कनिष्ठया हं सद्योजाताय नमः इति त्रिन्यस्यैवमेवेशानादीन् पञ्च ऊर्ध्वं प्रागदक्षिणोत्तरपश्चिमेषु मुखेषु विन्यसेत्।

ततोऽष्टत्रिंशत्कलान्यासः। ऐं ह्रीं श्रीं हें हसौः सर्वज्ञाय हृदयाय नमः अमृतेतेजोमालिनि तृप्ताय ब्रह्मशिरसे शिरसे स्वाहा, ज्वलित शिखिशिखाया-

नादिबोधाय शिखायै वषट्, वज्रिणे वज्रहस्ताय स्वतन्त्राय कवचाय हुँ, सौं वौं ह्रौं अलुप्रशक्तये नेत्रत्रयाय वौषट्, क्लीं पशु हुं फट् अनन्तशक्तये अस्त्राय फट् इति षडङ्गमन्त्रान् हृदयादिषु विन्यसेत्, ततः अङ्गुष्ठे ईशानः सर्वविद्याना-मीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्म शिरो मे अस्तु सदाशिवोम्, तर्जन्यां तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नोरुद्रः प्रचोदयात् । मध्यमायां अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरतरेभ्यः सर्वतः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रूद्ररूपेभ्यः । अनामिकायां वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमो रूद्राय नमः कालाय नमः कलविकर-णाय नमो बलविकरणाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्म-नाय नमः । कनिष्ठायां सद्योजातं प्रपद्यामि सद्यो जाताय वै नमः, भवे भवेनाति-भवे भवस्वमां भवोद्भवाय नमः । आसामृचां ऋष्यादिकं विस्तरभयान्नकथित-मितिऋक्पञ्चकं विन्यस्य पुनर्यथाक्रमं शिरोमुखहृदयगुह्यपादेष विन्यस्य ऊर्ध्व-प्राच्यदक्षिणोदीच्यपश्चिमेषु मुखेषु च विन्यसेत् । ततः पूर्ववक्त्रे ओं ईशानः सर्वविद्यानां शशिन्यै नमः । ओं दक्षिणवक्त्रे ईश्वरः सर्वभूतामङ्गदायै नमः । पश्चिममुखे ओं ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपति–ब्रह्मेष्टादेवतायै नमः । उत्तरवक्त्रे ओं शिवो मेऽस्तु मरीच्यै नमः । मध्यममुखे ओं सदाशिवों अंशुमालिन्यै नमः । एताः समुष्टिना अङ्गुष्ठेन न्यसनीयाः । अथ तर्जन्या साङ्गुष्ठया पूर्ववक्त्रे ओं तत्पुरुषाय विद्महे शान्त्यै नमः, पश्चिममुखे ओं महादेवाय धीमहि विद्यायै नमः । दक्षिणवक्त्रे ओं तन्नो रुद्रः प्रतिष्ठायै नमः । उत्तरमुखे ओं प्रचोदयात् निवृत्यै नमः । अथ मध्यमया साङ्गुष्ठया हृदि ओं अघोरेभ्यस्तमायै नमः । ग्रीवायां ओं अथ घोरेभ्यो मोहायै नमः । दक्षिणांसे ओं घोरक्षयायै नमः । वामांसे ओं घोरतरेभ्यो निद्रायै नमः । नाभौ सर्वतः सर्वव्याधये नमः । उदरे ओं सर्वेभ्यो मृत्यवे नमः । पृष्ठे ओं नमस्ते अस्तु क्षुधायै नमः । वक्षसि ओं रुद्ररूपेभ्यस्तृषायै नमः । अथ साङ्गुष्ठानामिकया गुह्ये ओं वाम-देवाय नमः रजायै नमः । अण्डकोशे ओं ज्येष्ठाय नमो रक्षायै नमः । दक्षिणोरौ ओं रुद्राय नमो रत्यै नमः । वामोरौ ओं कालाय नमः पालिन्यै नमः । दक्षिणजानौ ओं कलकामायै नमः । वामजानौ ओं विकरणाय नमः सँयमन्यै नमः । दक्षिणजंघायाँ ओं बलक्रियायै नमः । वामजंघायाँ ओं विकरणाय नमो वृद्धयै नमः, दक्षिणस्फिचि ओं बलस्थिरायै नमः । वामस्फिचि ओं

प्रमथनाय नमो रात्र्यै नमः । कट्यां ओं सर्वभूतदमनाय नमो द्राविण्यै नमः । दक्षिणपार्श्वे ओं मनमोहिन्यै नमः । वामपार्श्वे उन्मनाय नमो ज्वरायै नमः । अथ साङ्गुष्ठकनिष्ठिकया दक्षिणपादे, ओं सद्योजातं प्रपद्यामि सिद्धये नमः । वामपादे ओं सद्योजाताय वै नमो वृद्धये नमः । दक्षिणहस्ततले ओं भवेद्युत्यैनमः । वामहस्ततले ओं जभवे लक्ष्म्यै नमः । नासायां ओं अनातिभवे मेधायै नमः । शिरसि ओं भवस्बमां प्रज्ञायै नमः, दक्षिणवाहौ ओं भवप्रमायै नमः । वामवाहौ ओं उद्भवाय नमः सुधायै नमः ।

अष्टपत्रगुणवृत्तराशिभि-
र्व्वीथिकल्पतरुभिः समावृतम् ।
मण्डलं प्रतिविधाय शूलिनः
पीठमन्त्रनवशक्तिभिर्यजेत् ॥ २० ॥

प्रथमाष्टदलं ततो वृत्तत्रयं ततो राशिचक्रं ततो वीथी, ततः कल्पलतेति । वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, कलविकरणी, बलप्रमथिनी, सर्वभूतदमनी मनोन्मन्यः पीठशक्तयः । ओं नमो भगवते सकलगुणात्मशक्तियुक्तायानन्ताय योगपीठात्मने नमः । इति पीठमन्त्रः ।

मुक्तापीतपयोदमौक्तिकजवा-
वर्णैर्मुखैः पञ्चभि,
स्त्र्यक्षैरञ्चितमीशमिन्दुमुकुटं
पूर्णेन्दुकोटिप्रभम् ।
शूलंटङ्ककृपाणवज्रदहना-
न्नागेन्द्रघन्टाङ्कुशान्
पाशंभीतिहरं दधानममितः
कल्पोज्ज्वलम्भावयेदिति ॥ २१ ॥

ध्यानम् ।

मुक्तापीतेत्यादि ऊर्ध्वादिक्रमेण उपरितनं हस्तमारभ्य हस्तपञ्चके शूलादिपञ्चकं वामपञ्चके उपरिहस्तमेवारभ्य नागेन्द्रादिपञ्चकं ध्येयम् । आवरण-

पूजायां कर्णिकायां ऐशान्यां ईशानं, दक्षिणस्यां अघोरं, उत्तरस्यां वामदेवं, पश्चिमायां दिशि सद्योजातम्, एते ईशानाद्याः शिवेश्वर रुद्रविष्णुब्रह्मरूपतया क्रमेण ध्यातव्याः। अग्न्यादिकोणकेसरेषु निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्तीः कलाः। पूर्वादिपत्रेषु अनन्त, सूक्ष्म, शिवोत्तमैकनेत्रैकरुद्रत्रिमूर्ति श्रीकण्ठशिखण्डिनः, उत्तरादिपत्राग्रेषु उमाचण्डेश्वरनन्दिमहाकालगणेशवृषभ भृङ्गिरिटिस्कन्दान्, तद्बहिरिन्द्रादीन्, तद्बहिस्तदस्त्राणि च पूजयेत्।

ईशानादीनां ध्यानम्—

शक्तिं डमरुकाभीतिवरान्संबिभ्रतङ्करैः।
ईशानं त्रीक्षणं शुभ्रमैशान्यान्दिशिपूजयेत्॥ २२॥

परश्वेणवराभीतिर्दधानं विद्युदुज्ज्वलम्।
चतुर्मुखं तत्पुरुषं त्रिनेत्रं पूर्वतोऽर्चयेत्॥ २३॥

अक्षस्रजं वेदपाशौ शृणिडमरुकन्ततः।
खट्वाङ्गं निशितं शूलं कपालंबिभ्रतङ्करैः॥ २४॥

अञ्जनाभं चतुर्वक्त्रं भीमदंष्ट्रं भयावहम्।
अघोरं त्रीक्षणं याम्ये पूजयेन्मनुवित्तमः॥ २५॥

कुङ्कुमाभं चतुर्वक्त्रं वामदेवं त्रिलोचनम्।
वराभयाक्षवलयकुठारान्दधतङ्करैः॥ २६॥

विलासिनं स्मेरवक्त्रं सौम्ये सम्यक् समर्चयेत्।
कर्पूरेन्दुनिभं सौम्यं सद्योजातं त्रिलोचनम्॥ २७॥

हरिणाक्षगुणाभीतिवरहस्तं चतुर्मुखम्।
बालेन्दुशेखरोल्लसमुकुटं पश्चिमे यजेत॥ २८॥

वेदो मृग इति कश्चित् वेदपुस्तकमित्यन्ये। अनन्तादीनामुमादीनाञ्च ध्यानं पञ्चाक्षरशिवमन्त्रपूजापरिच्छेदे द्रष्टव्यम्॥

एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं पञ्चलक्षं मधुप्लुतैः ।
प्रसूनैः करवीरोत्थैर्जुहुयात्तद्दशांशकम् ॥ २९ ॥
तारो माया वियद्बिन्दुमनुस्वरसमन्वितम् ।
पञ्चाक्षरसमायुक्तो वसुवर्णो मनुर्मतः ॥ ३० ॥

बिन्दुमनुस्वरसमन्वितं वियत् हौं ॥ अस्य मन्त्रस्य ध्यानावरणपूजातिरिक्तं सर्वं हृदयं वपरामितीत्यादि पञ्चाक्षरवत् । ध्यानन्तु—

वन्दे सिन्दूरवर्णमणिमुकुटलसच्चारुचन्द्रावतंसम् ।
भालोद्यन्नेत्रमीशं स्मितमुखकमलं दिव्यभूषाङ्गरागम् ॥ ३१ ॥
वामोरून्यस्तपाणेररुणकुवलयंसन्दधत्याः प्रियायाः,
वृत्तोत्तुङ्गस्तनाग्रे निहितकरतलं वेदटङ्केष्टहस्तम् ॥ ३२ ॥

इति ॥

अधोवाम हस्तमारभ्य वेदादित्रयं ऊर्ध्ववामहस्तस्तु प्रियास्तनाग्रे निहितो ध्यातव्यः। आवरणपूजायां केसरेष्वग्न्यादिकोणादिषु हृदयशिरःशिखाकवचानि, अग्रे नेत्राणि, दिक्ष्वस्त्रं, पत्रेष्वनन्तादीन्, उत्तरादिदलाग्रेषु उमादीन् ततः लोकेशान्, ततस्तदस्त्राणि पूजयेत् ।

अष्टलक्षं जपेदेनं मनुम्मनुविदाम्वरः
ततः सहस्रं प्रजुहुयात्पायसान्नैर्घृतप्लुतैः ॥ ३३ ॥
तारं स्थिरासकर्णेन्दुर्भृगुःसर्गविभूषितः ।
त्र्यक्षरात्मो निगदितो मन्त्रोमृत्युञ्जयात्मकः ॥ ३४ ॥

सकर्णेन्द्रः स्थिराजूं इति बीजम् । अस्य मन्त्रस्य कहोलऋषिर्देवीगायत्रीच्छन्दो मृत्युञ्जयो देवता आयुरारोग्याद्यभोष्टसिद्धौ विनियोगः । सां हृदयाय नमः, सीं शिरसे स्वाहा, सूं शिखायै वषट, सैं कवचाय हुं, सौं नेत्रत्रयाय वौषट्, सः अस्त्रायफट् इत्यङ्गमन्त्राः । वामा ज्येष्ठा. रौद्री, काली, कलविकरणी, बलविकरणी, बलप्रमथिनी, सर्वभूतदमनी, मनोन्मनीति पीठशक्तयः । ओं नमो भगवते सकलगुणात्मशक्तियुक्तायानन्ताय योगपीठात्मने नमः इतिपीठमन्त्रः ।

चन्द्रार्काग्निविलोचनं स्मितमुखं—
पद्मद्वयान्तःस्थितम् ,
मुद्रापाशमृगाक्षसूत्रविलसत्—
पाणिं हिमांशुप्रभम् ।
कोटीरेन्दुगलत्सुधाप्लुततनुं
हारादिभूषोज्ज्वलम् ,
कान्त्या विश्वविमोहनं पशुपतिं—
मृत्युञ्जयं भावयेत् ॥ ३५ ॥

इतिध्यानम् ।

अत्र मुद्राया दक्षिणपाणिनिष्ठ्यादयत्वात्तस्याः दक्षिणपाणावेव न्यासः । पाश-जपमालयोर्दक्षिणहस्तधार्यत्वेऽपि जपमालाया दक्षिणहस्ते न्यासः । न च पाशस्य वामहस्तधार्यत्वे पूर्वग्रन्थविरोधः, सतिसम्भवे पाशस्य वामहस्तधार्यत्वापरित्यागित्वात् इत्यस्य तदर्थत्वात्, नन्वेवं जपमालायां तस्थास्तत्र नियम एव ऊर्ध्वदक्षिणहस्तमारभ्य तदधोहस्तान्तं मुद्रादिचतुष्टयं ध्येयम् । आवरणपूजायां आग्नेयादिकोणकेसरेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि, अग्रे नेत्राणि, दिक्केसरेष्वस्त्रं, तद्बहिरिन्द्रादीन्, तद्बहिर्वज्रादीन् पूजयेदिति ।

गुणलक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं विशालधीः
जुहुयादमृताखण्डैः शुद्धदुग्धाज्यलोहितैः ॥ ३६ ॥
दक्षिणामूर्त्तये पूर्वं तुभ्यं पदमनन्तरम् ।
वटमूलपदस्यान्ते पदं पश्चान्निवासिने ॥ ३७ ॥
ध्यानैकनिरताङ्गाय पश्चाद्ब्रूयान्नमः पदम्
रुद्राय शम्भवेतारशक्तिरुद्धोऽयमीरितः ॥ ३८ ॥
षट्त्रिंशदक्षरो मन्त्रः सर्वकामफलप्रदः ।

अत्र ध्याने मुद्राटङ्कत्यादिभिर्विलसत्पाणिमित्यर्थः । तत्र मुद्रादित्रयस्याधेयतया जानुनस्त्वाधारतया विलासहेतुत्वमिति । आवरणपूजा च "प्राक्प्रोक्त-

विधानेन सम्यक् सम्पूज्य साधुकलशाद्यैः पञ्चा ... ... ब्रह्मप्रदिष्टपूजाचेतिप्रपञ्चसारवचनात् । पञ्चाक्षरतुल्योऽत्र पञ्चब्रह्म ईशानादिपञ्चकम् । अस्य शुकऋषिरनुष्टुपछन्दो दक्षिणामूर्त्तिः शिवो देवता सर्वार्थसिद्धौ विनियोगः । ओं ह्रीं दक्षिणामूर्त्तये ह्रां हृदयाय नमः । ओं ह्रीं तुभ्यं ह्रीं शिरसे स्वाहा, ओं ह्रीं वटमूलनिवासिने ह्रूं शिखायै वषट्, ओं ह्रीं ध्यानैकनिरताय ह्रैं कवचाय हुँ; ओं ह्रीं नमो रुद्राय ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ओं ह्रीं शम्भवे ह्रः अस्त्राय फट् इत्यङ्गमन्त्राः ।

अथ मन्त्रवर्णन्यासः ॥ शिरसि ओं भाले ह्रीं, नेत्रयोः दक्षि, कर्णयोः णा मू, गण्डयोः र्त्तये, नासापुटयोः तुभ्यं, मुखे व, दक्षिणबाहुसन्धिचतुष्टये ट मूल नि, वामबाहुसन्धिचतुष्टये वासिने ध्या, गले नै, स्तनद्वये क, नि,–हृदि र, नाभौ ता, कट्यां ङ्गा, लिङ्गे य, दक्षिणपादसन्धिचतुष्के नमो रुद्रा, वामपादसन्धिचतुष्के य, शम्भवे, ओं ह्रीं इति शिष्टाभ्यां व्यापकं कुर्यात् । वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, कलविकरणी, बलविकरणी, बलप्रमथिनी, सर्वभूतदमनी, मनोन्मन्यः पीठ शक्तयः । ओं भगवते सकलगुणात्मशक्तियुक्तायानन्ताय योगपीठात्मने नमः, इति पीठमन्त्रः । अथ ध्यानम्—

विन्ध्याचलतटे रम्ये सिद्धकिन्नरसेविते ।
विविधद्रुमशाखाभिः सर्वतोवारितात···· ॥ ३९ ॥

सुपुष्पितैर्लताजालैराश्लिष्टकुसुमद्रुमैः ।
शिलाविवरनिर्गच्छन्निर्झरानिलशीतले ॥ ४० ॥

गायद्भृङ्गाङ्गनासंघेनृत्यद्वर्हिकदम्बके ।
कूजत्कोकिलसंघेन मुखरीकृतदिङ्मुखे ॥ ४१ ॥

परस्परविनिर्मुक्तमात्सर्यमृगसेविते ।
आद्यैः शुकाद्यैर्मुनिभिरजस्रं समुपस्थिते ॥ ४२ ॥

पुरन्दरमुखैर्देवैः सेवायातैर्विलोकितम् ।
वटवृक्षं महोच्छ्रायं पद्मरागफलोज्ज्वलम् ॥ ४३ ॥

गारुत्मतमयैः पत्रैर्निविडैरुपशोभितम् ।
नवरत्नमयाकल्पैर्लम्बमानैरलङ्कृतम् ॥ ४४ ॥
जलजैः स्थलजैः पुष्पैरामोदिभिरलङ्कृतम् ।
शृण्वद्भिर्वेदशास्त्राणि शुकवृन्दैर्निषेवितम् ॥ ४५ ॥
संसारतापविच्छेदकुशलच्छायमद्भुतम् ।
विचिन्त्य तस्य मूलस्थे रत्नसिंहासने शुभे ॥ ४६ ॥
आसीनमतिताकल्पं शरच्चन्द्रनिभाननम् ।
स्तूयमानं मुनिगणैर्दिव्यज्ञानाभिलाषिभिः ॥ ४७ ॥
संस्मरेज्जगतामाद्यं दक्षिणामूर्त्तिमव्ययम् ।

कैलासाद्रिनिभं शशाङ्कशकल–
स्फूर्जज्जटामण्डितम् ।
नासालोकनतत्परं त्रिनयनं
वीरासनाध्यासितम् ॥ ४८ ॥
मुद्राटङ्ककुरङ्गजानुविलसत्–
पाणिं प्रसन्नाननम् ।
कक्षाबद्धभुजङ्गमं मुनिवृतं
वन्दे महेशं परम् ॥ ४९ ॥

इति ।

... ... मारभ्य मुद्रादि चतुष्टयं ध्यातव्यम् । आवरणपूजायां ईशानकोणे ईशानं, पूर्वादिदिक्षु तत्पुरुषादीन्, आग्नेयादिकोणचतुष्टये निवृत्याद्याः केसरेष्वङ्गानि, पत्रेष्वनन्तादीन्, उत्तरादिदलाग्रेषु उमादीन्, तद्बहिरिन्द्रादीन्, तद्बहिर्वज्रादींश्च पूजयेत् । एषां ध्यानं पञ्चाक्षरे द्रष्टव्यम् ।

अयुतद्वयसंयुक्तं गुणलक्षं जपेन्मनुम् ।
तद्दशांशं तिलैः शुद्धैर्जुहुयात्क्षीरसंप्लुतैः ॥ ५० ॥

प्रणवो हृदयं पश्चात्ततो भगवते पदम् ।
ङे युतं दक्षिणामूर्तिं मह्यं मेधामुदीरयेत् ॥ ५१ ॥

अस्य चतुर्मुखऋषिर्गायत्रीछन्दो दक्षिणामूर्त्तिर्देवता मेधाद्यभीष्टसिद्धौ विनियोगः। ओं आं ओं हृदयाय नमः। ओं इं ओं शिरसे स्वाहा, ओं ऊं ओं शिखायै वषट्, ओं ऐं ओं कवचाय हुँ, ओं औं ओं नेत्रत्रयाय वौषट्, ओं अः ओं अस्त्राय फट् इत्यङ्गमन्त्राः। वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, कलकिरणी, वलविकरणी, वलप्रमथिनी, सर्वभूतदमनी, मनोन्मन्यः पीठशक्तयः। ओं नमो भगवते सकलगुणात्मशक्तियुक्तायानन्ताय योगपीठात्मने नमः। इति पीठमन्त्रः। ध्यानम्—

हेमाचलतटे रम्ये इत्यादि दक्षिणामूर्त्तिमव्ययमित्यन्तं षट्त्रिंशदक्षरस्थं तत्र द्रष्टव्यम् ।

स्फटिकरजतवर्णं मौक्तिकीमक्षमाला-
ममृतकलशविद्याज्ञानमुद्राः कराग्रैः ।
दधतमुरगकक्षं चन्द्रचूडं त्रिनेत्रम्
विधृतविविधभूषं दक्षिणामूर्त्तिमीडे ॥ ५२ ॥

इति ।

अत्र ऊर्ध्वं दक्षिणहस्तमारभ्य तदधोहस्तान्तं मालादीनि ध्यातव्यानि, आवरणपूजायां केसरेष्वग्न्यादिकोणेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि, अग्रे नेत्राणि, दिक्ष्वस्त्रं, पत्रेषु पुस्तकं वाचयन्तीं स्मितमुखीं सरस्वतीं, ब्रह्मसनकसनन्दनसनत्कुमारशुकव्यासगणेश्वरांश्च, तद्बहिः पूर्वादिदिक्चतुष्टये सिद्धगन्धर्वयोगीन्द्रविद्याधरान्, तद्बहिरिन्द्रादीन्, तद्बहिस्तदस्त्राणि च पूजयेदिति ।

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
जुहुयात् सघृतैः पद्मैर्दशांशं संस्कृतेऽनले ॥ ५३ ॥
अग्निसम्वर्त्तकादित्यरानिलौषष्ठमिन्दुमत् ।
चिन्तामणिरितिख्यातं बीजं सर्वसमृद्धिदम् ॥ ५४ ॥

र क्ष म र य औं ऊ ऐते विन्दुमन्त एकं बीजम्। अस्य काश्यपऋषिरनुष्टुप् च्छन्दोऽर्धनारीश्वरो देवता धनाद्यभीष्टसिद्धौ विनियोगः। रँ हृदयाय नमः, कं शिरसे स्वाहा,, षं शिखायै वषट्, मं कवचाय हुँ रं नेत्रत्रयाय वौषट्, यं अस्त्राय फट्, इत्यङ्गमन्त्राः। वामा, ज्येष्ठा, रौद्री. काली, कलाविकरणी, बलविकरणी; बलप्रमथनी, सर्वभूतदमनी, मनोन्मन्यः पीठशक्तयः। ओँ नमो भगवते सकलगुणात्मशक्तियुक्तायानन्ताय योगपीठात्मने नम इति पीठमन्त्रः॥

नीलप्रवालरुचिरं विलसत्त्रिनेत्रम्।
पाशारुणोत्पलकपालकशूलहस्तम्॥ ५५॥
अर्द्धाम्बिकेशमनिशं प्रविभक्तभूषम्।
बालेन्दुबद्धमुकुटं प्रणमामि रूपम्॥ ५६॥

इति ध्यानम्।

अत्र ऊर्ध्वदक्षिणहस्तादि तदधो हस्तान्तं पाशादिचतुष्कं ध्येयम्। आवरणपूजायां केसरेष्वग्न्यादिकोणेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि, अग्रे नेत्रं, दिक्ष्वस्त्रम्, पूर्वादिपत्रेपु वृषभ, क्षेत्रपाल, चण्डेश, दुर्गा, षड्मुख, नन्दि, विघ्नेश, सेनापतीन्, पत्राग्रेषु, ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराहीन्द्राणी, चामुण्डा, महालक्ष्मीः। तद्बहिर्लोकपालान्, तद्बहिस्तदस्त्राणि च पूजयेत्॥ वृषभादिध्यानं पञ्चाक्षरे ब्राह्म्यादिध्यानञ्च मातृकामन्त्रे द्रष्टव्यम्।

एकलक्षं जपेद्बीजमित्थं मन्त्री विचिन्तयन्।
अयुतं मधुरासिक्तैर्जुहुयात्तिलतण्डुलैः॥ ५७॥

इति श्रीभवानन्दरायकारिते श्रीगोविन्दकृते पूजाप्रदीपे
शिवपूजापरिच्छेदः।

❀❀❀❀❀

अथ चण्डेशमन्त्रः ।

अर्घीशो वह्निशिखरोलान्तस्थो दान्त ईरितः ।
फडन्तश्चण्डमन्त्रोऽयं त्रिवर्णात्मा समीरितः ॥ १ ॥

अस्यमन्त्रस्यात्रिको ऋषिरनुष्टुप्छन्दश्चण्डेशो देवता धनाद्यभीष्टसिद्धौ विनियोगः दीप्तफट् हृदयाय नमः, ज्वलफट् शिरसे स्वाहा, ज्वालिनि फट् शिखायै वषट्, तटकट कवचाय हुं. हुन फट् नेत्राभ्यां वौषट्, सर्वज्वालिनि फट् अस्त्राय फट् इत्यङ्गमन्त्राः। वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, कलविकरणी, बलविकरणी, बलप्रमथनी, सर्वभूतदमनो मनोन्मन्यः पीठशक्तयः। ओं नमो भगवते सकल-गुणात्मशक्तियुक्तायानन्ताय योगपीठात्मने नम इति पीठमन्त्रः। चं इति बीजं मूर्त्तिकल्पनमन्त्रः।

चण्डेश्वरं रक्ततनुं त्रिनेत्रं
रक्तांशुकाढ्यं हृदि भावयामि ।
टङ्कं त्रिशूलं स्फटिकाक्षमालां
कमण्डलुं बिभ्रतमिन्दुचूडम् ॥ २ ॥

इति ध्यानम् ।

चं चण्डेश्वराय नम इति पूजामन्त्रः। आवरणपूजायां: केसरेष्वग्न्यादि-कोणेषु हृदयशिरः शिखाकवचानि । अग्रे नेत्रं, दिक्षु अस्त्रं, पूर्वादिदलेषु ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराहीन्द्राणी, चामुण्डामहालक्ष्मीः। तद्बाहिरि-न्द्रादीन्, तद्बहिर्वज्रादींश्च पूजयेदिति। ब्राह्म्यादिध्यानम्— मातृकासरस्वती-पूजापरिच्छेदे द्रष्टव्यम् ॥

वर्णलक्षत्रयं कृतसन्दीक्षो मन्त्री जप्याल्लक्षत्रयञ्च मन्त्र……मिति प्रपञ्चसार-वचनात् ।

वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं होमं कुर्याद्दशांशतः ।
मधुरत्रयसंयुक्तैर्विशुद्धैस्तिलतण्डुलैः ॥ ३ ॥

इति श्रीभवानन्दरायकारिते
श्री गोविन्दकृते पूजाप्रदीपे
चण्डेशपूजापरिच्छेदः ।

———

अथ गायत्रीमन्त्रः ॥

प्रणवाद्या व्याहृतयः सप्त स्युस्तत्पदादिका ।
चतुर्विंशत्यक्षरात्मा गायत्री शिरसा सह ॥ १ ॥
सर्ववेदोद्धृतः सारो मन्त्रोऽयं समुदाहृतः ।
"ब्रह्मणा हृदयं प्रोक्तमि"ति शारदायाः ॥ २ ॥
सब्रह्मविष्णुरुद्रश्च सेश्वरैश्च सदाशिवैः ।
ससर्वात्माश्रयैः कुर्यादङ्गन्यासं समाहितः ॥ ३ ॥

इत्येव प्रपञ्चसारे, अतः शारदासम्वादार्थं तट्टीकान्वेषणम् । अत्राङ्गमन्त्रेषु "चतुर्थी नमोऽन्तैर्जातियुक्तं ब्रह्मादिपदैः षडङ्गानी"ति प्रपञ्चसारटीका ॥ आवरण-पूजायां—"कोणेषु त्रिषु सम्पूज्या ब्राह्म्याद्याः शक्तयो बहिः ।" इत्येव शारदा-वदाऽतद्वैषम्यं प्रपञ्चसारे इत्याह—

"त्रिमूर्तिशक्तोः प्रथमं समर्च्ये"ति प्रपञ्चसारस्य "प्राग्रक्षोनिलकोणेषु सावित्री, गायत्री, सरस्वत्य. । अग्निवरुणेशानदिक्षु ब्रह्म् विष्णुरुद्राः पूज्या इति तट्टीकायामर्थः । पञ्चमावृत्तौ अष्टपद्मरूपा अष्टमो शक्तिरिति शारदा' मी भद्ररूपा इन्द्रादिपूजानन्तरं च सूर्यपार्षदा—"आदित्यपार्षदानन्तेरष्टमीन्द्रादिभिः सुरैरिति तत्रोक्तेः'—दीनां पूजयेदिति प्रपञ्चसारः ।

अथमन्त्रार्थः ॥ प्रणवस्तावच्चिन्मन्त्रे हसोल्लोपे सिद्ध इति सोहमित्यर्थकः । भूरिति व्याहृति भूसत्तायामित्यनुसारेण सदर्थिका । स एव सन्ननादितया पार-मार्थिकतया च भवत्यस्माद् वियद् विरञ्च्यादिप्रपञ्च इति भुवः शब्देनोच्यते, स एवान्तर्यामितया सर्वेषां प्रेरकतया सुष्ठु इरयतीति स्वरितिपदप्रतिपाद्यः । तस्यैव चाद्वितीयतया महद्भावेन चैतन्यरूपप्रकाशात्मतया वा महच्छब्देन महः शब्देन वा सिद्धया मह इति व्याहृत्या प्रतिपादनम् । स एव च सर्वेषां जीवभावेन व्यवस्थितत्वात् जनयतीति जनः पदेन बोध्यते । स एव च नियन्तृपुरुषरूपेण सर्वतापकत्वात्प्रलयादौ सर्वसंहर्तृत्वाच्च तपतीति व्युत्पत्त्या तप

इति प्रतिपाद्यः। तस्यैव च (परत्वादित्यस्यैव व्याख्यानं सर्वस्मादित्यादि सत्यत्वे परत्वादात्मत्वादनन्तो न तु इति हेतुत्रयं) परत्वात्सर्वस्मादुत्कृष्टपरमानन्दरूपत्वात् तथात्मत्वात् रज्ज्वादौ सर्पादिकल्पनायां रज्ज्वादिवत् स्वस्मिन् कल्पितानां सर्वेषां घटपटादीनामप्यात्मत्वात् स्वरूपत्वात्, तथाऽनन्तज्ञानइत्यस्य व्याख्यानं अबाधितत्वादिति अज्ञानतोऽबाधितत्वात्सत्य इत्यनेन प्रतिपादनम् इति व्याहृत्यर्थः। अकारोकारमकारविन्दुनादशक्तिशान्तरूपाः प्रणवस्य सप्तप्रभेदा भुवादिसप्तव्याहृत्येकार्थाः अखिलवस्तुसृष्ट्यादिकारणतेजोरूपमादित्यमण्डलेऽभिध्येयम् ''सदानन्दं परं ब्रह्म हानिरहिततेजोमयतया हिरण्मयाख्यं सद्रूपं तदित्यनेन प्रतिपाद्यते। वरेण्यमिति वरणीयमित्यर्थः। धियः इति द्वितीयाबहुवचनम्, य इति लिङ्गव्यत्ययेन यदित्यर्थकम्। तथा च यत् = सृष्टिकारणत्वादिविशिष्टम् सवितुः सर्वेषां प्राणिनां प्रसवितुः देवस्य वृष्टिदानादिगुणयुक्तस्य प्रभूतचित्प्रकाशेन दीप्यमानस्य वा तत्सद्रूपं तेजः सूर्यमण्डले—चिन्तनीयं हिरण्मयाख्यं परं ब्रह्मेति यावत्। धीमहि ओंकारेण समन्वयात् सोहमिति चिन्तयामः। वरेण्यं सर्वैर्भजनीयं प्रार्थनीयम्। भर्गः पापानां भर्जकं नाशकं यः यत् एवं भूतं तत् नोऽस्माकं धियो बुद्धीः प्रचोदयात्—परमपुरुषार्थतया प्रेरयतु इति गायत्र्यर्थः। अपशब्देन—सोमो ज्योतिश्शब्देनाग्निरुच्यते। सोमोन्नमग्निवत्ता अन्नात्तृभावेन मीलितं रूपं सर्वाधारकं रसः। अमृतमविनाशी ब्रह्म वृहत्। भूर्भुवः स्वरिति व्याहृतिभिः सदानन्दज्ञानान्युच्यन्ते। ओंकारश्च सोहमित्यर्थकः, तथा च = यत्प्रतिपादितरूपं ब्रह्म सोहमिति शिरसोर्थः। एवं ओंकारव्याहृत्योः ओंकारगायत्र्योरोंकारव्याहृतिगायत्री शिरसाञ्चार्थसंगतिर्द्रष्टव्या। "व्याहृतीः सप्ततारांद्याः हृन्मुखांसोरुयुग्मके।" जठरे न्यस्य मन्त्रज्ञो गायत्र्याणीं स्तनौ न्यसेत्" ॥ एकवर्णन्यासस्तत्रश्लोकस्मन्त्रादौ, वहुषु स्थानेषु युग्म इति विधिर्दृश्यते = तथा च = युग्ममेव तत्स्थानं लभ्यते। तनौ न्यसेत्)

यत्सन्धिषुध्वजनाभौ

हृत्कण्ठभुजसन्धिषु।

आस्यनासाकपोलाक्षिकर्णभ्रूमस्तके पुनः।

पाश्चात्योत्तरयाम्यप्रागूर्ध्ववक्त्रेषुसाधकः॥ ४॥

पदानि दश विन्यसेदेषु स्थानेषु मन्त्रवित् ।
शिरोभ्रूमध्यहृद्वक्त्रे कण्ठहृन्नाभिगुह्यके
जानुनोः पादयोर्युग्मे तच्छिरः शिरसि न्यसेत् ॥ ५ ॥

इत्यत्र यत्सन्धिषु चत्वारः, भुजसन्धिषु चत्वारः, नासादिष्वेकैकवर्णो न्यसनीयः। केचित्तु यत्सन्धिषु द्वौ भुजसन्धिषु द्वौ नासादिषु द्वौ द्वौ भ्रुवोरेक वर्णश्च न्यसनीय इत्याहुः तन्न नासदिषु द्वयं भ्रुवोरेकमिति विनिगमकाभावात्; न च भ्रुवोर्वर्णद्वयस्यान्यत्र न्यासस्यानामिधानमेव विनिगमकम्. त्रिपुरामन्त्रभूषण-न्यासे भ्रुवोर्वर्णद्वयन्यासाभिधानात् । ध्याने तत्वात्मवर्णात्मिकामिति. तत्र वरेण्यमिति णि अन्इति विभज्य चतुर्विंशतिवर्णताऽत एव शताक्षरैर्देवस्यानन्तैः त्रयोदशवर्णैर्हृदयाङ्गमुक्तं, ओँकारस्य ब्रह्मऋषिर्गायत्रीछन्दः परमत्मादेवता सर्वकर्मारम्भे निनियोगः । सप्तव्याहृतीनां—जमदग्निभरद्वाजभृगुगौतमकश्य-पविश्वामित्रवशिष्ठाऋषयो गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्वृहतीपंक्तित्रिष्टुप्जगत्यश्छन्दांस्य-ग्निवाय्वादित्यवृहस्पतिवरुणेन्द्रविश्वेदेवा देवताःप्राणायामे विनियोगः। गायत्र्या विश्वामित्रऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता पुरुषार्थचतुष्टये विनियोगः। शिर-सोब्रह्मऋषिर्देवीगायत्रीच्छन्दः परमात्मादेवता प्राणायामे विनियोगः। सर्वेषामपि ऋष्यादीनां मस्तकादिषु न्यसेत। हृदि ओँभूः, मुखे ओँ भुवः, अंसयोः ओँ स्वः, ओँ महः, ऊर्वोः ओँ जनः, ओँ तपः, जठरे ओँ सत्यम्, इति व्याहृति-न्यासः। पादयोः सन्धिचतुष्टययोः तत्सवितु, ध्वजे र्व्वं, नाभौ रे, हृदि णि. कण्ठे अं भुजयोः सन्धिचतुष्टययोः भर्गोदेव, मुखे स्य, नासापुटयोः धी, गण्डयोः म, नेत्रयोः हि, कर्णयोः धि, भ्रुवोः यो, मस्तके यो, पश्चिममुखे नः, उत्तरमुखे प्र, दक्षिणेमुखे चो, पूर्वमुखे द, ऊर्ध्वमुखे यात्, इतिवर्णन्यासः॥ अथ पदन्यासः॥ शिरसि तत्, भ्रूमध्ये सवितुः, दृशोः वरेण्यं, मुखे भर्गः, कण्ठे देवस्य, हृदि धीमहि, नाभौ धियः, गुह्ये यः, जानुनोः नः, पादयोः प्रचोदयात् इति न्यसेत । शिरसि आपो ज्योतिरित्यादि शिरः विन्यस्य कराङ्गन्यासं कुर्यात्। तत्र खडङ्गमन्त्राः ब्रह्मणे हृदयाय नमः, विष्णवे शिरसे स्वाहा, रुद्राय शिखायै वषट्, ईश्वराय कवचाय हुँ, सदाशिवाय नेत्रत्रयाय वौषट्, सर्वात्मनेऽस्त्राय फट् इति। त्रिकोणकर्णिकं मण्डलं पूजायन्त्रम् । वं रं दीप्ता, वीं रीं सूक्ष्मा, वुं रुं जया, वें रें भद्रा, वैं रैं विभूति, वों रों विमला, वौंरौं

अमोघा वं रं विद्युता, वः रः सर्वतोमुखी एतः सर्वोजपीठशक्तयः । ब्रह्मविष्णु-शिवात्मकाय सौराय योगपीठात्मने नमः इति पीठमन्त्रः ॥

मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवल–

च्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणै–,

र्युक्तामिन्दुनिबद्धरत्नमुकुटां–

तत्त्वात्मवर्णात्मिकाम् ।

सावित्रीं वरदाङ्कुशाभयकशाः–

शुभ्रं कपालं गुणम्–

शंखं चक्रमथारविन्दयुगलं–

हस्तैर्वहन्तीम्भजे ॥ ६ ॥

इति ध्यानम् । अत्र दक्षिणवामक्रमेण वराभयादिध्येयम् । आवरण-पूजायां त्रिकोणस्य कोणेषु ब्राह्मी, वैष्णवी, कौमारी, रौद्री, तद्बहिः, कर्णिका-यामेव पूर्वादिदिक्चतुष्टये आं आदित्याय नमः, रं रवये नमः, भां भानवे नमः, भां भास्कराय, आग्नेयादिकोणेषु उं उषायै, प्रं प्रज्ञायै, प्रं प्रभायै, सं सन्ध्यायै नमः । केसरेष्वग्न्यादि कोणेषु हृदयशिरः शिखाकवचानि, अग्रे नेत्रं, दिक्ष्वस्त्रम्, दलमूलेषु प्रह्लादिनी, प्रभा, नित्या, विश्वम्भरा, विलासिनी, प्रभावती, जया-शान्तीः । दलमध्येषु, कान्ता, दुर्गा, सरस्वती, विद्यारूपा, विशाला, ईशा, व्यापिनी, विमलाः । दलाग्रेषु तमोपहारिणी, सूक्ष्मा, विश्वयोनि, जयावहा, पद्मालया, पराशोभा, पद्मरूपाः । तद्बहिः ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराहीन्द्राणी, चामुण्डा महालक्ष्मीः । अग्रेऽरुणं, तद्बहिः ग्रहान्, तद्बहिरिन्द्रा-दीन्, तद्बहिर्वज्रादींश्च पूजयेदिति ।

प्राणायामं पुरा कृत्वा गायत्रीं–

सन्ध्ययोर्यजेत् ।

सप्तव्याहृतिसंयुक्तां गायत्रीं शिरसान्विताम् ॥ ७ ॥

त्रिरुच्चरणंधियाप्राणान्धारयेद्यतमानसः ।

प्राणायामोऽयमाख्यातः समस्तदुरितापहः ॥ ८ ॥

व्याहृतित्रयसंयुक्तां गायत्रीं दीक्षितो जपेत् ।

तत्त्वलक्षं विधानेन भिक्षाशी विजितेन्द्रियः

क्षीरोदनं तिलान् दूर्वा क्षीरद्रुमसमिद्वरान्

पृथक् सहस्रत्रितयं जुहुयान्मन्त्रसिद्धये ॥ ९ ॥

प्रपञ्चसारेतु—

जुहुयात्पायसघृततिलदूर्वाभिःक्षीरतरुसमिद्भिः ।

एकैधं त्रिहस्रं मन्त्री समभीष्टसिद्धये मुक्त्यै ॥ १० ॥

इति घृतमप्यधिकमुक्तं, तच्च युक्तं तथा सति हि चतुर्विंशतिसहस्राणि होमो भवतीति ।

इति श्रीभवानन्दरायकारिते श्रीगोविन्दकृते
पूजाप्रदीपे
गायत्रीपूजापरिच्छेदः १

अथ विष्णुमन्त्राः ॥

तत्र सर्वमन्त्रसाधारणौ केशवकीर्त्यादितत्त्वन्यासौ, तयोः केशवादिन्यासे क्रमदीपिकामतेऽपि अं केशवकीर्त्तिभ्यान्नम इत्यादिमन्त्रान् केचिन्मन्यन्ते, तदयुक्तम्—

"वर्णानुक्त्वा सार्द्धचन्द्रान् पुरस्ता-
न्मूर्त्तीः शक्तीङेऽवसानानतिश्च" ॥ १ ॥

उक्त्वा न्यसेदादिभिः सप्तधातून् प्राणं जीवं क्रोधमप्यात्मनेऽन्तानित्यत्र ङेवसान इति वचनात्, न च तच्चतुर्थ्युपलक्षणं, शक्ये बाधकाभावात्। किञ्चात्मनेऽन्तान् सप्तधातून्न्यसेदित्यनेन प्राप्तस्य त्वगात्मने इत्यादि भागस्य पुरुषोत्तमवसुदेवाभ्यामित्यादिभागेन नान्वयः स्यात्। न च त्वगात्मने इत्यस्य न तद्विशेषणतेति वाच्यम्, तस्य नित्यं विशेष्यसाकाङ्क्षतया विशेष्यान्तराभावे सन्निहितोत्तरभागप्रतिपाद्यस्यैव तद्विशेष्यत्वात्। अविशेषणत्वेऽपि च तस्या समस्तत्ववन्मूर्त्तिशक्त्योरप्यसमासस्यैवौचित्यादिति ॥ तत्त्वन्यासे तु परमेष्ठ्यादिन्यासे षोपरबलवर्णैस्सलिवैरिति पठित्वा षोकारादिवर्णपुरस्सरमेव न्यासमवदन्ति। अस्मत्सम्प्रदाये तु षोपरबलवर्णैरितिपाठः, तत्र उपर इत्यनेन च रेफसमीपवर्त्तिनौ यकारलकारौ गृह्येते, तथा च सर्वेषां हलां संग्रहो भवति, पूर्वपाठे तु कियतां हलामनुपादानं कियताञ्च पुनरुपादानं छन्दोभङ्गश्च दूषणानि। अन्यच्च षन्नमः परायवासुदेवात्मने परमेष्ठिने नम इत्यादिक्रमेण वासुदेवादय एवात्मनेऽन्ताः कर्तव्याः। शारदायाम् —

जीवप्राणधियश्चित्तं ज्ञानकर्मेन्द्रियाण्यपि।
तन्मात्राः पञ्चभूतानि हृत्पद्मं तेजसां त्रयम्।
वासुदेवादयश्चेति तत्त्वान्येतानि शार्ङ्गिणः ॥ २ ॥

इति द्वात्रिंशद्वैष्णवतत्त्वेषु वासुदेवादीनामेव गणनेन तेषामेव तथात्वादिति वदन्ति, तदपि न सम्यक्, तत्रापरिगणितानामपि अहङ्कारनारायणकोपतत्त्वानां

न्यासदर्शनेनास्य पक्षान्तरत्वस्यापि संभाव्यत्वात् । तत्पक्षान्तर्भावेऽपि परमेष्ठ्यादीनामेवात्मनेन्तत्वं, वासुदेवादीनान्तु अनात्मनेन्ततयैव न्यासः, तथैव क्रमदीपिकास्वरसात्, तथाहि "इत्यच्युतोक्तततनुर्विदधीततत्त्वन्यासांगपूर्वकपराक्षरनत्युपेतम् । भूयः पराय स तदा द्वयमात्मने च नत्यन्तमुद्धरतुतत्त्वमनूनक्रमेणे' त्युक्त्वा तदाद्वयमित्यनेन प्रतिपादितानि सामानि न्यासस्थानानि च, "सकलवपुषि जीवं प्राणमायोज्यमध्य' इत्यादिग्रन्थेनोक्त्वा "अथ परमेष्ठिपुमांसौ विश्वनिवृत्ती च शर्वं इत्युपनिषदः" ।

न्यस्येदाकाशादिस्थानयो परवलवर्णैस्सलवैः ।

वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः ॥

नारायणश्च क्रमशः परमेष्ठ्यादिभिर्युता ॥ ३ ॥

इति वचनेन तादृशप्रक्रमात् सलवैरित्यन्तेन परमेष्ठ्यादीनामेवात्मनेन्तत्वपर्याप्तौ, वासुदेवादीनां तत्साहित्येन न्यासमात्रं प्रतिपाद्यत इत्येव युक्तम्, न तु वासुदेवादीनामात्मनेन्तत्वं प्रतिपाद्यते । नचैतावता तत्त्वन्यासत्वभङ्गः, अनात्मन्ततयापि तन्न्यासस्याक्षतत्वादिति, सन्तु वा षं नमः पराय वासुदेवपरमेष्ठ्यात्मने इत्यादय एव कैश्चिद्दूरीकृताः तन्न्यासमन्त्रा इति, अयं तत्त्वन्यासो विष्णुमन्त्रजपादिष्वावश्यकः । "इति कृतेऽधिकृतो भवति ध्रुवं, सकलवैष्णवमन्त्रजपादिष्वि"ति वचनात् ।

अथ केशवादिन्यासः ॥

उद्यत्प्रद्योतनशतरुचिं तप्तहेमावदातम्,

पार्श्वद्वन्द्वे जलधिसुतया विश्वधात्र्या च जुष्टम् ।

नानारत्नोल्लसितविविधाकल्पमापीतवस्त्रम्,

विष्णुं वन्दे दरकमलकौमोदकीचक्रपाणिम् ॥ ४ ॥

इति ध्यात्वा मातृकान्यासोक्तस्थानेषु अं केशवायकीर्त्यै नमः, आं नारायणाय कान्त्यै नमः, इं माधवाय तुष्ट्यै नमः, ईं गोविन्दाय पुष्ट्यै नमः, उं विष्णवे धृत्यै नमः, ऊं मधुसूदनाय शान्त्यै नमः, ऋं त्रिविक्रमाय क्रियायै नमः,

ॠं वामनाय दयायै नमः, लृं श्रीधराय मेधायै नमः, लॄं हृषीकेशाय हर्षायै नमः, एं पद्मनाभाय श्रद्धायै नमः, ऐं दामोदराय लज्जायै नमः, ओं वासुदेवाय लक्ष्म्यै नमः, औं सङ्कर्षणाय सरस्वत्यै नमः, अं प्रद्युम्नाय प्रीत्यै नमः, अः अनिरुद्धाय रत्यै नमः, कं चक्रिणे जयायै नमः, खं गदिने दुर्गायै नमः, गं शार्ङ्गिणे प्रभायै नमः, घं खड्गिने सत्यायै नमः, ङं शंखिने चण्डायै नमः, चं हलिने वाण्यै नमः, छं मुसलिने विलासिन्यै नमः, जं शूलिने विजयायै नमः, झं पाशिने विरजायै नमः, ञं अङ्कुशिने विश्वायै नमः, टं मुकुन्दाय विनदायै नमः, ठं नन्दनाय सुनन्दायै नमः, डं नन्दिने स्मृत्यै नमः, ढं नराय ऋद्ध्यै नमः, णं नरजिते समृद्ध्यै नमः, तं हरये शुद्ध्यै नमः, थं कृष्णाय तुष्ट्यै नमः, दं सत्याय बुद्ध्यै नमः, धं सात्विताय सत्यै नमः, नं शौरये क्षमायै नमः, पं शूराय वसायै नमः, फं जनार्दनाय उमायै नमः, बं भूवराय क्लेदिन्यै नमः, भं विश्वमूर्त्तये क्लिन्नायै नमः, मं वैकुण्ठाय वसुधायै नमः, यं त्वगात्मने पुरुषोत्तमाय वसुदायै नमः, रं असृगात्मने वलिने परायै नमः, लं मांसात्मने बलानुजाय परायणायै नमः, वं मेदात्मने वाणाय सूक्ष्मायै नमः, शं अस्थ्यात्मने वृषघ्नाय सन्ध्यायै नमः, षं मज्जात्मने वृषाय प्रज्ञायै नमः, सं शुक्रात्मने हंसाय प्रभायै नमः, हं प्राणात्मने वराहाय निशायै नमः, लं जीवात्मने विमलाय अमोघायै नमः, क्षं क्रोधात्मने नरसिंहाय विद्युतायै नमः, एवं विन्यस्य श्रीबीजपूर्वकान्विन्यसेत्, यथा श्रीं अं केशवाय कीर्त्यै नमः इत्यादि । अथ तत्त्वन्यासः ॥ मं नमः पराय जीवात्मने नमः, भं नमः पराय प्राणात्मने नमः, इति द्वयं सकलवपुषि । हृदि वं नमः पराय सत्यात्मने नमः, फं नमः परायाहङ्कारात्मने नमः, पं नमः पराय मन आत्मने नमः, शिरसि नं नमः पराय शब्दात्मने नमः, मुखे धं नमः पराय स्पर्शायै नमः, हृदि दं नमः पराय रूपात्मने नमः, पादयोः तन्नमः पराय गन्धात्मने नमः, कर्णयोः णं नमः पराय श्रोत्रात्मने नमः, त्वचि ढं नमः पराय त्वगात्मने नमः, चक्षुषो. डं नमः पराय चक्षुरात्मने नमः, रसनायां ठं नमः पराय रसनात्मने नमः, नासायां टन्नमः, पराय घ्राणात्मने नमः मुखे ञं नमः, पराय वागात्मने नमः, हस्तयोः झं नमः, पराप पाण्यात्मने नमः, पादयोः जं नमः, पराय पादात्मने नमः, गुदे छं नमः, पराय पाय्वात्मने नमः, लिङ्गे च नमः, परायोपस्थात्मने नमः. शिरसि ङं नमः परायाकाशात्मने नमः, मुखे घं नमः पराय वाय्वात्मने नमः, हृदि गन्नमः, पराय तेज आत्मने नमः.

लिङ्गे खन्नमः, पराय जलात्मने नमः, पादयोः कन्नमः पराय पृथिव्यात्मने नमः, हृदि शं नमः पराय हृत्पुण्डरीकात्मने नमः, हं नमः पराय द्वादशकलाव्याप्तसूर्य-मण्डलात्मने नमः, सन्नमः पराय षोडशकलाव्याप्तचन्द्रमण्डलात्मने नमः, रं नमः पराय दशकलाव्याप्तवह्निमण्डलात्मने नमः, शिरसि षन्नमः पराय परमेष्ठ्यात्मने वासुदेवाय नमः, मुखे यन्नमः, पराय पुरुषात्मने संकर्षणाय नमः, हृदि लं नमः पराय विश्वात्मने प्रद्युम्नाय नमः, लिङ्गे वं नमः पराय निवृत्त्यात्मने अनिरुद्धाय नमः, पादयोः लं नमः पराय शर्वात्मने नाराणाय नमः, सर्वाङ्गेषु क्षौं नमः पराय कोपतत्वात्मने नृसिंहाय नमः ॥

अथ नारायणमन्त्रः :—

तारं नमः पदं ब्रूयान्नरौ-
दीर्घसमन्वितौ ।
पवनो णाय मन्त्रोऽयं प्रोक्तो-
वस्वक्षरात्मकः ॥ ५ ॥

अत्र "षड्भिर्मन्त्रवर्णैः षडङ्गानि शिष्टवर्णीयाः, ··· ··· ··· ···पृष्ठयोर्न्यास-मात्रमिति शारदा । प्रपञ्चसारे तु" अष्टभि वर्णैरष्टाङ्गान्येवोक्तानि । वर्णन्यास-पूर्वं दिग्बन्धने बद्धदिक्चक्रमन्त्रेणेति शारदा । अस्त्रमन्त्रप्रवक्षाशः इति तु प्रपञ्चसारः । किरीटमन्त्रे च "गदाम्भोजे" त्यत्र गदाब्जेति, साग्निज्योतिरिति-स्थाने स्वात्मज्योतिरितिसहस्रादित्यवर्चसे इति स्थाने सहस्रादित्यतेजस इति च प्रपञ्चसारपाठः । तदेतेषां विकल्प एव । मूर्त्तिपञ्जरन्यासे 'द्वादशादित्यसहिता-मूर्तीर्द्वादशविन्यसेत्' । ललाटे केशवं धात्रेत्यादिशारदावचनेऽत्रादित्यानां "केशवादियुगषट्कमूर्तिभिर्धातृपूर्वमिहिरान्तमोऽन्तकानिति क्रमदीपिकावचने केशवादिविष्णुमूर्त्तीनामेव सहयोगदर्शनात् । ओं अं धातृसहितकेशवाय नमः इति वा, ओं केशवसहितधात्रे नमः इति वा मन्त्र इति न युक्तम्, वैष्णवजपादौ तन्मूर्त्तेरप्राधान्यस्यानौचित्यात्, तस्मात्क्रमदीपिकावचनं साहित्येनोभयन्यास-तात्पर्य्यकं, नत्वेकस्याप्यप्राधान्यतात्पर्य्यकं, तथा च—ओं केशवधातृभ्यां नमः इत्यादय एव, तन्मते मन्त्राः सन्तु वा, धातृसहितकेशवाय नमः इत्यादय इति ।

ध्याने दक्षिणाधोहस्तमारभ्य प्रादक्षिण्येन शंखपद्मगदाचक्राणि ध्येयानि। नारायणमूर्त्तौ तथैव स्कन्दपुराणादिषु शंखादिप्रतिपादनात् तथा च स्कन्दपुराणोक्तार्थसंग्राहकश्लोको—

शङ्ख गोपीशपङ्क च श प चङ्गशःगो चपम् ।
श च पङ्गश गं पञ्च शंखाद्याःषट्प्रदक्षिणाः ॥

केमसन्दावामप्रद्युविमाऽनि पूर्वधो जनाः ।
गो त्रि श्री हृ नृसिंहाः च्युवा ना पो पे हकृ क्रमात् ॥ ६ ॥

इति ॥

अनयोरर्थः शङ्खगोपीत्यादिषु श च ग पाः, शंखचक्रगदापद्मोपस्थापकाः। के म सन्दा इत्यादिषु के इत्यादयः केशवादिप्रतिपादकाः। तथा च उर्ध्वं— दक्षिणहस्तमारभ्य शंखादीनां चतुर्णां विन्यासषट्केन केशव, मधुसूदनसङ्कर्षण-दामोदरवामनप्रद्युम्नाः षट् मूर्त्तयः, एवं वामोर्ध्वहस्तमारभ्य यथाक्रमं विष्णु-माधवानिरुद्धपुरुषोत्तमाधोक्षजजनार्दनाः, अधोवामहस्तमारभ्य गोविन्दत्रिविक्रम-श्रीधरहृषीकेशनृसिंहाच्युताः। अधो दक्षिणहस्तमारभ्य वासुदेवनारायणपद्म-नाभोपेन्द्र हरिकृष्णमूर्त्तयो भवन्तीति ॥ मन्त्रवर्णन्यासे दोः पादसन्ध्यङ्गुलीष्वि-त्यत्र मूलवर्जं दोः पादसन्तित्रयं ग्राह्यम्, मूले आवृत्त्यन्तर एव न्यासाभिधानाच्च, ननु त्यागे वीजाभावः, अतः दोः पादसन्ध्यङ्गुलीष्वावृत्तिद्वय भवति। अन्यथा तु व्यवस्थैव दुर्घटा। अस्य मन्त्रस्य साध्यनारायणऋषिर्गायत्रीछन्दो नारायणो देवता पुरुषार्थचतुष्टये विनियोगः। क्रुद्धोल्काय हृदयाय नमः, महोल्काय शिरसे स्वाहा, बीरोल्काय शिखायै वषट् व्युल्काय कवचाय हुँ, सहस्रोल्कायास्त्राय फट् इति पञ्चाङ्गमन्त्राः। तैः कराङ्गन्यासौ विधाय पुनः षडङ्गन्यासं कुर्यात्। तत्र मन्त्राः—ओँ हृदयाय नमः, नं शिरसे स्वाहा, मोँ शिखायै वषट्, नां कवचाय हुँ, रां नेत्राभ्यां वौषट्, इति हृदयादिषु विन्यस्य णां कुक्षौ यं पृष्ठे न्यसेत्। प्रपञ्चसारमते तु णां कुक्षये नमः, यं पृष्ठाय नमः इति। कुक्षिपृष्ठयो-र्वर्णद्वयन्यासः। ततः ओँ सहस्रार हुँ फट् इति मन्त्रेण दिशो बद्ध्वा आधारे ओँ, हृदि न, मुखे मो, वाहुमूलयोः नारा पदमूलयोः यणा, नाभौ य, कण्ठे आँ, नाभौ

न, हृदि मो, कुचयोः ना रा, पार्श्वयोः य णा, पृष्ठे य, शिरसि ओं मुखे न, नेत्रयोः मो ना, श्रवणयोः रा य, नासापुटयोः णा य, दक्षिणबाहुकफोण्यादिसन्धित्रयाङ्गुलीषु ओं नमो ना, वामबाहुसन्धित्रयाङ्गुलीषु रायणाय, वामपादसन्धित्रयाङ्गुलीषु ओं नमो ना, दक्षिणपादसन्धित्रयाङ्गुलीषु रायणाय, हृदि त्वचि ओं, असृजि न, मांसे मो, मेदसि ना, अस्थिनि रा, मज्जनि य, शुक्रे णा, प्राणेषु या, शिरसि ओं, नयनयोः न, मुखे मो, हृदि ना, कुक्षौ रा, ऊर्व्वोः य, जंघयोः ना, पादद्वये य, गण्डयोः ओं, अंसयोः न, ऊर्वोः मे, चरणयोः ना, चक्रस्थाने रा, शंखस्थाने य, गदास्थाने णा, पद्मस्थाने य, इत्यष्टावृत्त्यामन्त्रवर्णान्विन्यस्य विष्णुपञ्जरन्यासं कुर्यात्। यथा ललाटे ओं धातृसहितकेशवाय नमः, इति वा, ओं अं केशवधातृभ्यान्नमः इति वा। एवमग्रेऽपि। उदरे ण आं अर्य्यम सहित नारायणाय नम, हृदि मो इं मित्रसहितमाधवाय नमः, गलकूवरे भ ईं वरुणसहितगोविन्दाय नमः, दक्षिणपार्श्वे ग उं अंशुसहितविष्णवे नमः, दक्षिणांसे व ऊं भगसहितमधुसूदनाय नमः, दक्षिणगले ते एं विवस्वत्सहितत्रिविक्रमाय नमः, वामपार्श्वे रा ऐं इन्द्रसहितवामनाय नमः, वामांसे सु ओं पूषसहित श्रीधरायनमः, वामगले दे ओं पर्जन्यसहितहृषीकेशाय नमः, पृष्ठे वा अं त्वष्टृसहित पद्मनाभाय नमः, ककुदि य अः विष्णुसहितदामोदराय नमः, मूर्द्ध्नि द्वादशाक्षरं न्यसेत्। ततः—ओं किरीटकेयूरहारमकरकुण्डलचक्रशंखगदाम्भोजहस्तपीताम्बरश्रीवत्साङ्कितवक्षःस्थलश्रीभूमिसहित स्वात्मज्योतिर्द्वयदीप्तिकराय सहस्रादित्यवर्चसे नमः इति किरीटमन्त्रेण व्यापकं कुर्यात्॥ विमलोत्कर्षिणी ज्ञानाक्रियायोगाप्रह्वीसत्येशानानुग्रहाः पीठशक्तयः। ओं नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगयोगपद्मपीठात्मने नमः इति पीठमन्त्रः।

उद्यत्कोटिदिवाकराभमनिशं—

शंखं गदां पङ्कजम्,

चक्रं विभ्रतमिन्दिरावसुमती—

संशोभिपार्श्वद्वयम्।

कोटीराङ्गदहारकुण्डलधरं
पीताम्बरं कौस्तुभो-
द्दीप्तं विश्वधरं स्ववक्षसि लसत्
श्रीवत्सचिह्नं भजे ॥ ७ ॥

इतिध्यानम् ॥

शंखचक्रे अधोदक्षिणवामहस्तयोः, पद्मगदे ऊर्ध्वयोर्दक्षिणवामहस्तयो र्ध्यातव्ये। आवरणपूजायां कर्णिकायामग्न्यादिकोणेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि, दिक्ष्वस्त्रं, पूर्वादिकेसरेषु ओंकाराद्यये नम इत्यादिमन्त्रैः मन्त्रवर्णाष्टकं—पूर्वादिदिग्दलचतुष्टये वासुदेवसङ्कर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धान्, अग्न्यादिविदिग्दलेषु शान्ति श्रीसरस्वतीरतीः। दलाग्रेषु चक्रशंखगदापद्मकौस्तुभमुशलखड्गवनमालाः. तद्बहिरग्रे गरुडं, दक्षिणपार्श्वे शंखनिधिं, वामपार्श्वे पद्मनिधिं पश्चात् ध्वजं, देवापेक्षया परिभाषिकाग्नेयादिकोणेषु विघ्नार्थदुर्गसेनान्यः, तद्बहिरिन्द्रादीन् तद्बहिस्तदस्त्राणि च पूजयेत्। अथावरणध्यानम्—

हिमपीततमालेन्द्रनीलाभाः पीतवाससः
चक्रशंखगदाम्भोजधरावासुदेवादयः ॥ ८ ॥

श्वेतकाञ्चनगोदुग्धदूर्वावर्णाः शान्त्यादयः।

रक्तश्वेतपीतकनकाभश्याम कृष्णासित पाण्डुराणि चक्रादीनि, रक्तो गरुडः।

मुक्तामाणिक्यरुचीशंखपद्मनिधीध्वजः
श्यामः अरुणश्यामपीताःविघ्नदयाध्येयाः ॥ ९ ॥

विकारलक्षं प्रजपेन्मनुमेनं समाहितः
तद्दशांशं सरसिजैर्जुहुयान्मधुराप्लुतैः ॥ १० ॥

प्रणवो ह्यद्भागवते वासुदेवाय कीर्त्तितः।
प्रधानं वैष्णवे तन्त्रे मन्त्रोऽयं द्वादशाक्षरः ॥ ११ ॥

अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिॠषि र्गायत्रीछन्दो वासुदेवो देवता पुरुषार्थचतुष्टये विनियोगः। ओँ हृदयाय नमः, शिरसे स्वाहा, भगवते शिखायै वषट्, वासुदेवाय कवचाय हुँ, ओँ नमो भगवते वासुदेवाय अस्त्राय फट्, इत्यङ्गमन्त्राः। अथ मन्त्रवर्णन्यासः। शिरसि ओँ, भाले न, नेत्रयोः मो, मुखे भ, गले ग, बाह्वोः व, हृदि ते, उदरे वा, नाभौ सु ध्वजे दे जानुनोः वा, पदद्वये य, इति न्यसेत्। प्रथममष्टदलं ततो द्वादशदलं पद्मं पूजायन्त्रम्। विमलोत्कर्षिणो ज्ञानाक्रियायोगा प्रह्वीसत्या ईशानानुग्रहाः पोठशक्तयः। ओँ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगपद्मपीठात्मने नमः। इति पीठमन्त्रः।

विष्णुं शारदचन्द्रकोटिसदृशं
शंखं रथाङ्गं गदा–,
मम्भोजं दधतं सिताब्जनिलयं–
कान्त्या जगन्मोहनम्।

आवद्धाङ्गदहारकुण्डलमहा–
मौलिं स्फुरत्कङ्कणम्
श्रीवत्साङ्कमुदारकौस्तुभधरं
वन्दे मुनीन्द्रैः स्तुतम् ॥ १२ ॥

इति ध्यानम्। अत्राधोदक्षिणहस्तमारभ्य प्रदक्षिणक्रमेण शंखादिचतुष्टयं ध्येयम्। तत्प्रमाणमुक्तं नारायणमन्त्रप्रकरणे। आवरणपूजायां केसरेष्वग्न्यादि-कोणेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि, दिक्ष्वस्त्रं. पूर्वादिदिग्दलेषु वासुदेवसङ्कर्षण-प्रद्युम्नानिरुद्धान् अग्न्यादिविदिग्दलेषु शान्तिश्रीसरस्वतीरतीः, तद्बहिः केशव-नारायणमाधवगोविन्दविष्णुमधुसूदनत्रिविक्रमवामनश्रीधरहृषीकेशपद्मनाभदामोद-रान् तद्बहिर्लोकपालान्, तद्बहिस्तदस्त्राणि च पूजयेदिति।

वासुदेवादीनां ध्यानमष्टाक्षरे द्रष्टव्यम्।

वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं दीक्षितो विजितेन्द्रियः
तत्सहस्रं प्रजुहुयात्तिलैराज्यपरिप्लुतैः ॥ १३ ॥

हृल्लेखावीजयुगलं रमावीजयुगं पुनः ।

लक्ष्म्यन्ते वासुदेवाय हृदन्तः प्रणवादिकः ॥ १४ ॥

चतुर्द्दशाक्षरैः प्रोक्तो मन्त्रोऽयं सुरपादपः ।

अस्य लक्ष्मीवासुदेवमन्त्रस्य अङ्गमन्त्रध्याने विहाय सर्वं द्वादशाक्षरवत् । तत्रत्यश्च वर्णन्यासोऽत्र न विधेयः, तन्मन्त्रासाधारणत्वात् । अङ्गमन्त्रास्तु ओँ ह्रीँ ह्रौँ हृदयाय नमः । ओँ श्रीँ शिरसे स्वाहा, ओँ लक्ष्मी शिखायै वषट्, ओँ वासुदेवाय कवचाय हुँ, ओँ नमः अस्त्राय फट् । ध्यानन्तु :—

विद्युच्चन्द्रनिभंवपुः कमलजा—
वैकुण्ठयोरेकतां,
प्राप्तं स्नेहवशेन विलसद्—
भूषाभरालङ्कृतम् ।
विद्यापङ्कजदर्पणंमणिमयं—
कुम्भं सरोजं गदाम्,
शंखंचक्रममूनि बिभ्रदसितां
दिश्याच्छ्रियं वः सदा ॥ १५ ॥

इति ॥ अत्र विद्यादिचतुष्टयं वामहस्तेषु, सरोजादिकं दक्षिणहस्तेषु ।

वर्णलक्षं जपेदेनं तत्सहस्रं सरोरुहैः ।
होमं कुर्यादविकसितैर्मधुरत्रयसंयुतैः ॥ १६ ॥

तारो हृद्विष्णवे पश्चात् ङेन्तः
सुरपतिर्भवेत् ।
महाबलाय ठ द्वन्द्वं मनुरष्टादशाक्षरः ॥ १७ ॥

अत्र ।

मूर्द्धिन भाले दृशोर्युग्मे
कर्णयुग्मौष्ठतालुषु ।

कण्ठे वाहुद्वये पश्चात्

हृदयोदरनाभिषु ॥ १८ ॥

गुह्योरुजानुयुग्मेषु जंघयोः —

पादयोर्न्यसेत् ।

इति मन्त्रवर्णन्यासे नेत्रादिषु जान्वन्तेषु युग्मावयवेषु एकैकमेवाक्षरं न्यसनीयं, जंघयोः पादयोश्च द्वे द्वे दृशोर्युग्म इत्यादिना पूर्वेषां सर्वेषामपि युग्मतयैव न्यासस्थानताभिधानात् । "अन्त्ययोस्तु जंघयोः पादयोर्न्यस्येदित्यत्रैवाभिहितत्वात्, अतो न विनिगमकान्तरस्याभावेन स्थानाधिक्यमिति ॥ आवरणपूजायां—

"अभ्यर्च्य वासुदेवादीन्

ध्वजादीनर्चयेत्ततः"

इत्यत्र विष्णोर्गरुड़ध्वजतया ध्वजशब्देन गरुड़ उच्यते । यद्वा आदिशब्दः प्रकारवाची, प्रकारश्च सादृश्यं ध्वजेनावरणविशेषोक्तत्वमेव, तेनाष्टाक्षरोक्तगरुड़ाद्यष्टकावरणं लभ्यते । ध्वजाद्यावरणन्तु न क्वचिदप्युक्तमितिऋजुरर्थो नादरणीयः । नच गरुड़ादिद्वयम्विहाय ध्वजादिपञ्चकेनैवावरणमिति युक्तम् । अस्य मन्त्रस्य इन्द्रुऋषिर्विराट् छन्दोदधिवामनो देवता विभूत्याद्यभीष्टसिद्धौ विनियोगः । ओं हृदयाय नमः, नमः शिरसे स्वाहा, विष्णवे शिखायै वषट्, सुरपपये कवचाय हुँ, महाबलाय नेत्राभ्यां वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट् इत्यङ्गमन्त्राः । अथवर्णन्यासः, शिरसि ओं, भाले न, नेत्रयोः मो, कर्णयोः वि, ओष्ठे ष्ण, तालुनि वे, कण्ठे सु, भुजयोः र, हृदि प, उदरे त, नाभौः ये, गुह्ये म, ऊर्वोः ह्य, जानुनोः ब, जंघयोः दक्षिणवामक्रमेण लाय, पादयोः स्वाहा । अष्टदलं द्वादशदलान्तं स्थितं पद्मं पूजायन्त्रम् । चन्द्रमण्डलान्ताः पीठदेवताः सम्पूज्य पीठशक्तोः पूजयेत्, ताश्च विमलोत्कर्षिणो ज्ञानाक्रियायोगाप्रह्वीसत्येशानानुग्रहाः । ओं नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगपद्मपीठात्मने नमः । इति पीठमन्त्रः ।

मुक्तागौरन्नवमणिलसद्-

भूषणं चन्द्रसंस्थं,

भृङ्गाकारैरलकनिकरैः

शोभिवक्त्रारविन्दम्

हस्ताब्जाभ्यां कनककलशं

शुद्धतोयाभिपूर्णम्

दध्यन्भाष्यं कनकचषकं

धारयन्तं भजामः ।

इति ध्यानम् । अत्र चषकं दक्षिणहस्ते चिन्तयेत् । आवरणपूजा, यथा केसरेष्वग्न्यादिकोणेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि । अग्रे नेत्रं, दिक्ष्वस्त्रं दिग्दल-चतुष्टये वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्नानिरुद्धान्, आग्नेयादिकोणेषु शान्ति श्रीसरस्वती-रतीः, दलाग्रेष्वग्रे गरुडं, दक्षिणवामपार्श्वयोः शंखपद्मनिधी, पश्चात् ध्वजं, देवा-ग्नेयादिकोणेषु विघ्नार्थंदुर्गासेनान्यः, तद्बहिः द्वादशदलाग्रेषु केशव, नारायण, माधव, गोविन्दविष्णुमधुसूदनत्रिविक्रमवामनश्रीधरहृषीकेशपद्मनाभदामोदरान्, तद्बहिर्ल्लोकपालान्, तद्बहिस्तदस्त्राणि, तद्बहिः ऐरावतपुण्डरीकवामनकुमुदाञ्जन-पुष्पदन्तसार्वभौमसुप्रतीकान् गजान् पूजयेदिति । वासुदेवादीनां गरुड़ादीनाञ्च ध्यानमष्टाक्षरमन्त्रे द्रष्टव्यम् ।

गुणलक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं घृतप्लुतैः ।
पायसान्नैः प्रजुहुयाद्दध्यन्नैर्वा यथाविधि ॥ १९ ॥

उद्गिरत्पदमाभाष्य प्रणवोद्गीथशब्दतः
सर्व्ववागीश्वरेत्यन्ते प्रवदेदीश्वरेत्यथ ॥ २० ॥

सर्व्ववेदमयाचिन्त्य पदान्ते सर्व्वमुच्चरेत्
बोधयद्वितयान्तोऽयं मन्त्रस्तारादिरीरितः ॥ २१ ॥

अस्य मन्त्रस्य ब्रह्मऋषिरनुष्टुप्छन्दो हयग्रीवो देवता वागैश्वर्याद्यभीष्टसिद्धौ विनियोगः। ओँ हृदयाय नमः, उद्गिरत्प्रणवोद्गीथ शिरसे स्वाहा, सर्ववागीश्वरेश्वर शिखायै वषट्, सर्ववेदमयाचिन्त्य कवचाय हुँ, सर्वम्बोधय बोधय अस्त्राय फट्, इति पञ्चाङ्गमन्त्राः। विमलोत्कर्षणी ज्ञानाक्रियायोगाप्रह्वीसत्येशानानुग्रहाः पीठशक्तयः। ओँ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगयोगपद्मपीठात्मने नम इति पीठमन्त्रः। हसूँ इति बीजं मूर्त्तिकल्पनमन्त्रः।

शरच्छशाङ्कप्रभमश्ववक्त्रं
मुक्तामयैराभरणैरुपेतम्।
रथाङ्गशंखाञ्चितबाहुयुग्मं
जानुद्वयन्यस्तकरम्भजामः ॥ २२ ॥

इति ध्यानम्। ऊर्ध्वहस्तयोश्चक्रशंखौ अधोहस्तौ तु जानुन्यस्तौ ध्येयौ। आवरणपूजायां केसरेषु पूर्वादिदिक्षु ऋग्वेदयजुर्वेदसामवेदाथर्ववेदान्, अग्न्यादिविदिक्केसरेषु वेदाङ्गस्मृतिन्यायसर्वशास्त्राणि। पत्रेषु आग्नेयादिकोणेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि, दिक्ष्वस्त्रं, तद्बहिर्लोकपालान्, तद्बहिस्तदस्त्राणि च पूजयेदिति।

वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं कुन्दपुष्पैर्मधुप्लुतैः।
दशांशं वैष्णवे वह्नौ जुहुयान्मन्त्रसिद्धये ॥ २३ ॥
अनन्तोग्न्यासनः सेन्दुर्बीजं रामायहृन्मनुः।
षडक्षरोऽयमादिष्टो भजतां कामदोमणिः ॥ २४ ॥

अस्य मन्त्रस्य ब्रह्माऋषिर्गायत्रंछन्दः श्रीरामोदेवताधनाद्यभीष्टार्थसिद्धौ विनियोगः। रां हृदयाय नमः, रीं शिरसे स्वाहा, रूँ शिखायै वषट्, रैं कवचाय हुँ, रौँ नेत्रत्रयाय वौषट्, रः अस्त्राय फट्, इति षडङ्गमन्त्राः। कराङ्गन्यासानन्तरं मन्त्रवर्णन्यासः, यथा ब्रह्मरन्ध्रे रां, भ्रूमध्ये रा, हृदि मा, नाभौ य, लिङ्गे न, पादयोः मः। विमलोत्कर्षणी ज्ञानाक्रियायोगाप्रह्वीसत्येशानानुग्रहाः पीठशक्तयः। ओँ नमो भगवते विष्णवेसर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगयोगपद्मपीठात्मने नमः इति पीठमन्त्रः।

कालाम्भोधरकान्तिकान्तमनिशं-
वीरासनाध्यासितम् ।
मुद्रां ज्ञानमयीं दधानमपरं
हस्ताम्बुजं जानुनि ॥ २५ ॥

सीतां पार्श्वगतां सरोरुहकरां-
विद्युन्निभां राघवम्,
पश्यन्तीं मुकुटाङ्गदादिविवधा-
कल्पोज्ज्वलाङ्गं भजे ॥ २६ ॥

इति ध्यानम्। आवरणपूजायां पार्श्वे श्री सीतायै नम इति मन्त्रेण सीतां, अग्रे वामदक्षिणपार्श्वयोः शार्ङ्गशरांश्च, तद्बहिः केसरेष्वग्न्यादिकोणेषु हृदयशिरः-शिखाकवचानि, अग्रे नेत्रम्, दिक्ष्वस्त्रम्, देवस्याग्रदलमारभ्य प्रादक्षिण्येन दलेषु हनुमत, सुग्रीव, भरत, विभीषण-लक्ष्मणाङ्गदशत्रुघ्नजाम्ववन्तः, अग्रादिदलाग्रेषु सृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धनअकोपधर्मपालसुमन्त्रान्; तद्बहिर्ल्लोक-पालान्, तद्बहिस्तदस्त्राणि च पूजयेत्। अत्र हनुमदादिध्यानम्—

वाचयन्तं हनूमन्तमग्रतोधृतपुस्तकम्
यजेद् भरतशत्रुघ्नौ पार्श्वयोर्धृतचामरौ ।
धृतातपत्रं हस्ताभ्यां लक्ष्मणं पश्चिमे यजेत् ।

इति ।

वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं दशांशं कमलैः शुभैः
जुहुयादर्च्चितवह्नौ ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ॥ २७ ॥

तारं नमो भगवते वराहपदमीरयेत ।
रूपाय भूर्भुवः स्वः स्यात्पतयेतदनन्तरम् ॥ २८ ॥

भूपति त्वं मे पदान्ते देह्यन्ते च ददापय ।
वह्निजायावधिर्मन्त्रः स्यात्त्रयस्त्रिंशदक्षरः ॥ २९ ॥

अस्य मन्त्रस्य भार्गवऋषिरनुष्टुप् छन्द आदिवराहो देवता भूम्याद्यभीष्ट-सिद्धौ विनियोगः। एकदंष्ट्राय हृदयाय नमः, व्योमोल्काय शिरसे स्वाहा, तेजोधिपतये शिखायै वषट्, विश्वरूपाय कवचाय हुँ, महादंष्ट्राय अस्त्राय फट्, इति पञ्चाङ्गमन्त्राः। विमलोत्कर्षणी ज्ञानाक्रियायोगाप्रह्वी सत्येशानानुग्रहाः पीठशक्तयः। ओँ भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगयोग-पद्मपीठात्मने नमः इतिपीठमन्त्रः॥

आपादं जानुदेशाद्वरकनकनिभं—
नाभिदेशादधस्ता,——
न्मुक्ताभं कण्ठदेशात्तरुणरविनिभं —
मस्तकान्नीलभासम्।
ईडे हस्तैर्दधानं रथचरणदरौ
खड्गखेटौ गदाख्यां —
शक्तिं दानाभये च क्षितिधरणलस —
द्दंष्ट्रमाद्यं वराहम्॥ ३०॥

इति ध्यानम्। उपरिहस्तयोश्चक्रशंखौ तदधोधः द्वौ द्वौ च ध्यातव्यौ। आवरणपूजायां केसरेषु पूर्वादिदिक्चतुष्टये हृदयशिरःशिखाकवचानि, अग्न्यादि-कोणचतुष्टये अधस्थिति ऊर्ध्वंञ्च अस्त्रं, पूर्वादिपत्रेषु चक्रशंखखड्गखेटकगदा-शक्तिवराभयानि, तद्बहिर्लोकपालान्, तद्बहिस्तदस्त्राणि च पूजयेत्, इति।

लक्षमेनंजपेन्मन्त्रं—
मधुराक्तैः सरोरुहैः।
जुहुयात्तद्दशांशेन—
पीठे विष्णोः प्रपूजनम्॥ ३१॥

अथाभिधास्ये विधिव—
न्नारसिंह महामनुम्।
उग्रवीरं वदेत्पूर्वं महाविष्णुमनन्तरम्॥ ३२॥

ज्वलन्तं पद्माभाष्य सर्वतोमुखमीरयेत , ।

नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युंमृत्युं वदेत्ततः ॥

नमाम्यहमयं प्रोक्तो मन्त्रराजः सुरद्रुमः ॥ ३३ ॥

अत्र वर्णन्यासे अपरांसे ककुदि चेदित्यत्रापरांशे पृष्ठभाग इत्यर्थं । "अपरे ककुदि न्यसेद् वर्णानि"ति प्रपञ्चसारः । अपरञ्च पृष्ठमिति तट्टीका ।

अस्य मन्त्रस्य ब्रह्माप्रजापतिर्वा नारदो वा ऋषिरनुष्टुप् छन्दो नरसिंहो देवता धनाद्यभीष्टसिद्धौ विनियोगः । उग्रं वीरं हृदयाय नमः, महाविष्णुं शिरसे स्वाहा ज्वलन्तं सर्वतोमुखं शिखायै वषट्, नृसिंह भीषणं कवचाय हुँ, भद्रं मृत्युमृत्युं नेत्रत्रयाय वौषट् , नमाम्यहं अस्त्राय फट् इति षडङ्गमन्त्राः ।

अथ मन्त्रवर्णन्यासः ॥ शिरसि उ, भाले ग्रं, नेत्रयोः क्रमेण वीरं, मुखे म, दक्षिणबाहुसन्धिचतुष्टयाङ्गुल्यग्रहेषु हा विष्णुं ज्वल, वामबाहुसन्धिचतुष्टयाङ्गुल्यग्रेषु न्तं सर्वतो मु, दक्षिणपादसन्धिचतुष्टयाङ्गुल्यग्रेषु खं नृसिंहं भी, वामपादसन्धिचतुष्टयाङ्गुल्यग्रेषु षणं भद्रं मृ, उदरे त्यु, हृदि मृ, गले त्युं, पार्श्वयोः नमा, पृष्ठे म्य, ककुदि हं ॥ विमलोत्कर्षणी ज्ञानाक्रियायोगाप्रह्वीसत्या ईशानानुग्रहाः पीठशक्तयः । ओं नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगयोगपद्मपीठात्मने नम. इतिपीठमन्त्रः ।

माणिक्याद्रिसमप्रभं निजरुचा

संत्रस्तरक्षोगणम् ।

जानुन्यस्तकराम्बुजं त्रिनयनं

रत्नोल्लसद्भूषणम् ॥ ३४ ॥

बाहुभ्यां धृतचक्रशंखमनिशं

दंष्ट्रोग्रवक्त्रोल्लस–

ज्ज्वालाजिह्वमुदग्रकेशनिचयं

वन्दे नृसिंहं विभुम् ॥ ३५ ॥

इतिध्यानम् ।

अत्रोपरितनहस्तयोः चक्रशंखौऽधस्तनौ तु जानुन्यस्तौ ध्यातव्यौ । आवरणे पूजायां केसरेष्वग्न्यादिकोणेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि, अग्रे नेत्राणि, दिक्ष्वस्त्रं,

दलेषु दिक्षु पक्षीन्द्रशङ्करशेषोयोनीन् । अग्न्यादिकोणदलेषु श्रीह्रीधृतिपुष्टीः, तद्बहिर्लोकपालान्, तद्बहिस्तदस्त्राणि च पूजयेदिति । प्रयोगे तु ध्यानविशेष :—

उद्यत्कोटिरविप्रभं नरहरिं
कोटीरहारोज्ज्वलम्
दंष्ट्राभीममुखं लसन्नखमुखै-
र्दीर्घैरनेकैर्भुजैः ॥ ३६ ॥
निर्भिन्नासुरनाथमग्निशशभृत्
सूर्यात्मनेत्रत्रयम् ॥
विद्युत्पुञ्जसटाकलापभयदं
वह्निं वमन्तं भजे ॥ ३७ ॥
सौम्ये सौम्यं स्मरेत्कार्ये
क्रूरे क्रूरमिमं भजेत् ।
वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं
तत्सहस्रं घृतप्लुतैः
पायसान्नैः प्रजुहुयात्
विधिवत्संस्कृतेऽनले ॥ ३८ ॥

अस्य मन्त्रस्य ब्रह्माऋषिः पङ्क्तिः छन्दो नरसिंहो देवता धनाद्यभीष्टसिद्धौ विनियोगः । आँ हृदयाय नमः, ह्रौं शिरसे स्वाहा, क्षौं शिखायै वषट् क्रों कवचाय हुं, हुं नेत्रत्रयाय वौषट्, फट् अस्त्राय फट्, इत्यङ्गमन्त्राः । विमलोत्कर्षणी ज्ञानाक्रियायोगाप्रह्वीसत्येशानानुग्रहाः पीठशक्तयः । ओं नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगयोगपद्मपीठात्मने नमः इति पीठमन्त्रः ।

पाशः शक्तिर्नरहरिरङ्कुशो वर्म्मफट् मनुः ।
षडक्षरो नरहरेः कथितः सर्वकामदः ॥ ३९ ॥

कोपाद्दालोलजिह्वं विवृतनिजमुखं

सोमसूर्य्याग्निनेत्रम् ।

पादादानाभिरक्तप्रभमुपरि सितं

भिन्नदैत्येन्द्रगात्रम् ॥ ४० ॥

चक्रं शंखं सपाशाङ्कुशकुलिशगदा-

दारणान्युद्वहन्तम्,

भीमं तीक्ष्णोग्रदंष्ट्रं मणिमय-

विविधाकल्पमीडे नृसिंहम् ॥ ४१ ॥

इति ध्यानम् ॥

अत्राधोमुखविमुखहस्तद्वयं दारणमुद्रातया हिरण्यकशिपं दारयन् देवो भावनीयः। आवणपूजा यथा केसरेष्वग्न्यादिकोणेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि। अग्रे नेत्राणि, दिक्ष्वस्त्रं, पत्रेषु चक्रशंखपाशाङ्कुशवज्रकौमोदकीखड्गखेटकं, तद्बहिरिन्द्रादीन्, तद्बहिस्तदस्त्राणि च पूजयेदिति।

चतुर्ल्लक्षं जपेदेनं घृतेन जुहुयात्ततः।

तत्सहस्रं समिद्धेऽग्नौ तोषयेद् द्रविणैर्गुरुम् ॥ ४२ ॥

तारोभृगुर्व्वियद्भूय-

स्तदाद्यं वह्निदीर्घयुक्।

पावकः कवचास्त्रान्तो

मनुः सप्ताक्षरः स्मृतः ॥ ४३ ॥

अस्य मन्त्रस्य अहिर्बुध्न्य ऋषिरनुष्टुप् छन्दः चक्रस्वरूपी हरिर्देवता अभीष्टार्थसिद्धौ विनियोगः। आचक्राय स्वाहा हृदयाय नमः, विचक्राय स्वाहा शिरसे स्वाहा; सुचक्राय स्वाहा शिखायै वषट्, धीचक्राय स्वाहा कवचाय हुं, संचक्राय स्वाहा नेत्राभ्यां वौषट्, ज्वालाचक्राय स्वाहा अस्त्राय फट् इत्यङ्ग-मन्त्राः। एतैः कराङ्गन्यासौ विधाय ऐं ह्रीं चक्रेण बध्नामि नमश्चक्राय स्वाहा इति पूर्वां दिशं बद्ध्वा ऐन्द्रीमिति स्थाने आग्नेयीमित्यादीनि पदानि उक्त्वा

आग्नेयाद्या अपि दिशो बध्नीयात्। ततः ओं त्रैलोक्यं रक्ष रक्ष हुँ फट् स्वाहा इति मन्त्रेण अग्निप्राकारेण रक्षां कृत्वा मन्त्रन्यासं कुर्यात्। शिरसि ओं, भ्रूमध्ये स, मुखे ह, हृदि स्रा, गुह्ये र, जानुनोः हँ, पदद्वयसन्ध्यौ फट्। अत्र सितरक्ताञ्जनाभ ओकारः। अन्ये तु वर्णा अग्निप्रभाध्येयाः। विमलोत्कर्षणो ज्ञानाक्रियायोगाप्रह्वीसत्येशानानुग्रहाः पीठशक्तयः। ओं नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगयोगपद्मपीठात्मने नमः इति पीठमन्त्रः।

कल्पान्तार्कप्रकाशं त्रिभुवनमखिलं-
तेजसा पूरयन्तम्
रक्ताक्षं पिङ्गकेशं रिपुकुलभयदं-
भीमदंष्ट्राट्टहासम् ।
चक्रं शंखं गदाब्जे पृथुतरमुशलं
चापपाशाङ्कुशान्स्वैः,
बिभ्राणं दोर्भिराद्यं मनसि मुररिपुं-
भावयेच्चक्रसंज्ञम् ॥ ४४ ॥

इति ध्यानम्।

अथावरणपूजायां यथा केसरेष्वग्न्यादिकोणेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि। अग्रे नेत्रे, दिक्ष्वस्त्रं, पत्रेषु चक्रशंखगदापद्ममुशलशरधनुःपाशाङ्कुशान्, दलाग्रेषु लक्ष्मीसरस्वतीरतिप्रीतिकीर्त्तिकान्तितुष्टिपुष्टीः, तद्बहिर्लोकपालान्, तद्बहिस्तदस्त्राणि च पूजयेत्॥ अथ लक्ष्म्यादिध्यानं सर्वा स्त्रीः स्मृताद्विशः पीतरक्तासितश्यामाः।

अर्कलक्षं जपेन्मन्त्रं जुहुयात्तत्सहस्रकम्।
तिलैः सर्षपाद्यैर्बिल्वैर्दुग्धौदनैःक्रमात् ॥ ४५ ॥

अथ गोपालमन्त्राः ॥

गोपीजनान्ते प्रवदेद् वल्लभायाग्निसुन्दरी ।
अयं दशाक्षरो मन्त्रो दृष्टादृष्टफलप्रदः ॥ ४६ ॥

अत्राङ्गानि पञ्चाहुतभुक्दयितासमेतै' रित्यादि पञ्चाङ्गदशाङ्गस्वरूपमात्रकथनपरम्, न तु तदा तन्न्यासपरमपि, एतदन्तरं बीजशक्तिविनियोगानामभिधानात्, नहि कराङ्गन्यासानन्तरं बीजादीनां स्मरणादि, किन्तु तदनन्तरमेव कराङ्गन्यासः। अतोऽङ्गुलीषु सृष्ट्यादिक्रमेण वर्णन्यासानन्तरमेव दशाङ्गन्यासपञ्चाङ्गकरन्यासौ। दशतत्त्वन्यासे "संहृतावनुगतो मनुवर्च्यः सृष्टिवर्त्मनि भवेत् प्रतियात" इत्यत्र "महीसलिलपावकानि वियन्ति गर्वो महान्," ततः प्रकृतिपुरुषौ पर इमानि तत्वान्यथे"ति पृथिव्यादिक्रमः संहारः, तद्वैपरीत्येन परपुरुषादिक्रमश्च सृष्टिक्रमः, प्रकृतेर्महान्, महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात्पञ्चतन्मात्राणि ततस्तु पञ्चभूतानीति सृष्टिक्रमाभिधानात् । शरीरे सृष्ट्यादिक्रमेण दशवर्णन्यासे 'मूर्धन्यक्ष्णोः श्रुत्योर्घ्राणे मुखहृदयजठरशिरजानूपत्सु तथाक्षरान् । न्यसेदुक्ता-सृष्टिः शिष्टैः स्थितिरपि मुनिभिरभिहिता हृदादिमुखान्तिका। संहारोऽङ्घ्या मूर्धान्तस्त्रितयमिति विरचयतु सृष्टिपूर्वमनुस्थिति' इत्यत्र स्थितौ हृदादिपञ्चके लकारादिपञ्चकन्यासः। मस्तकादिमुखान्तेषु गोकारादिपञ्चकन्यासः। संहारे तु प्रपदादिशिरोऽन्तं ह्लाकारादि गोकारान्त दश वर्णन्यासः इति मतमयुक्तम्, "स्थानार्णयोर्विनिमयो नाङ्गुलिस्थानयोर्भवेदिति तन्न्यासशेषस्थवचनेन विरोधापत्तेः, तन्मते स्थानार्णयोर्विनिमयाभावात्, "तस्मात् सृष्टिवत् स्थितावपि गोकारादि दशवर्णानां क्रमेण हृदयादिषु मुखान्तेषु संहारे प्रपदादिशिरोन्तेषु स्थानेषु न्यास इत्येव युक्तम्। सृष्टिपूर्वमिति सृष्ट्यनन्तरं स्थितिन्यासः, क्वचित् स्थित्यनन्तरं सृष्टिन्यासः पूर्वानुशब्दयोरुभयत्रान्वयादित्यर्थः। अत्र न्यासेऽङ्गुलिनियमे तथा विहिता शिवे, इति क्वचित्. केचित्तु श्रुवो विहिता शिवे इति पाठः। विभूतिन्यासे कन्धरानास्योरिति क्वचित्, कन्धवानाद्योरिति क्वचित्पाठः । विष्णुपञ्जरन्यासमन्त्रस्वरूपं प्रतिपादितं नारायणाष्टक्षरमन्त्रपरिच्छेदे । "सृष्टिस्थितीदशपञ्चाङ्गयुग्मं मुन्यादिकत्रितयं कारय हस्तु, विन्यस्य च ग्रन्थयित्वा तु भूयो मुद्रां" दिशां दशकं बन्धनीयमित्यनेन मुद्रादर्शनदिग्बन्धने विहिते तत्र उत्तरग्रन्थेन

मुद्रास्वरूपमुक्त्वा दिग्बन्धनमन्त्रं—"असून् प्रथयेन्मनुनास्त्रमुद्रया हरित इति स एव दिग्बन्धेऽस्त्रमुद्रा, न विधानायानूदितो नत्वन्यो दिग्बन्धो विहित इति। विभूति-न्यासे कारय क्षिश्रुतिनः कपोलकरपतसन्ध्यग्रशाखाष्टके. इत्यत्र दक्षिणहस्तसन्ध्यग्र शाखासु एका आवृत्तिः, एवमावृत्यन्तराणि। संप्रदायास्तु करपत्सन्ध्यग्रेष्वा-वृत्तिद्वयं ततः शाखास्वावृत्तिद्वयम् इति। अत्र मन्त्रविशेषस्थानादिभूतशुद्धान्तं कर्म केवलसविन्दुसविसर्गसविन्दुविसर्गान् केशवादिमूर्त्तिकीर्त्यादिशक्तिसहितान् श्रीबीजपूर्वकेशवादिमूर्त्तिकीर्त्यादिशक्तिसहितांश्च मातृकावर्णान् विन्यस्य प्रपञ्चयागं विधाय तद्वत् न्यासं विदध्यात्। केशवकीर्त्यादिसहितायाः श्रीबीजसहितायाश्च मातृकान्यासश्च मन्त्रपरिच्छेदोपक्रमे द्रष्टव्यः। ततो मूलेन कामनीजेन वा प्राणा-यामान् विधायान्तरपूजापक्षे शरीरे योगपीठन्यासं कुर्यात्। तत्र विमलोत्कर्षणी ज्ञानाक्रियायोगाप्रह्वीसत्येशानानुग्रहाः पीठशक्तयः। ओं नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगयोगपद्मपीठात्मने नमः इति पीठमन्त्रः। ततः करयोर्मूलमन्त्र न्यसेत्. ततोऽमुकदशाक्षरमन्त्रस्य नारदऋषिर्विराट्छन्दः श्रीकृष्णो देवता क्लीं वीजं स्वाहा शक्तिः कृष्णः प्रकृतिर्दुर्गाधिष्ठानदेवतापुरुषार्थ-चतुष्टये विनियोगः, इति स्मृत्वा शिरोवदनहृदयेषु ऋषिच्छन्दो देवताः गुह्ये वीजं पादयोः शक्तिञ्च न्यसेत्। ततः ओंकारपुटितं मूलमन्त्रं करयोरन्तर्बाह्य पार्श्वेषु विन्यस्य कराङ्गुलीषु प्रणवपुटितान्नमोऽन्तान् विन्दुसहितान् मन्त्रवर्णान् सृष्ट्यादिक्रमेण दशाङ्गुलीषु पर्वद्वयव्यापि न्यसेत्, यथा दक्षिणहस्तस्याङ्गुष्ठे ओं गों ओं नमः, तर्जन्यां ओं पीं ओं नमः, मध्यमायां, ओं जं ओं नमः अनामिकायाम्, ओं नं ओं नमः, कनिष्ठायां, ओं वं ओं नमः वामकरे कनिष्ठायां, ओं ल्लं ओं नमः। अनामिकायां ओं भां ओं नमः। मध्यमायां ओं यें ओं नमः। तर्जन्यां ओं स्वां ओं नमः अङ्गुष्ठे ओं हां ओं नमः, इति न्यसेदिति सृष्टिक्रमः। दक्षिणाङ्गुष्ठाद्यङ्गुलिपञ्चके ओं गों ओं नमः इत्यादिपञ्चकं विन्यस्य वामाङ्गुष्ठादितःकनिष्ठान्तं ओं ल्लं ओं नमः इत्यादिपञ्चकं न्यसेदिति स्थितिक्रमः। वामाङ्गुष्ठादिदक्षिणाङ्गुष्ठान्तं ओं गों ओं नमः इत्यादिदशकं न्यसेदिति संहारक्रमः। ततः गों नमो हृदयाय नमः, पीं नमः शिरसे स्वाहा, जं नमः शिखायै वषट्, नं नमः कवचाय हुं, वं नमः अस्त्राय फट्, ल्लं नमः दक्षिणपार्श्वाय नमः, भां नमः वामपार्श्वाय नमः, यें नमः कट्यै नमः, स्वां

नमः पृष्ठाय नमः, ह्रां नमो मूर्ध्ने नमः इति दशाङ्गमन्त्राः। केचित्तु गों नम इत्यादिमात्रान्मन्त्रानुच्चरन्ति, एतान् दशाङ्गमन्त्रान् स्थितिप्रकारेण विन्यसेत्— अत्र च केचित् शिरोमन्त्रादिष्वपि नम इत्येव वदन्ति, न तु स्वाहादीन्। ततः आचक्राय स्वाहा हृदयाय नमः, विचक्राय स्वाहा शिरसे स्वाहा, सु चक्राय स्वाहा शिखायै वषट्, त्रैलोक्यरक्षणचक्राय स्वाहा कवचाय हुँ, असुरान्तचक्राय स्वाहा अस्त्राय फट् इति पञ्चाङ्गमन्त्रान् करयोरङ्गुष्ठाद्यङ्गुलीषु विन्यस्य गोपीजन-वल्लभाय स्वाहा, अं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा, इत्यादिप्रकारेण मन्त्रपुस्ति सबिन्दुमातृकावर्णान् स्वस्वस्थानेषु विन्यसेत्। ततः संहारश्च स्थितिमार्गेण दशतत्त्वन्यासः, यथा पादयोः गों नमः पराय तेज आत्मने नमः, मुखे वं नमः पराय वाय्वात्मने नमः, शिरसि वं नमः परायाकाशात्मने नमः, हृदि ल्लं नमः परायाहङ्कारात्मने नमः, भां नमः पराय महदात्मने नमः, शकलशरीरे यं नमः पराय प्रकृत्यात्मने नमः, स्वां नमः पराय पुरुषात्मने नमः, ह्रां नमः पराय परात्मने नम इति न्यसेदिति संहारः। अथ सृष्टिप्रकारः॥ सकलवपुषि ह्रां नमः पराय परमात्मने स्वां नमः पराय पुरुषात्मने नमः, यँ नमः पराय प्रकृत्यात्मने नमः, हृदि भां नमः पराय महदात्मने नमः, ल्लं नमः पराया-हङ्कारात्मने नमः, शिरसि वं नमः परायाकाशात्मने नमः, मुखे नं नमः पराय वाय्वात्मने नमः, हृदि जं नमः पराय तेज आत्मने नमः, लिङ्गे पीं नमः पराया-वात्मने नमः, पादयो गों नमः पराय पृथिव्यात्मने नमः इति। ततः आके-शादापादं शरीरे ओंकारद्वयमध्यस्थं मूलमन्त्रं वारत्रयं हस्ताभ्यां विन्यस्य शरीरे सृष्ट्यादिमार्गेण मन्त्रवर्णान्विन्यसेत्, तद्यथा शिरसि गों, नेत्रयोः पीं, कर्णयोः जं, घ्राणे नं, मुखे वं, हृदि ल्लं, उदरे भां, लिङ्गे य, जानुनोः स्त्रां, पादयोः ह्रां, इति विन्यसेदिति सृष्टिः। पादयोः गों, जानुनोः पीं, लिङ्गे जं, हृदि वं, मुखे ल्लं, घ्राणे भां, कर्णयोः यं, नेत्रयोः स्वां, शिरसि ह्रां, इति न्यसेदिति संहारः। हृदि गों, उदरे पीं, लिङ्गे जं, जानुनोः नं, पादयोः वं, शिरसि ल्लं, नेत्रयोः भां, कर्णयोः यं, घ्राणे स्वां, मुखे ह्रां, इति न्यसेदितिस्थितिप्रकारः। त्रिष्वपि प्रकारेषु शिरशि मध्यमया, नेत्रयोस्तर्जनीसहितया मध्यमया कर्णयोः अनङ्गुष्ठाभिश्चत-सृभिः, घ्राणे अङ्गुष्ठाभ्यामनामिकाभ्यां, मुखे सर्वाभिः हृदि अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां, जठरलिङ्गयोः अङ्गुष्ठमध्यमाभ्यां, जानुनोरङ्गुष्ठेतराभिः, पादयोः पञ्चभिर-

प्यङ्गुलीभिस्तद्वद्वर्णन्यासं कुर्यात्। श्रुवो विहिताः शिवे इति पाठपक्षे लिङ्गे अङ्गुष्ठेतराभिर्न्यासः। न्यासश्चायं यतिवैखानसयोः सृष्टिस्थितिसंहारक्रमेण, गृहस्थस्य संहारसृष्टिस्थितिक्रमेण, वैराग्ययुक्त गृहस्थस्य तु यतिक्रमेण, विद्यार्थिनां संहारस्थितिसृष्टिस्थितिक्रमेण बोद्धव्यः। अथ विभूतिपञ्जरन्यासः॥ आधारे गो, लिङ्गे पी, नाभौ ज, हृदि न, गले व, मुखे ल्ल, अंसयोः भाय, ऊर्वोः स्वाहा॥ १॥ कन्धरानाभ्योः गोपीकन्धरानाभ्योरिति पाठपक्षे कन्धरानाभ्योः गोपी, कुक्षौ ज, हृदि न, स्तनयोः वल्ल, पार्श्वयोः भा य, श्रोण्योः स्वाहा॥ २॥ शिरसि गो, मुखे पी, नेत्रयोः जन, कर्णयोः वल्ल, नासापुटयोः भाय, कपोलयोः स्वाहा॥ ३॥ दक्षिणकरस्थ सन्ध्यग्रेषु गोपीजनव, वामकरसन्ध्यग्रेषु ल्लभाय स्वाहा॥ ४॥ दक्षिणपादस्थ सन्ध्ग्रेष गोपीजनव, वामपादस्य सन्ध्ग्रेषु ल्लभाय स्वाहा॥ ५॥ दक्षिणहस्तस्याङ्गेष्ठादिपञ्चाङ्गुलीषु गोपीजनव, वामहस्तस्य कनिष्ठादिषु ल्लभाय स्वाहा॥६॥ दक्षिणपादकनिष्ठादिषू गोपीजनव, वामपादस्याङ्गुष्ठादिषु ल्लभाय स्वाहा॥ ७॥ अथवा दक्षिणहस्तस्य सन्ध्ग्रेषु गोपीजन व, तदङ्गुलीषू ल्लभाय स्वाहा—एवं अपरकरपादद्वयेषू, एवमावृत्तिचतुष्टयं ज्ञेयम्। शिरसि गो, शिरसः पूर्वादिक्षु क्रमेण पी जन व, सकले शिरसि ल्ल, भुजयोः भाय, अरुद्वये स्वाहा च॥ शिरसि गो, नेत्रयोः पी, मुखे ज, कण्ठे न, हृदि व, तुन्दे ल्ल, मूलाधारे भा. लिङ्गे य, जानुनोः स्वा, पादाग्रयोः हा॥ ९॥ श्रोत्रयोः गो, गण्डयोः पी, अंसयोः ज, स्तनयोः न, पार्श्वयोः व, स्फिचोः ल्ला, ऊर्वोः भा, जानुनोः य, जंघयोः स्वा, पादयोः हा, इति॥ १०॥ दशावृत्या मन्त्रं न्यसेदिति। ततो मूर्त्तिपञ्जरन्यासः॥ यथा ललाटे ओँ अं केशवधातृभ्यान्नमः, उदरे न आं नारायणार्य्यमभ्यां नमः। हृदि मो इं माधवमित्राभ्यान्नमः। गलकूवरे भ ईं गोविन्दवरुणाभ्यान्नमः। दक्षिणपार्श्वे गं उं विष्वंशुभ्यान्नमः। दक्षिणांसे व ऊं मधुसूदनभगाभ्यान्नमः, गलदक्षिणभागे ते एं त्रिविक्रमविवस्वद्भ्यान्नमः। वामपार्श्वे वा ऐं रामनेत्राभ्यान्नमः। वामांसेषू ओं श्रीधरपूषभ्यान्नमः। गलवामभागे औं हृषीकेशपर्यन्याभ्यां नमः। पृष्ठे वां अं पद्मनाभत्वष्टृभ्यान्नमः। ककुदि य अः दामोदरविष्णूभ्यान्नमः। इति विन्यस्य शिरसि द्वादशाक्षरं न्यसेत् ओँ अं धातृसहितकेशवाय नमः, इत्यादयो वा न्यासमन्त्राः। ततः पूर्वोक्तं शरीरे मूर्द्धादिषु पूर्वोक्तसृष्टिस्थितिप्रकाराभ्यां मन्त्रन्यासं हृदादिषु गों नमो हृदयाय नम इत्यादि दशाङ्गपञ्चाङ्गञ्च शिरोरसनाहृद्द्येषु ऋषिच्छन्दो-

देवतानि च विन्यस्य वेणुविल्वादिमन्त्राः प्रदर्श्यास्त्रमुद्रया ओं नमः सुदर्शनायास्त्राय फट् इति सुदर्शनमन्त्रेण दिग्बन्धनं कुर्यात् ॥ ततो ध्यानम् ॥ अथ प्रकटसौरभाकुलितेत्यादि विस्तारतः क्रमदीपिकायामनुसन्धेयम् । संक्षेपस्तु—

स्मरेद् वृन्दावने रम्ये मोहयन्तमनारतम् ।
गोविन्दं पुण्डरीकाक्षं गोपकन्याः सहस्रशः
आत्मनो वदनाम्भोजप्रेषिताक्षिमधुव्रताः ।
पीडिताः कामबाणेन चिरमश्लेषलोलुपाः ॥ ४७ ॥
मुक्ताहारलसत्पीनतुङ्गस्तनभरानताः ।
स्रस्तधाम्मिलवसना मदस्खालितभाषणाः ॥ ४८ ॥
दन्तपङ्क्तिप्रभोद्भासिस्पन्दमानाधराञ्चिताः ।
विलोभयन्ती विविधैर्विभ्रमैर्भावगर्भितैः ।
फुल्लेन्दीवरकान्तिमिन्दुवदनं बर्हावतंसप्रियम् ।
श्रीवत्साङ्कमुदारकौस्तुभधरं पीताम्बरं सुन्दरम् ॥ ४९ ॥
गोपीनां नयनोत्पलार्चिततनुं गोगोपसंघावृतम्
गोविन्दं कलवेणुवादनपरं दिव्याङ्गभूषं भजे ॥ ५० ॥
तद्बहिरग्रे वित्तार्थिनः स्तोत्रपरान्मुनीन्
पश्चान्मुक्तिकामान् समाधिपरान्सनकादीन् ॥ ५१ ॥

वामे कामान्विनो नृत्यगीतपरान् सिद्धगन्धर्वाप्सरसः प्रभृतीन्, उपरि भजिकामं महत्या गायन्तं नारदं स्मरेत् ॥ इति ॥ ततोऽर्घस्थापनं विधाय आन्तरपक्षे मूर्ध्नि गुरुं, आधारे गणेशं, हृदयादिषु यथान्यासमाधारशक्त्यादिपीठान्तं मूलाधारे हृदि भ्रूमध्ये च देवतातेजश्च संपूज्य तड़ित्प्रभं तत्तेजस्त्रयं बीजैनैकीकृत्य सकलीकृत्य देवशरीरे विभूतिमूर्तिपञ्चरसृष्टिस्थितिदशाङ्गपञ्चाङ्गानि विन्यस्यासनादिभिर्भूषणान्तैर्देवमभ्यर्च्य जलगन्धादिभिरर्चयेत् । देवशरीरे विभू-

तिमूर्त्तिपञ्जरसृष्टिस्थितिदशाङ्गपञ्चाङ्गानि मुखे वेणुं, हृदि वनमाला, स्तनादूर्ध्वं श्रीवत्सं कौस्तुभमभ्यर्च्य मूलेन चन्दनानुलिप्तदेहोऽनामिकया भालादिषु द्वादशस्थानेषु दीपशिखाकृतान् तिलकान् न्यासोक्तमूर्त्तिपञ्जरमन्त्रैः कुर्यात्। ततः दक्षिणपादे श्वेततुलस्या वामपादे कृष्णतुलस्या, हृदि श्वेतरक्तकरवीराभ्यां— शिरसि श्वेतरक्तपद्मद्वयेन सर्वाङ्गेषु तुलसीद्वयकरवीरद्वयपद्मद्वयैःप्रशस्तपुष्पाञ्जलिपञ्चकं दद्यात्—तत्र श्वेतचन्दनसिक्तानि दक्षिणभागे देयानि, अपराणि रक्तचन्दनसिक्तानि वामभागे। ततो धूपदीपौ समर्प्य मुखवासादिकं दत्वा— पुनर्गन्धादिभिरभ्यर्च्य ताम्बूलगीतनर्तनवाद्यैः सन्तोष्य ओँ—इतः पूर्वं प्राणबुद्ध्यादिमन्त्रेण चूल्लुकजलेनात्मानं ब्रह्माणं समर्पयेत्। सङ्कुचितधियस्तु मूर्त्तिपञ्जरमारभ्यैव न्यासान् कुर्युः, ततः प्राणायामत्रयं कृत्वा सुप्रसन्नं देवं चिन्तयन् जपं कृत्वा प्रणवपुटितं बीजमष्टोत्तरशतं जप्त्वा प्राणायामान् विधाय गुह्यातिगुह्येत्यादिमन्त्रेण दक्षिणदेवहस्ते चूल्लुकोदकेन जपं समर्पयेत्। सर्वमेतद्वारिकार्यं प्रोक्षिणीवारिणैव कर्तव्यम्, ततः प्रोक्षिणीजलं विसृज्य जलान्तरेण पूरयेत्।

अथ वाह्यपूजा॥ लिखितयन्त्रे गुर्वादिज्ञानात्मपर्य्यन्तं संपूज्य केशरेषु मध्ये च पीठशक्तीः सम्पूज्य ओँ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगयोगपद्मपीठात्मने नम इति पीठमन्त्रेण पीठमभ्यर्च्य मूलेन मूर्त्ति परिकल्प्य ओँ अमुकमूर्त्तये नम इति मूर्त्तिं सम्पूज्य तत्र देवमावाह्य स्थापनादीनि परमीकरणपर्य्यन्तानि कृत्वा मातृकावर्णानां तत्त्वमन्त्राणाञ्च पूर्वोक्तानां न्यासेन सकलीकृत्य त्रिभूषणदानान्तं विधाय मन्त्रपुटितमातृकार्णैर्देवं गन्धपुष्पाभ्यामभ्यर्च्य देवशरीरे सृष्टिस्थितिदशाङ्गपञ्चाङ्गवेणुवनमालाश्रीवत्सकौस्तुभान् संपूज्य मूलेन पुष्पाञ्जलिभिरभ्यर्च्य तुलस्यादिभिः पुष्पाञ्जलिपञ्चकं पादादिषु दत्वावरणपूजां कुर्यात्—यथा कर्णिकायां दिक्षु दाम,-सुदाम, वसुदाम किङ्किण्यः, केशरेष्वग्न्यादिकोणेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि, दिक्ष्वस्त्रं—दलेषु रुक्मिणी-सत्यभामा, नाग्नजिती, सुनन्दा, मित्रविन्दा, सुलक्षणा, जाम्बवती, सुशीलाः, दलाग्रेषु वसुदेव, देवकी, नन्दगोप, यशोदा, बलभद्र, सुभद्रा, गोपगोप्यः। मध्ये वसुदेवादिभ्यो बहिश्च मन्दार, सन्तानक, पारिजात, कल्पद्रुम, हरिचन्दनाः, तद्बहिरिन्द्रादयः, तद्बहिरस्त्राणि च जलगन्धपुष्पैः पूजनीयानि, ततः श्रीकृष्ण, वासुदेव,

नारायण, देवकीनन्दन. यदुश्रेष्ठ, वार्ष्णेय—असुराक्रान्तभारहारि—धर्मसंस्थापकान् पुष्पैः पूजयेत्। सकलावरणपूजाशक्तावङ्गेन्द्रवज्रादिभिः कृष्णाद्यष्टकेन च, तत्राशक्तौ श्री कृष्णाद्यष्टकेनैव पूजयेत्। ततो धूपमारभ्यार्घदानानन्तरपुष्पाञ्जलिदानपर्य्यन्तं कृत्वा शेषं समापयेदिति ॥

अथ रुक्मिण्यादिध्यानम्——

दक्षिणकरधृतकमला
वसुभरितसुपात्रमुद्रितान्यकराः ।
उपनीय मरकताभाः
सुचितविचित्रा सुराद्दिशस्त्वेताः ॥ ५२ ॥

पृथुकुचभरालसाङ्ग्यो
विविधमणिप्रकरविलासिताभरणाः ॥ ५३ ॥

रुक्मिणीसत्ययोरनुक्रमेण श्वेतचित्रवस्त्रश्वेततपनीय मकरताभत्वे चेति। एवं नग्नेजितीसुनन्दयोः इत्यादि द्विश इत्यस्यार्थः ॥

ज्ञानमुद्राभयकरौ पितरौ पीतपान्डरौ ।
दिव्यमाल्याम्बरालेपभूषणे मातरौ पुनः ॥ ५४ ॥

धारयन्तौ च वरदं पायसापूपपात्रिकाम् ।
अरुणश्यामले हारमणिकुण्डलमण्डिते ॥ ५५ ॥

बलः शंखेन्दुधवलो मुशलं लाङ्गुलं दधत् ।
हालालोलोनीलवासा हेलावानेककुण्डलः ॥ ५६ ॥

कलायश्यामलाभद्रा अभद्राभद्रभूषणौ ।
वराभययुतापीतवसनारूढयौवना ॥ ५७ ॥

वेणुवीणावेत्रयष्टिशंखशृङ्गादिपाणयः ।
गोपागोप्यश्च विविधप्राभृतार्णकराम्बुजाः ॥ ५८ ॥

त्रिकालपूजाविधिः क्रमदीपिकायामनुसन्धेयः। पुरश्चरणे⋯⋯

प्रजपेदयुतचतुष्कं दशाक्षरं मनुवरं पृथक्क्रमशः।
अष्टादशाक्षरञ्चेदयुतद्वयमीरितासंख्या ॥ ५९ ॥

इत्याद्यभिधाय—

गदितमिति मया पूर्व्वसेवाविधानं
निवृत्तेऽस्मिन्पुनश्च प्रजपतु विधिवत्सिद्धये साधकेशः ॥ ६० ॥

इत्यादि चोक्त्वा—

दशलक्षमक्षयफलप्रदं
मनुं प्रतिजप्यशिक्षितमतिर्दशाक्षरम्।
जुहुयाद्गुडाज्यमधुसप्लुतैर्नवैर-
रुणाम्बुजैर्हुतवहे दशायुतम् ॥ ६१ ॥

शुषिरयुगलवर्णं चेन्मनुं पञ्चलक्षम्।
प्रजपतु जुहुयाच्च प्रोक्तक्लृप्त्यार्द्धलक्षम् ॥ ६२ ॥

अमलमतिरलाभे पायसैःपङ्कजानां।
सहितघृतसितैरेवाराररमेद्धोमकर्म्म ॥ ६३ ॥

इति क्रमदीपिकायामर्थः पूर्वमेव पुरश्चरणं तद्विधानमिति कथितम्। सिद्धये तत्तत्फलकर्म्मसिद्धये। पुन⋯⋯निवृत्ते प्रजपतु सिद्धिविशेषेच्छया कथितं, दशलक्षमक्षयफलप्रदमित्यादि। यत्तु "प्रजपेदयुतचतुष्क"मिति तु पुरश्चरणाङ्गपूर्वसेवाख्यं कर्मान्तरं—पुरश्चरणन्तु दशलक्षमित्यादिनोक्तमिति मतम्, तन्न अष्टादशाक्षरगोपालमन्त्रे—

मन्त्रमेनं यथान्यायमयुतं द्वितयं जपेत्।
जुहुयादरुणाम्भोजैस्तद्दशांशं समाहितः ॥ ६४ ॥

अत्र अयुतद्वयस्यैव पुरश्चरणे जपस्याभिधानेन तद्विरोधापत्तेः। तत्र जपान्तरस्याप्यभिधानात् ॥

कृष्णाय पद्माभाष्य गोविन्दाय ततः परम्
गोपीजनपदस्यान्ते वल्लभाय द्विठावधिः ।
कामबीजादिराख्यातो मनुरष्टादशाक्षरः ॥ ६५ ॥

स्नानादिभूतसिद्धिपर्य्यन्तं कर्म्मकृत्वा सविन्दुसविसर्गांश्रविन्दुविसर्गान् केशवादिमूर्त्तिकीर्त्यादिशक्तिसहितान् श्रीवोजमूर्त्तिशक्तिसहितांश्च मातृकावर्णान् विन्यस्य तत्त्वन्यासं विदध्यात्–केशवकीर्त्यादि सहितायाः श्रीबीजशक्तिसहितायाश्च मातृकान्यासस्तत्त्वन्यासश्च विष्णुमन्त्रपूजापरिच्छेदोपक्रमे द्रष्टव्यः । ततो मूलेन कामबीजेन वा प्राणायामान् कृत्वा आन्तरपूजापक्षे योगपीठन्यासं कुर्यात्, तत्र विमलोत्कर्षणी ज्ञानाक्रियायोगाप्रह्वीसत्येशानानुग्रहाः पीठशक्तयः । ओँ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगयोगपद्मपीठात्मने नम इति पीठमन्त्रः । ततः करयोर्मूलमन्त्रं विन्यस्य अमुकमन्त्रस्य नारदऋषिर्गायत्रीछन्दः श्रीकृष्णो देवता क्लीँ बीजं स्वाहा शक्तिः कृष्णः प्रकृति दुर्गाधिष्ठानदेवता पुरुषार्थचतुष्टये विनियोगः । इति स्मृत्वा ऋषिछन्दादेवतानां शिरोमुखहृदयेषु लिङ्गे बीजस्य पादयोः शक्त्योर्न्यासं संविधाय क्लीँ कृष्णाय हृदयाय नमः गोविन्दाय शिरसे स्वाहा, गोपीजनशिखायै वषट्, वल्लभाय कवचाय हुँ, स्वाहा अस्त्राय फट् इति पञ्चाङ्गमन्त्रानङ्गुष्ठाद्यङ्गुलिपञ्चके करद्वये विन्यस्य सकलशरीरे दशोर्मूलं सकृत्त्रणवञ्च विन्यस्य मन्त्रवर्णन्यासङ्कुर्यात्, शिरसि क्लीँ, ललाटे कृ, भ्रूमध्ये ष्णा, कर्णयोः य गो, नेत्रयोः विन्दा, नासापुटयोः य गो, मुखे पी, ग्रीवायां ज, हृदि न, नाभौ व, कटिद्वये ल्लभा, लिङ्गे य, जानुनोः स्वा, पादयोः हा । ततः शिरसि तु ओँकारं न्यसेत् । ततो मन्त्रपादन्यासः । यथा नेत्रयोः क्लीँ, मुखे कृष्णाय हृदि गोविन्दाय, गुह्ये गोपीजनवल्लभाय ... ...। पादयोः स्वाहा, इति विन्यस्य झटितिफलसिद्धिकामनायां दशाक्षरोक्तदशतत्त्वन्यासं कुर्यात्—स यथा पादयोः गोँ नमः पराय पृथिव्यात्मने नमः, लिङ्गे पीं नमः परायावात्मने नमः, हृदि जं नमः पराय तेन आत्मने नमः, मुखे नं नमः पराय वाय्वात्मने नमः, शिरसि वं नमः परायाकाशात्मने नमः, हृदि ल्लं नमः परायाहङ्कारात्मने नमः, भां नमः पराय महदात्मने नमः, सकलशरीरे यं नमः परायप्रकृत्यात्मने नमः, स्वां नमः पराय पुरुषात्मने नमः, हां नमः पराय

परमात्मने नमः इति न्यसेत् इति संहारक्रमः। अथ सृष्टिक्रमः। सकलवपुषि ह्रां नमः, पराय परमात्मने नमः, स्वां नमः पराय पुरुषात्मने नमः, यं नमः परायप्रकृत्यात्मने नमः, हृदि भां नमः पराय महदात्मने नमः, ल्लं नमः पराया हङ्कारात्मने शिरसि वं नमः परायाकाशात्मने नमः, मुखे नं नमः पराय वाय्वात्मने नमः, हृदि जं नमः पराय तेज आत्मने नमः, लिङ्गे पीं नमः परायावात्मने नमः, पादयोः गों नमः पराय पृथिव्यात्मने नमः इति। ततो हृदादिषुपञ्चाङ्गमन्त्रान् शिरोवदनहृत्सु ऋषिच्छन्दो देवतानि विन्यस्य विल्वादिमुद्राः प्रदर्श्य ओं नमः सुदर्शनायास्त्राय फट् इति सुदर्शनमन्त्रेणास्त्रमुद्रया दिग्बन्धनं कुर्यात्। शिष्टं ध्यानादिसर्वं दशाक्षरतुल्यं केवलमन्त्रदेवशरीरे विभूति विष्णु पञ्जरसृष्टिस्थितिदशाङ्गानां न्यासः पूजा च न विधेयौ पञ्चाङ्गवेण्वादीनान्तु विधेयाएवेति, पुरश्चरणे—

अयुतद्वयंजपस्तद्दशांसं गुडाज्यमध्वक्तैररुणाम्भोजैर्जुहुयात्, तदभावे "घृतसितांयुतैः पायसैर्होमः। सिद्धिविशेषान्वितायान्तु पञ्चलक्षं जपस्तद्दशांशं होमः, एतत्प्रमाणं दशाक्षरपटले प्रोक्तम् ॥

श्रीमन्मुकुन्दचरणौ सदेति शरणन्ततः।
अहं प्रपद्य इत्युक्तो मौकुन्दाष्टादशाक्षरः ॥ ६६ ॥

एतन्मन्त्रादिमन्त्रचतुष्कमुक्त्वा 'अङ्गान्यमीषां मन्त्राणामाचक्रादिभिरर्चना'। "अङ्गैरिन्द्रादिवज्राद्यैरुदिता सम्पदे सदे"ति वचनेऽमीषामिति पदेनास्यापि संग्रहः। अन्यथात्राङ्गमन्त्रानिश्चयो न स्यात्". तथा च पूजाप्यावरणत्रयेणैवस्या"स्मनुस्तजपध्यानपूजाहोमफलोत्कार" इत्यनेनावरणातिरिक्तपूजाष्टादशाक्षरसमावोच्यते, नत्वावरणमपि, 'अर्चनाङ्गैरिन्द्रादिवज्राद्यैरिति विशेषाभिधानात्, एवमेव सिद्धनाथदिकृताः क्रमदीपिकाटीकाः। विमलोत्कर्षणी ज्ञानाक्रियायोगाप्रह्वीसत्येशानानुग्रहादिभिः पीठशक्तिभिः पीठन्यासपर्यन्तङ्कृत्वा करयोर्मूलं विन्यस्य,—अस्य मन्त्रस्य नारदऋषिर्गायत्रीछन्दो मुकुन्दो देवता पुरुषार्थचतुष्टये विनियोगः इति स्मृत्वा मस्तकादिषु ऋष्यादित्रयं विन्यस्य आचक्राय स्वाहा हृदयाय नमः, विचक्राय स्वाहा शिरसे स्वाहा, सुचक्राय स्वाहा शिखायै वषट्, त्रैलोक्यरक्षणचक्राय स्वाहा कवचाय हुं, असुरान्तचक्राय स्वाहा अस्त्राय फट् इत्यङ्गमन्त्रान् करयोरङ्गुष्ठादि पञ्चाङ्गुलीषु विन्यस्य मन्त्रगुटितमातृकावर्णान् यथास्थानं

न्यसेत्। ततो झटिति फलसिद्धिकामनायां दशाक्षरोक्तदशतत्त्वन्यासं कुर्यात्। ततो हृदयादिष्वङ्गमन्त्रान् मस्तकादिषु ऋष्यादींश्च विन्यस्य मुद्राः प्रदर्श्य "ओं नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फट्" इति सुदर्शनमन्त्रेण दिग्बन्धनं कुर्यात्, ततो ध्यानादि शेषं, ततो ध्यानमित्यादिदशाक्षरसमं केवलं देवशरीरे विभूतिविष्णु-पञ्जरसृष्टिस्थितिदशाङ्गानां न्यासः पूजा च। न तद्वद् विधेया पश्चाङ्गवेण्वा-दीनान्तु, विधातव्यैवेति आवरणानि चाङ्गलोकपालतदायुधानीति। पुरश्चरणं कामबीजाद्यष्टादशाक्षरतुल्यम्॥

शक्तिश्रीपूर्वकोऽष्टादशार्णो विंशतिवर्णकः॥

मन्त्रेण व्यापकं विधाय करन्यास इति सिद्धनाथटीका। आवरणपूजायां—

आदौ वह्निपुरद्वन्द्वकोणेष्वङ्गानि पूजयेत्।
सकृच्छिरः शिखावर्म नेत्रमस्त्रमितिक्रमात्॥ ६७॥

इत्यङ्गावरणं कोणेषु यथाक्रमं पूजनीयम्, नतु मन्त्रान्तवत्, न त्वत्र हृदयादिक्रमो विधीयते। तस्य प्राप्तत्वात्। किन्तु कोणेषु क्रमेण कोणे हृदयादि-पूजनम् इत्यप्राप्तं विधीयत इति। विमलोत्कर्षिणीज्ञानाक्रियायोगाप्रह्वीसत्येशानानुग्रहाः पीठशक्तयः। ओं नमो भगवते इत्यादि पीठमन्त्रकपीठन्यासान्तं विधाय अस्य मन्त्रस्य ब्रह्माऋषिर्गायत्रीछन्दः कृष्णोदेवता क्लीं वीजं स्वाहा शक्तिः—कृष्णः प्रकृतिदुर्गाधिष्ठानदेवता पुरुषार्थचतुष्टये विनियोगः इति स्मृत्वा मस्तकादिषु ऋष्यादिपञ्चकं विन्यस्य ह्रीं श्रीं क्लीं हृदयाय नमः, कृष्णाय शिरसे स्वाहा, गोविन्दाय शिखायैवषट्, गोपीजनकवचाय हुं, वल्लभाय नेत्राभ्यां वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट् इति षडङ्ग मन्त्रानङ्गुष्ठादिषु विन्यस्य मूलेन व्यापकं कृत्वा मूलपुटितमातृकावर्णान् स्वस्वस्थानेषु विन्यस्य संहारसृष्टिमार्गाभ्यां दशतत्त्व-न्यासं कुर्यात्। यथा पादयोः गों नमः पराय पृथिव्यात्मने नमः, लिङ्गे पीं नमः परायावात्मने नमः, हृदि जं नमः पराय तेजआत्मने नमः, मुखे नं नमः पराय वाय्वात्मने नमः, शिरसि वं नमः परायाकाशात्मने नमः, हृदि ल्लं नमः परायाहङ्कारात्मने नमः, भां नमः पराय महदात्मने नमः, सकलशरीरे यं नमः पराय प्रकृत्यात्मने नमः, स्वां नमः पराय पुरुषात्मने नमः, हां नमः पराय परमात्मने नमः इति संहारक्रमः॥ सकलशरीरे हां नमः परायपरमात्मने नमः,

स्वां नमः पराय पुरुषात्मने नमः, यं नमः पराय प्रकृत्यात्मने नमः, हृदि मां नमः पराय महदात्मने नमः, ल्लं नमः परायाहङ्कारात्मने नमः, शिरसि वं नमः परायाकाशात्मने नमः, मुखे नं नमः पराय वाय्वात्मने नमः, हृदि जं नमः पराय तेज आत्मने नमः, लिङ्गे पीं नमः परायावात्मने नमः, पादयो गों नमः पराय पृथिव्यात्मने नमः इति सृष्टिप्रकारः। पुनर्मूलेन व्यापकं कृत्वा सृष्टिस्थिति-संहारसृष्टिस्थितिक्रमेण पञ्चावृत्त्या मन्त्रवर्णान् विन्यसेत् यथा शिरसि ह्रीं, भाले श्रीं, भ्रूमध्ये क्लीं, चक्षुषोः कृ, कर्णयोः ष्णा, नासापुटयोः य, मुखे गो, चिबुके वि, कण्ठे न्दा, दोर्मूलयोः य, हृदि गो, तुन्दे पी, नाभौ ज, लिङ्गे न, आधारे व, कट्योः ल्ल, जानुनोः भा, जंघयोः यं, गुल्फयोः स्वा, पादयोः हा इति सृष्टिः॥ हृदि गो इत्यादि दशवर्णान् विन्यस्य शिरसि ह्रीं इत्यादि दोर्मूलयोः य इत्यन्तवर्णदशकं न्यसेदिति स्थितिः॥ पादयोः इत्यादि शिरसि श्रीं इत्यन्तं वैपरीत्येन मन्त्रवर्णान्न्यसेदिति संहारः। पुनः पूर्ववत् सृष्टिः ततः पूर्ववदेव स्थितिरिति। ततो मूर्त्तिपञ्जरन्यासः॥ ललाटे ओं अं केशवधातृभ्यां नमः, धातृसहितकेशवाय नम इति वा, एवमग्रेऽपि, उदरेण आं नारायणा-र्यमभ्यां नमः, हृदि मो इं माधवमित्राभ्यान्नमः, गलकूबरे भगं गोविन्दवरुणा-भ्यान्नमः, दक्षिणपार्श्वे गं उं विष्णुपूभ्यान्नमः, दक्षिणांसे ब ऊं मधुसूदन भगाभ्यान्नमः, गलदक्षिणभागे ते एं त्रिविक्रमविवस्वद्भ्यां नमः, वामपार्श्वे वा ऐं वामनेन्द्राभ्यान्नमः, वामांसे सु ओं श्रीधर पुरुषाभ्यान्नमः, गलवामभागे दे ओं हृषीकेशपर्जन्याभ्यान्नमः, पृष्ठे वा अं पद्मनाभत्वष्टृभ्यान्नमः, ककुदि य अंः दामोदरविष्णुभ्यान्नमः, इति विन्यस्य शिरसि द्वादशाक्षरं न्यसेत्। ततः पुनः सृष्टिस्थितिप्रकाराभ्यां मन्त्रवर्णन्यासं कृत्वा हृदयादिषु षडङ्गन्यासं कृत्वा ऋषिच्छन्दोदेवताः शिरोरसनाहृदयेषु विन्यस्य बिल्वादिमुद्राः प्रदर्श्य किरीटमुद्रां बध्वा ओं नमः सुदर्शनास्त्राय फडित्यस्त्रमुद्रया दिग्बन्धनं कुर्यात्।

अथ ध्यानम्—

द्वारवत्यां सहस्रार्कभास्वरैर्भवनोच्चयैः

अनल्पैः कल्पवृक्षैश्च परीते मणिमण्डपे॥ ६८॥

ज्वलद्रत्नमयस्तम्भद्वारतोरणकुड्यके ।

फुल्लस्रगुल्लसच्चित्रवितानालम्बमौक्तिके ॥ ६९ ॥

पद्मरागस्थलीराजद्रत्नमध्योऽश्वमध्यतः ।

अनारतगलद्रत्नस्वधन्य········स्तरोरधः ॥ ७० ॥

रत्नप्रदीपावलिभिः प्रदीपितदिगन्तरे ।

उद्यदादित्यसंकाशमणिसिंहासनाम्बुजे ॥ ७१ ॥

समासीनोऽच्युतोध्येयोद्रुतहाटकसन्निभः ।

समानोदितचन्द्रार्कतड़ित्कोटिसमद्युतिः ॥ ७२ ॥

सर्वाङ्गसुन्दरः सौम्यः सर्वाभरणभूषितः ।

पीतवासाश्चक्रशंखगदापद्मोज्ज्वलद्भुजः ॥ ७३ ॥

अनारतोच्छलद्रत्नधारौघकलशं स्पृशन् ।

वामपादाम्बुजाग्रेण····   ····   ···· रिं ॥ ७४ ॥

रुक्मिणीसत्यभामेऽस्यमूर्ध्निरत्नौघधारया ।

सिञ्चन्त्यौ दक्षवामस्थेमुदोःस्थकलशोत्थया ॥

नाग्नजिती सुनन्दा च दिशन्त्यौ कलशौ त····॥ ७५ ॥

ताभ्यां च दक्षिणवामस्थेमित्रविन्दासुलक्षणे ।

रत्नद्योः समुद्धृत्य रत्नपूर्णौ घटौ तयोः ॥ ७६ ॥

जाम्बवती सुशीला च दिशन्त्यौ दक्षवामके ।

वहिः षोडशसाहस्रसंख्याताः परितः प्रियाः॥ ७७ ॥

ध्येयाः कनकरत्नौघधारायुक्कलशोज्ज्वलाः ।

तद्वहिश्चाष्टनिधयः पूरयन्तोधनैर्द्धराम् ॥ ७८ ॥

तद्वहिर्वृष्ट्यः सर्वे पुरोवच्च सुरादयः। वाममधो हस्तमारभ्य तदुपरि हस्तान्तं चक्रादिचतुष्टयं ध्येयम् । पुरोवदिति—

गोपीगोपपशूनां बहिः स्मरे-
दग्रतोऽस्यगीर्वाणघटाम् ।
चिताम्भिर्नीविरञ्चित्रिनयनशत-
मन्युपूर्व्विकां स्तोत्रपराम् ॥ ७९ ॥

तद्दक्षिणतो मुनिनिकरं धर्मवाँच्छमाम्नायन्तोत्रपरम् ।
योगीन्द्रानथ पृष्ठे मुमुक्षुमाणान् समाधिना सनकाद्यान् ॥ ८० ॥

सव्ये सकान्तानथसिद्धयक्ष-
गन्धर्वविद्याधरचारणांश्च ।
सकिन्नरानप्सरश्चमुख्याः
कामान्धिनो नर्तनगीतवाद्यैः ॥ ८१ ॥

उपरिश्वेतवर्णं वीणया परमेश्वरं प्रीणयन्तं पिङ्गजटं परमेश्वरभक्तिकामं नारदं चिन्तयेदिति दशाक्षरोक्तमतिदिष्टम् ।

ततोऽर्घस्थापनं कुर्यात् ॥

तत आन्तरपूजा तत्र वीजेन तेजस्मयस्यैकीकरणानन्तरं देवशरीरे मूर्त्तिपञ्जरसृष्टिस्थितिषडङ्गानि न्यसेत्, ततो भूषणदानपर्य्यन्तं विधाय देवशरीरे मूर्त्तिपञ्जरादीनि पूजयेत्, शेषं दशाक्षरान्तरपूजावत्कुर्यात् ।

अथ बाह्यपूजा

तत्र स्वर्णादिपात्रे गन्धपङ्कलिप्ते यन्त्रं लिखेद्यथा—

विलिप्य गन्धतोयेन लिखेदष्टदलाम्बुजम्
कर्णिकायान्तु षट्कोणं ससाध्यं तत्र मन्मथम् ॥ ८२ ॥
शिष्टैस्तं संसदशमिरक्षयैर्वेष्टयेत् स्मरम् ।
प्राग्रक्षोनिलकोणेषु श्रियं शिष्टेषु सम्विदम्
षडक्षरं सन्धिषु च केसरेषु त्रिशस्त्रिशः ॥ ८३ ॥

विलिखेत् स्मरगायत्रीं मालामन्त्रं दलाष्टके

षट्शः संलिख्य तद्बाह्यो वेष्टयेमातृकाक्षरैः ॥ ८४ ॥

भूविभुञ्च लिखेद्बाह्ये श्रीमायादिविदिक्ष्वपि ।

सम्वित् मायावीजं क्लीँ कृष्णाय नमः इति षडक्षरमन्त्रः। कामदेवाय विद्महे पुष्पवाणाय धीमहि तन्नोऽनङ्ग प्रचोदयात् इति स्मरगायत्री। नमः कामदेवाय सर्वजनप्रियाय सर्व्वजनसम्मोहनाय ज्वल ज्वल प्रज्वल सर्वजनस्य हृदयं ममवशं कुरु कुरु स्वाहा इति मालामन्त्रः इति मन्त्रं विलिख्य गुर्वादिज्ञानात्मपर्य्यन्तं सम्पूज्य केसरेषु मध्ये च विपलोत्कर्षिणी ज्ञानाक्रियायोगाप्रह्वी सत्येशानानुग्रहाः पीठशक्तीः सम्पूज्य ओँ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासदेवायसर्वात्मसंयोगपीठात्मने नम इति पीठमन्त्रेण पीठं सम्पूज्य मूलेन मूर्त्ति परिकल्प्य श्री गोपालमूर्त्तये नमः इति मूर्त्ति सम्पूज्य तत्र देवतामावाह्य भूषणदानपर्य्यन्तं विधाय मन्त्रपुटितमातृकावर्णैरभ्यर्च्य देवशरीरे यथास्थानं सृष्टिस्थितिषडङ्गकिरीटकुण्डलद्वयचक्रशंखगदापद्ममालाश्रीवत्सकौस्तुभान् सम्पूज्य मूलेन यवगन्धपुष्पैरभ्यर्च्य चरणादिषु पुष्पाञ्जलिपञ्चकं दत्वावरणपूजां कुर्यात्। षट्कोणस्य पूर्वादिकोणेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि नेत्रेऽस्त्राणि दशमूलेष्वाग्नेयादिकोणेषु वासुदेवसङ्कर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धान् दिक्षु शान्तिलक्ष्मीसरस्वतीरतीः। ततः दक्षवामक्रमेण पत्राग्रेषु वा रुक्मिणी सत्यभामा नाग्नजिती, सुनन्दा, मित्रविन्दा, जाम्ववती सुशीला, तद्बहिः एकदैव षोडश सहस्राणि गोपालप्रियाः। तद्बहिः, इन्द्रनिधि, नीलनिधि, मुकुन्दनिधि, मकरनिधि, आयन्दनिधि कच्छपनिधि, शंखनिधि, पद्मनिधीन्, तद्बहिरिन्द्रादीन्, तद्बहिर्व्ज्रादीँश्च सम्पूज्य ततो धूपदानानि, पुनरर्घदानानन्तरपुष्पाञ्जलिपर्य्यन्तं विधाय दधिखण्डाज्यमिश्रपायसबुद्धया तोयेन पूर्वोक्तप्रकारेण तर्पयित्वा विसर्जनान्तं कर्म कृत्वा सपरिवारं देवं स्वहृदयमानीयाङ्गन्यासादिकं कृत्वात्मानं गन्धादिभिरभ्यर्च्य प्राणायामान् कृत्वा तन्मयः सन् यथाशक्तिमन्त्रं जपेत्। ततः प्राणायामजपसमर्पणादिकं कुर्यादिति। रुक्मिण्यादिध्यानं दशाक्षरपूजायां द्रष्टव्यम्।

ध्यात्वैवं परमात्मानं विंशत्यर्णं मनुं जपेत् ।

चतुर्ल्लक्षं हुतेदाज्यैश्चत्वारिंशत्सहस्रकम् ॥ ८५ ॥

वाग्भवं मारवीजञ्च कृष्णाय भुवनेश्वरीम् ।
गोविन्दाय रमा गोपीजनवल्लभङेशिरः ॥ ८६ ॥

चतुर्दशस्वरोपेतः·········शुक्लः सर्गी तदूर्ध्वतः ।
द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो वागीशत्वप्रदायकः ॥ ८७ ॥

तदूर्ध्वतः स्वाहानन्तरमित्यर्थः, केचित्तु तदूर्ध्वतः तेषां वर्णानामुपरि प्रथमत इत्यर्थं इत्याहुः। अस्य मन्त्रस्य नारदऋषिर्गायत्रं छन्दः श्रीकृष्णो देवता क्लीं बीजं स्वाहा शक्तिः कृष्णः प्रकृतिदुर्गाधिष्ठानदेवता वागाद्यभीष्टसिद्धौ विनियोगः। अत्रान्यत्सर्वमङ्गमन्त्रध्याने विहाय विंशत्यक्षरवत्, तत्रापि मन्त्रन्यासो विंशत्यर्णो साधारणतया न ध्येयः। आन्तरपूजायां बाह्यपूजायाञ्च सृष्टिस्थित्योर्न्यासः, पूजनञ्च न विधातव्यम्। अङ्गमन्त्रास्तु क्लीं कृष्णाय हृदयाय नमः, गोविन्दाय सिरसे स्वाहा, गोपीजनवल्लभाय शिखायै वषट्, वल्लभाय कवचाय हुँ, स्वाहा अस्त्राय फट्, इति।

ध्यानन्तु—

वामोर्ध्वहस्ते दधतं विद्यासर्वस्वपुस्तकम् ।
अक्षमालाञ्च दक्षोर्ध्वे स्फाटिकींमातृकामयीम् ॥ ८८ ॥

शब्दब्रह्ममयं वेणुमधः पाणिद्वयेरितम् ।
गायन्तं पीतवसनं श्यामलं कोमलच्छविम् ॥ ८९ ॥

बर्हिवर्हकृतोत्तंसं सर्वज्ञसर्ववेदिभिः ।
उपासितं मुनिगणैरुपतिष्ठद् हरिं सदा ॥ ९० ॥

ध्यात्वैवं प्रमदास्त्वेष विलासं भुवनेश्वरम् ।
चतुर्लक्षं जपेन्मन्त्रमिमंमन्त्री स्वयं यतः ।
पलाशपुष्पैः स्वाद्वक्तैश्चत्वारिंशत्सहस्रकम् ॥
जुहुयात्कर्मणानेन मनुः सिद्धो भवेद्ध्रुवम् ॥ ९१ ॥

"श्री शक्तिस्मरकृष्णाय गोविन्दाय शिरो मनुः"।

अस्य मन्त्रस्य ब्रह्माऋषिर्गायत्रीछन्दः कृष्णो देवता ऐश्वर्ये विनियोगः। श्रीं हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा, क्लीं शिखायै वषट्, कृष्णाय कवचाय हुँ, गोविन्दाय नेत्राभ्यां वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट्, इत्यङ्गमन्त्राः। शेषं सर्वं विंशत्यक्षरवत्, तत्रापि विंशत्यर्णवर्णन्यासादेव शरीरे सृष्टिस्थित्योर्न्यासः पूजने च न विधेयानि, तन्मन्त्रसाधारणत्वात्, पुरश्चरणमपि विंशत्यक्षर-तुल्यमेव ॥

श्रीशक्तिकामपूर्वाङ्गे जन्मशक्तिरमान्तिकः।

दशाक्षरः स एवादौ स्याच्चेच्छक्तिरमान्वितः ॥ १२ ॥

मन्त्रौ विकृतिरव्यर्णावाचक्राद्यङ्गिनाविमौ।

दशाक्षर इत्यन्तेन षोडशाक्षरः। स एवेत्यादिना द्वादशाक्षरः प्रतिपादितः। अत्र आदौ शक्तिरमान्वित इति सम्बन्ध इति केचित्। अनयोर्मन्त्रयोः ब्रह्मा ऋषिर्गायत्री छन्दः श्रीकृष्णो देवता सम्पत्सुखसौभाग्येषु विनियोगः। एतयोरपि मन्त्रयोरङ्गमन्त्रध्याने विहाय सर्वं विंशत्यक्षरवत्। विंशत्यर्णोक्तो वर्णन्यासः परं न विधेयः, देवशरीरे सृष्टिस्थित्योर्न्यासः पूजनञ्च न विधेये। पञ्चाङ्गमन्त्रास्तु आचक्राय स्वाहा हृदयाय नमः, विचक्राय स्वाहा शिरसे स्वाहा, सुचक्राय स्वाहा शिखायै वषट्, त्रैलोक्यरक्षण चक्राय स्वाहा कवचाय हुँ, असुरान्तचक्राय स्वाहा अस्त्राय फट् इति।

ध्यानन्तु—

ध्यायेदथाच्युतं—

वरदाभयहस्ताभ्यां श्लिष्यन्तं स्वाङ्कके प्रिये।

पद्मोपलकरे ताभ्यां श्लिष्टं चक्रदहोज्ज्वलम् ॥ १३ ॥

प्रिये रुक्मिणीसत्यभामे,

चक्रशंखावुपरितलदक्षिवामहस्तयोः।

दशलक्षजपादाज्यैस्तावत्साहस्रहोमतः।

सिद्धाविमौ मनूसम्पत्सुखसौभाग्यदायकौ ॥ १४ ॥

मारशक्तिरमापूर्वः शक्तिः श्रीरामपूर्वकः ।
श्रीशक्तिमारपूर्वश्च दशार्णो मनवस्त्रयः ॥ ९५ ॥

एषु प्रथममन्त्रस्य नारदऋषिर्विराटच्छन्दः श्रीकृष्णो देवता सम्पत्तिकान्त्योर्विनियोगः। आचक्राय स्वाहा हृदयाय नमः, विचक्राय स्वाहा शिरसे स्वाहा, सुचक्राय स्वाहा शिखायै वषट्, त्रैलोक्यरक्षणचक्राय स्वाहा कवचाय हुँ, असुरान्तचक्राय स्वाहा अस्त्राय फट् इत्यङ्गमन्त्राः। विमलोत्कर्षणी, ज्ञाना-क्रियायोगाप्रह्वीसत्येशानानुग्रहाः पीठशक्तयः। ओं नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगयोगपद्मपीठाय नमः इति पीठमन्त्रः।

शङ्खचक्रधनुर्बाणपाशाङ्कुशधरोऽरुणः ।
वेणुं धमन् धृतं दोर्भ्यां ध्येयः कृष्णो दिवाकरे ॥ ९६ ॥

इति ध्यानम् ।

आवरणपूजायां केसरेष्वग्न्यादिकोणेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि, दिक्ष्वस्त्रं तद्बहिरिन्द्रादीन्, तद्बहिस्तदस्त्राणि च पूजयेत् । द्वितीयतृतीयमन्त्रयोस्तु ध्याने परं विशेषः, तत्र द्वितीयमन्त्रे द्वारवत्यां सहस्रोऽर्केत्यादि विंशत्यक्षरवत्, तृतीय-मन्त्रे तु—फुल्लेन्दीवरकान्तिमित्यादिदशाक्षरवत्, शेषं सर्वं प्रथममन्त्रतुल्यमेव ॥

पञ्चलक्षं जपेत्तावदयुतं पायसैर्हुनेत् ।
एतैः सिद्ध्यन्ति मनवः सुखसम्पत्प्रदायकाः ॥ ९७ ॥
अष्टादशार्णो मारान्तो मनुः सुतधनप्रदः ।

अस्य मन्त्रस्य नारदऋषिर्गायत्र छन्दः श्री कृष्णो देवता क्लीं बीजं स्वाहा शक्तिः सुताद्यभीष्टसिद्धौ विनियोगः। क्लीं हृदयाय नमः, क्लीं शिरसे स्वाहा, क्लूं शिखायै वषट्, क्लैं कवचाय हुँ, क्लौं नेत्रत्रयाय वौषट्, क्लः अस्त्राय फट् इत्यङ्गमन्त्राः। विमलोत्कर्षणीज्ञानाक्रियायोगाप्रह्वी सत्येशानानुग्रहाः पीठशक्तयः। ओं नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोग-योगपद्मपीठात्मने नम इति पीठमन्त्रः।

पाणौ पायसभक्तमर्चितरसं—

विभ्रन्मुदा दक्षिणे;

सर्वे शारदचन्द्रमण्डलनिभं—

हैयङ्गवीनं दधत् ।

कण्ठे कल्पितपुण्डरीकनखम्—

त्युद्दामदीप्तिं दधत्—,

देवो दिव्यदिगम्बरो दिशतु नः

सौख्यं यशोदाशिशुः ॥ ९८ ॥

इति ध्यानम् ।

पद्मस्थश्च देवं पूजयेत् । आवरणपूजा तु केसरेष्वाग्न्यादिकोणेषु हृदयाशिरः शिखाकवचानि । दिक्ष्वस्त्रं, तद्बहिरिन्द्रादीन्, तद्बहिस्तदस्त्राणि च पूजयेत् ।

दिनशोऽभ्यर्च्य गोविन्दं द्वात्रिंशल्लक्षमानतः ।
जप्त्वा दशांशं जुहुयात् सिताब्जेन पयोन्धसा ॥ ९९ ॥

पद्मस्थं देवमभ्यर्च्य तर्पयेत्तन्मुखाम्बुजे ।
क्षीरेण कदलीपक्वैर्दध्ना हैयङ्गवेन च ॥ १०० ॥

तारं हृद्भगवान् ङेन्तो नन्दपुत्रपदं तथा ।
नन्दान्ते वपुषेऽस्थग्निमायान्तो दशवर्णकः ॥ १०१ ॥

अष्टाविंशत्यक्षरोऽयं त्र्वेद्वात्रिंशदक्षरम् ।
नन्दपुत्रपदं ङेन्तं श्यामलाङ्गं पदं तथा ॥
तथाबालवपुः कृष्णगोविन्दौ दशवर्णकः ॥ १०२ ॥

तथाङ्गेन्तमित्यर्थः । कृष्णगोविन्दावित्यत्र तथेत्यनुषज्यते, प्रथममन्त्रे मारइकारः सचात्र सविन्दुरिति सम्प्रदायः । मायान्ते दशवर्णक इति पाठे स्पष्ट एवार्थः । मायान्तो दशवर्णक इति पाठेऽपि मायाया अन्त इति तत्पुरुषे

स एवार्थः। कश्चित्तु दशाक्षरान्ते श्रीबीजमित्यर्थमाह। अनयोर्म्मन्त्रयोर्नारदऋषिर्यथाक्रममुष्णिगनुष्टुभौ छन्दसी श्रीकृष्णो देवता ऐश्वर्ये विनियोगः। शेषं ध्यानवर्जमारशक्तिरमापूर्वक इत्यादि त्रयोदशाक्षरवत्।

ध्यानन्तु—

दक्षिणे रक्तचषकं वामे सौवर्णवेत्रकम्।
करे दधानं देवीभ्यामाश्लिष्टं चिन्तयेद्धरिम्॥ १०३॥

इति।

जपेल्लक्षं मनुवरौ पायसैरयुतं हुनेत्॥
तारं हृद्भगवान् ङेन्तो रुक्मिणीवल्लभस्तथा।
शिरोऽन्तः षोडशार्णोयं रुक्मिणीवल्लभाह्वयः॥ १०४॥

अस्य मन्त्रस्य नारदऋषिरनुष्टुप्छन्दो रुक्मिणीवल्लभो देवता पुरुषार्थचतुष्टये विनियोगः। ओं हृदयाय नमः, नमः शिरसे स्वाहा, भगवते शिखायै वषट्, रुक्मिणीवल्लभाय कवचाय हुं, स्वाहा अस्त्राय फट् इति पञ्चाङ्गमन्त्राः। विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशाना, अनुग्रहाः पीठशक्तयः। ओं नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगयोगपद्मपीठात्मने नम इति पीठमन्त्रः।

तापिच्छछवि रङ्कगां प्रियतमां—
स्वर्णे प्रभामम्बुज—
प्रोद्यद्वामभुजां स्वबाहुलतया—
श्लिष्यन् स्वचिन्तास्मया।
श्लिष्यन्तीं स्वयमन्यहस्तविलस—
त्सौवर्णवेत्रश्रियं—
पायाद्वोऽसनसूनपीतवसनो
नानाविभूषो हरिः॥ १०५॥

इति ध्यानम् ।

स्वचिन्ताश्मया शोभनचिन्तामणियुजयेत्यर्थः । क्वचित् सचिन्ताश्मयेत्यपि पाठः। अथावरणपूजा—केसरेष्वग्न्यादिकोणेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि। दिक्ष्वस्त्रं, दलेषु नारदपर्वत, निशचोद्धव, दारुक, विष्वक्सेन, शंलेयान्, अग्रे गरुडं, तद्बहिरिन्द्रादीन्, तद्बहिस्तदस्त्राणि च पूजयेदिति ।

ध्यात्वैवं रुक्मिणीनाथं जपे—

लक्षमिमं मनुं ।

अयुतं जुहुयात्पद्मैररुणै—

र्मधुराप्लुतैः ॥ १०६ ॥

लीलादण्डावधौ गोपीजन—

संसक्त दोः पदम् ।

दण्डान्ते बालरूपेति मेघश्यामपदन्ततः ॥

भगवान् विष्णुरित्युक्त्वा वह्निजायान्तको मनुः ।

एकोन त्रिंशदर्णोस्य मुनिर्नारदईरितः ॥ १०७ ॥

अस्य मन्त्रस्य नारदऋषिरनुष्टुप्छन्दोलीलादन्ड हरिर्देवतासकल जन-पूज्यत्वसम्पत्त्योर्विनियोगः। लीलादण्ड गोपीजनसंसक्तदोर्दण्डहृदयाय नमः, बालरुपशिरसे स्वाहा, मेघश्याम शिखायै वषट्, भगवान् कवचाय हुँ, विष्णो स्वाहा अस्त्राय फट् इति पञ्चाङ्ग मन्त्राः। विमलोत्कर्षिणीज्ञानाक्रियायोगा-प्रह्वीसत्येशानानुग्रहाः पीठशक्तयः। ओँ नमो भगवते विष्णवे इत्यादिपीठ-मन्त्रः।

सम्मोहयन्निजकवामकरस्थलीला—

दण्डेन गोपयुवतीःपुरसुन्दरीश्च ।

दिश्यान्निजप्रियतमां सगदक्षहस्तो—

देवःश्रियं निहतकंसतरुक्रमो वः ॥ १०८ ॥

इति ध्यानम् ।

प्रियतमस्याङ्कः ॥ आवरणपूजायां केसरेष्वग्न्यादिकोणेषु हृदयशिरःशिखा-कवचानि । दिक्ष्वस्त्रं, तद्बहिरिन्द्रादीन्, तद्बहिस्तदस्त्राणि च पूजयेत्—

ध्यात्वैवं प्रजपेल्लक्षमयुतंतिलतण्डुलैः ।
त्रिमध्वक्तैर्हुनेदङ्गदिक्पालास्त्रैः समर्चयेत् ॥ १०९ ॥

चक्रीमुनिवसुयुतः सर्ग्येकार्णोमनुर्मतः ।
वक्ष्यते सर्ववर्णस्यात् कृष्णाय नम इत्यपि ॥ ११० ॥

कृष्णायेति स्मरद्वन्द्वमध्ये पञ्चाक्षरो मनुः ।
षडक्षरः प्रागुदितः कृष्णगोविन्दकौ पुनः ॥ १११ ॥

सचतुर्थी सप्तवर्णः सप्तार्णोन्यः पुरोदितः ।
कृष्णगोविन्दकौ ङेन्तौ स्मराद्यावष्टवर्णकः ॥ ११२ ॥

दधिभक्षण ङेवह्निजायाभिरपरोऽष्टकः
प्राक्प्रोक्तौ मूलमन्त्रश्च नवार्णःस्मरसंपुटः
कृष्णगोविन्दकौ ङेन्तावेतेषां नारदो मुनिः ॥ ११३ ॥

प्रथममन्त्रे मुनिस्वरयुत इत्यत्र वसुस्वरयुत इति क्वचित्पाठः । एषु सप्ताक्ष-राष्टाक्षरयोर्वक्ष्यमाणस्य चतुरक्षरस्य च तत्तावदक्षर—

कृष्णेति द्व्यक्षरः कामपूर्वस्त्र्यर्णः स एवतु ।
स एव चतुर्वर्णः स्यात् ङेऽन्तोऽन्यश्चतुररः ॥ ११४ ॥

प्रसङ्गमात्रेण कथनं नतत्रोक्तविधिप्राप्त्यर्थं पूजाविधिविशेषस्य तत्रतत्र दर्शितत्वात् । "अष्टाक्षरो ऋषिर्ब्रह्मासमुद्दिष्ट" इति ऋष्यन्तरस्य सप्ताक्षरे आचक्राद्यैरङ्गक्लृप्तिरित्यादिना ऋष्यादितयाङ्गान्तराणाञ्चाभिधानात् । छन्दसि विकल्पस्याप्यभावात् । वक्ष्यमाणचतुरक्षरे "ऋष्याद्यङ्गषट्कञ्च प्रागुक्तं प्रोक्त-मस्य तु" इत्यनेन पूर्वमन्त्रोक्तं ऋष्यादिरिति दिश्यते । नत्वस्यैवप्रागुक्तमभि-

धीयते। अन्यथा प्रागुक्तमित्येव ब्रूयात्, न तु प्रागुक्तं प्रोक्तमस्यत्विति। एवञ्चैतदपि वचनं यथोक्त एव प्रमाणं भवति। अतएव तत्रतत्र पुरश्चरणमप्य-न्यथैव दर्शितम्, तथा च एतेषां नारदो मुनिरित्येतच्छब्देनापि न ते गृह्यन्ते, तदन्यमन्त्राणान्तु नारदऋषिर्गायत्रीछन्दः श्रीकृष्णो देवता पुरुषार्थचतुष्टये विनियोगः। क्लाँ हृदयाय नमः, क्लीँ शिरसे स्वाहा, क्लूँ शिखायै वषट्, क्लैँ कवचाय हुँ, क्लौँ नेत्राभ्यां वौषट्, क्लँः अस्त्राय फट् इत्यङ्गमन्त्राः। विमलो-त्कर्षिणीज्ञानक्रियायोगाप्रह्वीसत्येशानानुग्रहाः पीठशक्तयः। ओँ नमो भगवते विष्णव इत्यादिपीठमन्त्रः।

अव्याद्व्याकोषनीलाम्बुजरुचिररुणा-
म्भोजनेत्रोऽम्बुजस्थो-
बालो जङ्घाकटीरस्थलकलितरण-
त्किङ्किणीको मुकुन्दः।
दोर्भ्यां हैयङ्गवीनं दधदतिविमलं
पायसं विश्ववन्द्यो-
गोगोपीगोपवीती रुरुनखविलस-
त्कण्ठभूषश्चिरं वः॥ ११५॥

रुरुर्व्याघ्रः। इति ध्यानम्। अथवा भुवनमोहनोक्तस्वरूपं ध्यानम्। आवरणपूजायां केसरेऽग्न्यादिकोणेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि; अग्रे नेत्रं, दिक्ष्वस्त्रं, तद्बहिरिन्द्रादीन्, तद्बहिर्वज्रादींश्च पूजयेत्। जपानन्तरं तर्पणञ्च कुर्यात्।

ध्यात्वैवमेवमेतेषांलक्षंजप्यान्मनुन्ततः।
सर्पिः सितोपलोपेतैः पायसैरयुतं हुनेत्
तर्पयेत्तावदेतेषां मनूनां हुतसंख्यया॥ ११६॥
सद्यः फलप्रदं मन्त्रं वक्ष्येऽन्यं चतुरक्षरम्।
सम्प्रोक्तो मारयुग्मान्तरस्थकृष्णपदेन तु॥ ११७॥

मारयोरस्य मां साधो रक्तश्वेदपरोमनुः ।

अनयोः प्रथममन्त्रस्य नारदऋषिर्गायत्री छन्दः श्रीकृष्णो देवता धनाद्यभीष्टसिद्धौ विनियोगः। क्लाँ हृदयाय नमः क्लीँ शिरसे स्वाहा, क्लूँ शिखायै वषट्, क्लैँ कवचाय हुँ, क्लौँ नेत्राभ्यां वौषट्, क्लः अस्त्राय फट् इति षडङ्गमन्त्राः। विमलोत्कर्षिणीज्ञानाक्रियायोगाप्रह्वी सत्येशानानुग्रहाः पीठशक्तयः। ओँ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगयोगपद्मपीठात्मने नम इति पीठमन्त्रः।

श्रीमद्कल्पद्रु ...... मूलोद्गत–
कमललसत्कर्णिकासंस्थितो य–,
स्तच्छाखालम्बिपद्मोदर–
विसरदसंख्यातरत्नाभिषिक्तः ।
हेमाभः स्वप्रभाभिस्त्रिभुवनमखिलं–
भासयन् वासुदेवः;
पायाद्वः पायसादोऽनवरत–
नवनीतामृताशीवशीवः ॥ ११८ ॥

इति ध्यानम् । आवरणपूजायां केसरेष्वग्न्यादिकोणेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि । अग्रे नेत्रं, दिक्ष्वस्त्र, दलेषु इन्द्रनील, मुकुन्द, मकर, आनन्द, कच्छप, शंखपद्मनिधीन्, तद्बहिरिन्द्रादीन् तद्बहिस्तदस्त्राणि च पूजयेदिति ।

मधुघृतशर्कराबुद्धया पूजान्ते प्रत्यहं तर्पयेत् । द्वितीयमन्त्रस्य तु ध्यानवर्जं सर्वं प्रथममन्त्रवत् । ध्यानन्तु––

आरक्तोद्यानकल्पद्रुमशिखरलसत
स्वर्णदोलाधिरूढम् ।
गोपाभ्यां प्रेक्ष्यमाणं विकसितनवब–
न्धूकसिन्दूरभासम् ।

बालं लोलालकान्तं कटितटविलुठत्-

क्षुद्रघन्टाघटाढ्यम् -

वन्दे शार्दूलकामाङ्कुशलसितगला-

कल्पदीप्तं ज्वलन्तम् ॥ ११९ ॥

इति शार्दूलकामाङ्कुशं शार्दूलनखमित्यर्थः ।

वक्ष्ये मनुद्वयमथातिरहस्यमन्य-

त्संक्षेपतो भुवनमोहननामयेयम् ।

ब्रह्मेन्द्रवामनयनेन्दुभिरादिमोऽन्यः

तत्पूर्वकं वियदृषीकयुतेशङे हृत् ॥ १२० ॥

वियद्धृषीकं हृषोकमितिरूपं पीठमन्त्रभूतम्। गरुड़मन्त्रमुद्धरतीतिटीकाया-मभिधानाद् गरुड़मन्त्र एव पोठमन्त्रः। युक्तश्चैतत्। सपूर्वकृत्यभूतशुद्धिमातृ-कान्यासकेशवकीर्त्यादिन्यास श्रीबोजपूर्वककेशवकीर्त्यादिन्यासतत्त्वन्यासप्राणा-यामान् कृत्वा विमलोत्कर्षिणीज्ञानाक्रियायोगाप्रह्वीसत्येशानानुग्रहाः रूप-पीठशक्तिपर्य्यन्तं पीठन्यासं कृत्वा "पक्षिराजाय स्वाहा", इति पीठमन्त्रेण गरुड़मासनं विन्यस्य अनयार्मन्त्रयोः सम्मोहननारदऋषिर्गायत्रं छन्दः त्रैलोक्य-संमोहनविष्णुर्देवता पुरुषार्थचतुष्टये विनियोगः, इति स्मृत्वा ऋष्यादीन् मस्तकादिषु च विन्यस्य क्लां हृदयाय नमः, क्लीं शिरसे स्वाहा क्लूं शिखायै वषट्, क्लैं कवचाय हुं, क्लौं नेत्रत्राय वौषट्, क्लः अस्त्राय फट् इति षडङ्गमन्त्रान् अङ्गुष्ठाद्यङ्गुलीषुकरतल करपृष्ठयोश्च विन्यस्य अङ्गुष्ठयोः ह्रां शोषणवाणाय नमः, तर्जन्योः ह्रीं मोहनवाणाय नमः, मध्यमयोः क्लीं दोपनवाणाय नमः, अनामिकयोः क्लूं सन्तापनवाणाय नमः, कनिष्ठयोः सः मादनवाणाय नमः इति विन्यस्य मूलपुटितमातृकावर्णान् हृदयादिषु षडङ्गानि विन्यस्य, शिरसि अङ्गुष्ठेन ह्रां शोषणवाणाय नमः, मुखे तर्जन्या ह्रीं मोहनवाणाय नमः, हृदि मध्यमया क्लीं दीपनवाणाय नमः, जानुनोः अनामिकया क्लूं सन्तापनवाणाय नमः, पादयोः कनिष्ठया सः मादनवाणाय नमः, इति न्यसेत्। दशतत्त्वन्यासो

मूर्त्तिपञ्जरन्यासश्च यदि विधीयते तदा दशाक्षरपटलेऽनुसन्धेयां । [illegible]ः ऋष्यादि-
न्यासं विधाय मुद्राः प्रदर्श्य ओँ नमः सुदर्शनायास्त्राय फट् इति दिग्बन्ध[illegible]र्यात् ।
ततो ध्यानम्—

दिव्यतरूद्यानोदयद्रुचिर-
महाकल्पपादपाधस्तात् ।
मणिमयभूतलविलसद्भद्र-
पयोजन्मपीठनिष्ठस्य ॥ १२१ ॥

विश्वप्राणस्योद्यतप्रद्योतन-
सद्युतेः सुपर्णस्य ।
आसीनमुन्नताङ्गे विद्रुमभङ्गा-
ङ्गमङ्गजोन्मथितम् ॥ १२२ ॥

चक्रदरां कुशपाशकसुमनो
वाणेक्षुचापकमलगदाः ।
दधतं स्वदोर्भिररुणायत-
विपुलघूर्णिताक्षियुगनलिनम् ॥ १२३ ॥

मणिमयकिरीटकुण्डलहाराङ्गद-
कङ्कणोर्म्मिरसनाद्यैः ।
अरुणैर्माल्यविलेपैरादीप्तं
पीतवस्त्रपरिधानम ॥ १२४ ॥

निजवामोरुनिषण्णां श्लिष्यन्तीं
वामहस्तधृतनलिनाम् ।
क्लिद्यद्योनिकमलां मदसदन-
व्याकुलैज्ज्वलाङ्गलताम् ॥ १२५ ॥

सुरुचिरमाल्यविभूषणानुलेपनां

सुसितवसनपरिवीताम् ।

निजमुखकमलव्यापृतचटुलासित-

नयनमधुकरां तरुणीम् ।। १२६ ।।

शिलष्यन्तं वामभुजादण्डेन

दृढं धृतेक्षुचापेन ।

तज्जनितपरमनिर्वृतिनिर्भर-

हृदयश्चराचरैकगुरुम् ।। १२७ ।।

सुरदितिजभुजगगुह्यकगन्धर्वा-

द्यङ्गजनसहस्रैः ।

मदमन्मथालसाङ्गैरभिवीतं

दिव्यभूषणोल्लसितैः ।। १५८ ।।

स्वात्माभिन्नतयेत्थं ध्यात्वैकाक्षर-

मथाष्टवर्णम्वा ।

जयेत्यादि। ततोऽर्घस्थापनं कृत्वा "त्रैलोक्यमोहनाय विद्महे स्मराय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्" इति विष्णुगायत्र्यात्मानं पूजोपकरणानि भूमिञ्चाभिषिञ्चेत्। तत आन्तरपूजाम्विधाय त्रैलोक्यमोहनायेत्याद्युक्तगायत्री जपं कृत्वा मूलमन्त्रं जप्त्वा जपोत्तरकृत्यं कुर्यादिति ॥ ततो बाह्यपूजा—

विलिप्यगन्धतोयेन लिखेदष्टदलाम्बुजम् ।

कर्णिकायान्तुषट्कोणं ससाध्यं तत्र मन्मथम् ।।

शिष्टैस्तं सप्तदशभिरक्षरैर्वेष्टयेत् स्मरम्

प्राग्रक्षोऽनिलकोणेषु श्रियं शिष्टेषु सन्विदम् ।। १२९ ।।

षडक्षरं सन्धिषुचकेसरेषु त्रिशस्त्रिशः ।

विलिखेत्स्मरगायत्रीं मालामन्त्रं दलाष्टके ।। १३० ।।

शिष्टैः उपयुक्तबीजत्रयातिरिक्त विंशत्यक्षरीयैः सम्वित् मायाबीजं क्लीं कृष्णाय नमः इति षडक्षरमन्त्रः। कामदेवाय विद्महे, पुष्पबाणाय धीमहि, तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात् इति स्मरगायत्री। नमः कामदेवाय सर्वजनप्रियाय सर्वजनस्य हृदयं ममवशं कुरु कुरु स्वाहा इति मालामन्त्रः। एवं लक्षणं यन्त्रं लिखित्वा तत्र गुर्वादिज्ञानात्मपर्य्यन्तं संपूज्य केसरेषु मध्ये च विमलोत्कर्षिणी ज्ञानाक्रियायोगाप्रह्वीसत्येशानानुग्रहाः पीठशक्तीः सम्पूज्य पक्षिराजाय स्वाहेतिमन्त्रेण गरुड़रूपमासनं सम्पूज्य तस्य स्कन्धे मूलेन मूर्त्ति परिकल्प्य कल्पद्रुमच्छायास्थितां मूलेन सम्पूज्य देवमावाह्य भूषणदानपर्य्यन्तं विधाय देवशरीरे यथास्थानं षडङ्गानि शिरसि ह्रां शोषणबाणाय नमः, मुखे ह्रीं मोहनबाणाय नमः, हृदि क्लीं दीपनबाणाय नमः, जानुनोः क्लूं सन्तापबाणाय नमः, पादयोःसः मादनबाणाय नमः इति बाणान् शिरसि किरीटं कर्णयोः कुण्डले हस्तेषुचक्रहस्ताङ्कुशपाशपुष्पशरेषु चापयुगदाः स्तनयोरुपरि श्रीवत्सकौस्तुभौ कण्ठे वनमालां नितम्बे पीतवस्त्रं वामाङ्के श्रीमितिबीजेन श्रियं सम्पूज्य गन्धाद्यप्रदीपान्तैरभ्यर्च्यावरणपूजां कुर्यात् यथा कर्णिकायामाग्नेयादिकोणेषु हृदयशिरः शिखाकवचानि अग्रे नेत्रं, दिक्ष्वस्त्रं, च सम्पूज्य पूर्वादिदिक्चतुष्टये ह्रीं शोषण, ह्रीं मोहन, क्लीं दीपन, क्लूं सन्तापनबाणान्अग्न्यादिकोणेषु सः मादनबाणञ्च, अग्न्यादिदलेषु लक्ष्मी सरस्वतीरति प्रीतिः, कीर्त्ति, कान्ति, तुष्टि, पुष्टीः, तद्बहिरिन्द्रादीन् पूजयेत्। जपादौ च प्रथमं विष्णुगायत्रीं जप्त्वा मन्त्रं जपेत्। त्रैलोक्य मोहनायविद्महे स्मराय धीमहि, तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् इति विष्णुगायत्री।

अथलक्ष्मम्यादिध्यानम्—

षट्कः संलिख्य तद्बाह्ये वेष्टयेन्मातृकाक्षरैः।
भूबिम्बञ्च लिखेद्बाह्ये श्रीमाये दिग्विदिक्ष्वपि॥ १३१॥
लक्ष्मीः सरस्वती सुवर्णाभे
अरुणतरे रतिप्रीत्यौ।
कीर्त्तिः कान्तिश्च सिते
तुष्टिःपुष्टिश्च मरकतप्रतिमे॥ १३२॥
दिव्याङ्गरागभूषामाल्यदुकूलै—
रलङ्कृताङ्गलताः।

स्मेराननाः स्मरार्चाः धृतचामर—

चारुकरतला एताः ॥ १३३ ॥

प्रजपेद्दिनकरलक्षं त्रिमधुरसिक्तै—

श्च किंशुकप्रसवैः ।

जुहुयादर्कसहस्रं विमलैः

सलिलैश्च तर्पयेच्चात्र ॥ १३४ ॥

अथ सत्यशौरीच तृतीयतुर्य्यकाः

शिखिवामनेत्रशशिखण्डमण्डिताः ।

जयकृष्णयुग्मकनिरन्तरात्मभू—

शिखिशक्तिहास्यतवृतसक्तवर्णकाः ॥ १३५ ॥

प्रणिमध्यतोमुदितचेतसेतत—

स्त्यपरक्तदृग्यगुरुमारुतोक्षराः ।

सचतुर्थिकृष्णपदमिक्षुकार्मुको

दशवर्णकश्चमनुवर्धकस्त्वसौ ॥ १३६ ॥

सलवाधराचलसुतारमाक्षरैः

पुरितः क्रमोत्क्रमगतैस्ससमुद्गवत् ।

इतिदन्तसूर्य्यवसुवर्ण उद्धृतः

कवितानुरंजनरमाकरोऽयहृत् ॥ १३७ ॥

सत्यशौरीदकारनकारौ। जयकृष्ण युग्युगेति जयकृष्णेतिपदद्वयस्य द्वयं जयकृष्ण जयकृष्ण इति रूपद्वयम्. परक्तदृगिति प्रि इतिरूपम्। य गुरु इति या इतिरूपम्। दन्तसूर्यवसुवर्णको द्विपञ्चाशदक्षरः, अत्रभूतशुद्धिपर्य्यन्तं विधाय केवलसविन्दुसविसर्गं से भयान् केशवकीर्त्यादिसहितान् श्रीवीजकेशवकीर्त्यादिसहितांश्च मातृकावर्णान्विन्यस्य तत्त्वन्यासं विदध्यात्। तत्र केशवकीर्त्यादिन्यासतत्त्वन्यासश्च विष्णुपूजापरिच्छेदोपक्रमे द्रष्टव्यः। ततः

शरीरे योगपीठन्यासः, ततः विमलोत्कर्षिणीज्ञानाक्रियायोगाप्रह्वीसत्येशानानुग्रहाः पीठशक्तयः। ओँ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मयोगपद्मपीठात्मने नम इति पीठमन्त्रः। ततः अमुकमन्त्रस्य अनन्दनारऋ षिरमृताविराट्छन्दस्त्रिजगन्मोहनः कृष्णो देवता पुरुषार्थचतुष्टये विनियोगः इति स्मृत्वा शिरोरसनानाहृदयेषु ऋषिच्छन्दोदेवता विन्यस्य दशाक्षरीयमृष्यादिन्यासं करयोः कुर्यात्। तद्यथा दक्षिणाङ्गुष्ठे ओँ गोँ ओँ नमः, तर्जन्यां ओँ पीं ओँ नमः, मध्यमायां ओँ जं ओँ नमः, अनामिकायां ओँ नं ओँ नमः, कनिष्ठायां ओँ वं ओँ नमः वामकनिष्ठायां ओँ ल्लं ओँ नमः, अनामिकायां ओँ भां ओँ नमः, मध्यमायां ओँ यं ओँ नमः, तर्जन्यां ओँ स्वां ओँ नमः अङ्गुष्ठे ओँ हां नमः इति न्यसेदिति सृष्टिः। दक्षिणाङ्गुष्ठाद्यङ्गुलिपञ्चके ओँ गोँ ओँ नमः इत्यादि पञ्चकं विन्यस्य वामाङ्गुष्ठाद्यङ्गुलिपञ्चके ओँ ल्लं ओँ नमः इत्यादिपञ्चकं न्यसेदितिस्थितिः। वामाङ्गुष्ठादिदक्षिणाङ्गुष्ठान्तं ओँ गां ओँ नम इत्यादि दशकं न्यसेदितिसंहारः॥ ततः करन्यासः, तत्र मन्त्राः, ऐँ ह्लो श्रीँ द्रोँ त्रीँ ज्रीँ झ्रोँ जयकृष्ण श्रीँ ह्लीँ ऐँ हृदयाय नमः, ऐँ ह्लो श्रीँ जयकृष्णनिरन्तरक्रीडासक्त ऐँ ह्लो श्रीँ शिरसे स्वाहा, ऐँ ह्लीँ श्रीँ प्रमुदितचेतसे श्रीँ ह्लीँ ऐँ शिखायै वषट्, ऐँ ह्लीँ श्रीँ नित्यप्रियाय कृष्णाय श्रीँ ह्लीँ ऐँ कवचाय हुँ, ऐँ ह्लीँ श्रीँ ह्लोँ ऐँ नेत्राभ्यां वौषट्, ऐँ ह्लोँ श्रीँ गोपीजनवल्लभाय स्वाहा, श्रीँ ह्लीँ ऐँ अस्त्राय फट् इति षडङ्गमन्त्राः। ततः अङ्गुष्ठयोः ह्लीँ शोषणशराय नम, तर्जन्योः ह्लीँ मोहनशराय नमः, मध्यमयोः क्लीँ दीपनशराय नमः, अनामिकयोः ब्लूँ सन्तापनशराय नमः, इति शरन्यासं कृत्वा, अङ्गुष्ठयोः कामदेवाय ननः, तर्जन्योः मन्मथाय नमः, मध्यमयाः कन्दर्पाय नमः अनामिकयोः मकरध्वजाय नमः, कनिष्ठयोः मनोभवाय नमः, इत्यनङ्गपञ्चकं न्यसेत्। ततो मूलेन व्यापकत्रयं कृत्वा रामबीजपुटितमातृकावर्णान् यथाक्रमं ललाटादिषु विन्यस्य दशाक्षरोक्तं दशतत्त्वन्याससामान्यविष्णुपञ्जरन्यासपर्य्यन्तं कुर्यात्, यथा पादयोः गोँ नमः पराय पृथिव्यात्मने नमः, हृदि जं नमः परायतेजआत्मने नमः, मुखे नं नमः परायवाय्वात्मने नमः, शिरसि वं नमः परायाकाशात्मने नमः, हृदि ल्लं नमः परायाहङ्कारात्मने नमः, भां नमः पराय महदात्मने नमः, सकलशरीरे यं नमः परायप्रकृत्यात्मने नमः, स्वां नमः पराय

पुरुषात्मने नमः, ह्रां नमः पराय परमात्मने नमः, इति न्यसेदिति संहारः। अथसृष्टिः॥ सकलत्रपुषि ह्रां नमः पराय परमात्मने नमः, स्वां नमः पराय पुरुषात्मने नमः, यं नमः परायप्रकृत्यात्मने नमः हृदि भां नमः पराय महदात्मने नमः, ल्लं नमः परायाहङ्कारात्मने नमः, शिरसि वं नमः परायाकाशात्मने नमः, मुखे नं नमः परायवाय्वात्मने नमः, हृदि जं नमः परायतेजआत्मने नमः, लिङ्गे पीं नमः परायावाय्वात्मने नमः, पादयोः गों नमः पराय पृथिव्यात्मने नमः, इति न्यसेत्। ततः आकेशादापादे ओंकारद्वयमध्यस्थं मूलमन्त्रं त्रिशो हस्ताभ्यां विन्यस्य शरीरे सृष्ट्यादिमार्गेण दशाक्षरवर्णान्विन्यसेत्। यथा शिरसि गो, नेत्रयोः पी, कर्णयोः ज, घ्राणे न, मुखे व, हृदि ल्ल, उदरे भा, लिङ्गे य, जानुनोः स्वाः, पादयोः हा, इति सृष्टिः। पादयोः गोः जानुनोः पी, लिङ्गे ज, उदरे न, हृदि व, मुखे ल्ल, घ्राणे भा, कर्णयोर्नेत्रयोः स्वा, शिरसि हा, इति संहारः, हृदि गो, उदरे पी, लिङ्गे ज, जानुनोः न, पादयोः व, शिरसि ल्ल, नेत्रयोः कर्णयोः, यः, घ्राणे स्वा, मुखे हा, इति स्थितिः। त्रिष्वपि प्रकारेषु शिरसि अक्ष्णोः मध्यमातर्जनीभ्याम्। कर्णयोः अङ्गुष्ठाभिः, घ्राणे अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां, मुखे सर्वाभिः। हृदि अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां, नाभौ लिङ्गे च अङ्गुष्ठमध्यमाभ्यां, जानुनोरङ्ष्ठेतराभिः। पादयोः पञ्चभिरङ्गुलोभिर्न्यासो विधेयः। न्यासश्चायं गृहस्थस्य सृष्टिस्थितिसहारक्रमेण। अथ विभूतिपञ्जरन्यासः॥ आधारे गो, लिङ्गे पी, नाभौ ज, हृदि न, गले व, मुखे ल्ल, अंसयोः भाय ऊर्वोः स्वाहा ॥ १॥ कन्धरानादयोः गोपी, कुक्षौ ज, हृदि न, स्तनयोः वल्ल, पार्श्वयो भाय, श्रोण्योः स्वाहा॥ २॥ शिरसि गो, मुखे पी, नेत्रयोः कर्णयोः वल्ल, नासापुटयोः भा यः कपोलयोः स्वाहा॥ ३॥ दक्षिणवाहोः सन्ध्यग्रेषु ज न व, वामबाहोः सन्ध्ग्रेषु ल्लभाय स्वाहा॥ ४॥ दक्षिणपादस्य सन्ध्यग्रेषु गो पी ज न व, वामपादसन्ध्यग्रेषु ल्लभाय स्वाहा॥ ५॥ दक्षिणकराङ्गुष्ठाद्यङ्गुलोपञ्चके गो पी ज न व, वामकरस्य कनिष्ठाद्यङ्गुलीषु ल्लभाय स्वाहा, ॥ ६॥ दक्षिणपादकनिष्ठादिषु गो पी ज न व, वामपादाङ्गुष्ठादिषु ल्लभाय स्वाहा ॥ ७॥ शिरसि गो, शिरसः पूर्वादिदिक्चतुष्टये पी ज न व, ससकवपुषि ल्ल, भुजयोः भा य, ऊरुद्वये स्वाहा ॥ ८॥ शिरसि गो, नेत्रयोः पी, मुखे ज, कण्ठे न, हृदि व, तुन्दे ल्ल, मूलाधारे भा, लिङ्गे य, जानुनोः स्वा, पादाग्रयोः हा, ॥ ९॥ श्रोत्रयोः गो, गण्डयोः पी,

अंसयोः ज, स्तनयोः न, पार्श्वयोः व, कक्ष्योः ल्लं, ऊर्वोः भा, जान्वोः य, जंघयोः स्वाहा, पादयोः हा ॥ १० ॥ इति दशाङ्गुल्या दशाङ्गान्यसेत् ॥ ततो मूर्त्तिपञ्जरन्यासः ॥ ललाटे ओं अं केशवकान्तिभ्यान्नमः, उदरे न आं नारायणार्यमभ्यान्नमः, हृदि मो इं माधवमित्राभ्यान्नमः, गलकूपके भ ईं गोविन्दवरुणाभ्यान्नमः, दक्षिणपार्श्वे ग उं विष्णुअंशुभ्यान्नमः, दक्षिणांसे व ऊं मधुसूदनभगाभ्यान्नमः, गलदक्षिणभागे त्रं त्रि विक्रमविवस्वद्भ्यान्नमः, वामपार्श्वे वा, एं वामनेत्राभ्यान्नमः, वामांसे ओं श्रीधरपूषभ्यान्नमः, गलवामभागे दे औं हृषीकेशपर्जन्याभ्यान्नमः, इति विन्यस्य शिरसि द्वादशाक्षरं वासुदेवमन्त्रं न्यसेत् । ततः पूर्ववत् शरीरे सृष्टिस्थितिन्यासः । ततो दशाङ्गन्यासः । तत्र मन्त्राः गों हृदयाय नमः, पीं शिरसे स्वाहा, जं शिखायै नमः, न कवचाय नमः, वं अस्त्राय नमः, ल्लं दक्षिणपार्श्वाय नमः, भां वामपार्श्वाय नमः, यं कट्यै नमः, स्वा गुह्याय नमः, हां मूर्ध्ने नमः इति ॥ केषाञ्चिन्मते गों नमः, पीं नमः, इत्यादय एव मन्त्राः । ततः षडङ्गानि पूर्ववत् पञ्चत्राणांश्च विन्यस्य शिरोरसनाहृत्सु ऋषि-छन्दोदेवतानि च विन्यस्य विल्वादिमुद्राः प्रदर्श्य ओं नमः सुदर्शनास्त्राय फट् इति मन्त्रेणास्त्रमुद्रया दिग्बन्धनं कुर्यात् । ततो ध्यानम्—

अथ भूधरोदधिपरिष्कृते महो—
न्नतशालगोपुरविशालवीथिके ।
घनचुम्ब्युदग्रसितसौधसङ्कुले
मणिहर्म्यविस्तृतकपाटवेदिके ॥ १३८ ॥

द्विजभूपविट्चरणजन्मनां गृहै—
र्विविधैश्च शिल्पिजनवेश्मभिस्तथा ।
इखसप्युरभ्रमर धेनुशैरिभ—
च्छगलालयैश्च लसितैः सहस्रशः ॥ १३९ ॥

विविधापणाश्रितमहाजनाहृत—
क्रयविक्रयद्रविणसञ्चयाञ्चिते ।

जनमानसाहृतिविदग्धसुन्दरी-
जनमन्दिरैः सुरुचिरैश्चमण्डिते ॥ १४० ॥

पृथुदीर्घिकाविमलपाथसिस्फुरद्
विकचारविन्दमकरन्दलम्पटैः ।
वरहंससारसरथाङ्गनामभि-
र्विहगैर्विघुष्टककुभिःस्वके पुरे ॥ १४१ ॥

सुरपादपैः सुरभिपुष्पलोलुप-
भ्रमराकुलैर्विविधकामदैर्नृणाम् ।
शिवमन्दमारुतचलच्छिखैर्वृते
मणिमण्डपेरविसहस्रसप्रभे ॥ १४२ ॥

मणिदीपिकानिकरदीपितान्तरे-
तनुचित्रविस्तृतवितानशालिनि ।
ललिते विकस्वरविचित्रदामभिः-
सुसुगन्धिगन्धसलिलोक्षितस्थले ॥ १४३ ॥

प्रमदाशतैर्मदविघूर्णितेक्षणै-
र्मदजालसैः करविलोलचामरैः ।
अभिसेविते स्खलितमञ्जुभाषिभिः
स्तनभारभङ्गुरकृशावलग्नकैः ॥ १४४ ॥

अविरामधारमणिवर्य्यवर्षितै-
श्रमहानिदामृतरसच्युतोऽप्यधः ।
सुरपादपस्यमणिभूतलोल्लसत्-
पृथुसिंहवक्त्रचरणाम्बुजासने ॥ १४५ ॥

अभिचिन्तयेत्सुखनिविष्टमच्युतं
नवनीलनीररुहकोमलच्छविम् ।
कुटिलाग्रकुन्तललसत्किरीटकं
सितपुष्परत्नरचितावतंसकम् ॥ १४६ ॥

सुललाटमुन्नतसमुदञ्चितभ्रुवं
विपुलारुणायतविलोललोचनम् ।
मणिकुण्डलाप्तपरिदीप्तगण्डकं-
नवबन्धुजीवकुसुमारुणाधरम् ॥ १४७ ॥

स्मितचन्द्रिकोज्ज्वलितदिङ्मुखं स्फुरद्
पुलकश्रमाम्बुकणमण्डिताननम् ॥ १४८ ॥

स्फुरदंशुरत्नगणदीप्तभूषणोत्तम-
हारदाममिरुपस्कृतांसकम् ।
घनसारकुङ्कुमविलिप्तविग्रहं-
तरुणाब्जचारुचरणाब्जमङ्गजोन्मथिताङ्कराम्बुजद्वयम् ।
पृथुदीर्घपङ्क्तद्वयभुजाविराजितम् ॥ १४९ ॥

स्वाङ्कस्थभीष्मकसुतोरुयुगान्तरस्थं-
सन्तप्तहेमरुचिरासुरमात्मजायाम् ।
श्लिष्यन्तआद्रजघनामुपगूहमाना-
मात्मानमायतलसत्करपल्लवाभ्याम् ॥ १५० ॥

आनन्दोद्रेकनिघ्नां मुकुलितनयने-
न्दीवरां स्रस्तगात्रीम्;
प्रोद्यद्रोमाञ्चसान्द्रश्रमजल कणिका-
मौक्तिकालंकृताङ्गीम् ।
आत्मन्यालीनबाह्यान्तरकरणगणा-
मङ्गकैर्निस्तरङ्गै --
र्मज्जन्ती स्वीन नानामतिमतुलमहा-
नन्दसन्दोहसिन्धौ ॥ १५१ ॥

सत्याजाम्ववतीभ्यां दिव्यदुकुला-
नुलेपनाभरणाभ्याम् ।
मन्मथशरमथिताभ्यां मुखकमला-
लोललोचनभ्रमाभ्याम् ॥ १५२
भुजयुगलाश्लिष्टाभ्यांश्यामारुणललित-
कोमलाङ्गलताभ्याम् ।
आश्लिष्टमात्मदद्दणिवामगताभ्यां -
करोल्लसत्कमलाभ्याम् ॥ १५३ ॥
पृष्ठज्ञया कलिन्दसुतया करकमलजा-
संपरिरब्धमज्जनरुचा मदनमथितया ।
पद्मगदारथाङ्गदरभृद्भुजगयुगलं-
दोर्द्वयसंसक्तवंशविलसन्मुखसरसिरुहम् १५४ ॥
दिक्षु बहिः सुरर्षिपतिभिः खेचरपरिदृढै-
र्भक्तिभरावनम्रतनुभिः स्तुतिमुखरमुखैः ।
सन्ततसेव्यमान मम····चनविषयकमर्थ-
चतुष्टयप्रदममुन्त्रिभुवनजनकम् ॥ १५५ ॥
सान्द्रानन्दमहाब्धिमग्नममले-
धाम्नि स्वकेऽवस्थितम् ।
ध्यात्वैवं परमं पुमांसमनघात्
संप्राप्य दीक्षां गुरोः ॥ इति ॥ १५६ ॥

ततोऽर्धस्थापनं विधाय आन्तरपूजां कुर्यात् । यथा मूर्ध्नि गुरुमित्यारभ्य तेजस्त्रयं वीजेनैकीकृत्यान्तं विधाय देवशरीरे विभूतिसृष्टिस्थितिदशाङ्गषडङ्ग शरान् विन्यस्या... ... .. न्तैरभ्यर्च्य देवशरीरे यथान्यासं विभूतिसृष्टिस्थिति दशाङ्गषडङ्ग शरान् संपूज्य गन्धपुष्पाभ्यामभ्यर्च्य तुलस्यादिभिः पुष्पाञ्जलिपञ्चकं पादादिषु दत्वा धूपदीपौ समर्प्य सुधारसैः सन्तर्प्य मुखवासादिकं दत्वा पुनर्गन्धादिभिरभ्यर्च्य ......वाद्यादिभिः सन्तोष्य चूलूकं लेन ब्रह्मार्पणमन्त्रेण ब्रह्मार्पणं

कुर्यात् । ततः प्राणायामत्रयं कृत्वा सुप्रसन्नं देवं विचिन्तयन् जपं कृत्वा शेषं समापयेत् इति ।

अथ बाह्यपूजा—अष्टदलपद्मस्य कार्णिकायां षट्कोणं तन्मध्ये ससाध्यं कामबीजं, कामबीजस्य पश्चिमपूर्वदक्षिणोत्तरेषु क्रमेण ह्रीं त्रीं श्रीं ग्लौं बीजानि विलिख्य जयकृष्णेत्यादि स्वाहेत्यन्तैर्द्विचत्वारिंशदक्षरैस्तद्बीजचतुष्कं स ...... षट्कोणस्येशानपूर्वाग्नेयकोणेषु तथानैऋर्त वारुणवायव्यकोणेषु यथाक्रमं वाग्बीज भुवनेश्वरी श्रीबीजानि विलिख्य षट्कोणसन्धिषु षडक्षरमन्त्राक्षराणि केसरेषु त्रीणि त्रीणि स्मरगायत्र्यक्षराणि दलेषु षट् षट्मालामन्त्रान् विलख्य मातृकाक्षरैः पद्मं वेष्टयित्वा तद्बहिर्भूगृहं विलिख्य तस्य दिक्षु श्रीबीजं विदिक्षु मायाबीजं विलिखेत् क्लीं कृष्णाय नमः इति षडक्षरमन्त्रः। कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात् इति स्मरगायत्री । नमः कामदेवाय सर्वजनप्रियाय सर्वजन-सम्मोहनाय ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल ... ...हृदयं मम वशं कुरु कुरु स्वाहा इति मालामन्त्रः । अष्टवज्रसमन्वितं चतुरस्त्रं भूगृहं, एवं यन्त्रं विलिख्य गुर्वादिसात्मपर्य्यन्तं संपूज्य केसरेष मध्ये च विमलोत्कर्षिणीज्ञानाक्रियायोगा प्रह्वी सत्येशानानुग्रहाः पीठशक्तयः सम्पूज्याः। ओं नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगयोगपद्मपीठात्मने इति पीठमन्त्रेण पीठं सम्पूज्य मन्त्रमध्यबीजे मूलेन मूर्त्तिं परिकलय मूलंमुच्चार्यामुक मूर्त्तये नम इति कल्पतरुच्छायायां मूर्त्तिं सम्पूज्य आवाहनादिकं विधाय मातृकावर्णानां तत्वमन्त्राणाञ्च न्यासेन सकलीकृत्य विभूषणदानान्तं विधाय मन्त्रपुटितमातृ-कार्णे देवं गन्धादिभिः सम्पूज्य देवशरीरे विभूतिसृष्टिस्थिति दशाङ्गषडङ्ग शरासनं संपूज्य मूलेन गन्धपुष्पाञ्जलिभिः संपूज्य तुलस्यादिपुष्पाञ्जलिपञ्चक पादादिषु दत्वा आवरणपूजां कुर्यात् । यथा देवस्याग्रदक्षिणवामपृष्ठस्थबीजेषु यथाक्रमं रुक्मिणी सत्याजाम्बवती कालिन्द्यः, षट्कोणेषु यथाक्रमं षडङ्गानि पूर्वादिदिक्केसरेषु ह्रां शोषणशराय नमः, एवं ह्रीं मोहन, क्लीं दीपन, क्लूं सन्तापनशरसान् . कोणकेसरेषु मादनशराय नमः इति सम्पूज्य अग्न्यादि-दलमध्येषू लक्ष्मी सरस्वती रतिप्रीति कीर्तिकान्तितुष्टिपुष्टीः, तद्बहिर्देवस्याग्रे ध्वजं पृष्ठे गरुड़ं, पाश्वयोः शंखपद्मनिधी, देवस्याग्नेयकोणचतुष्टये हेरम्बमातृदुर्गा विष्वक्सेनान्, तद्बहिरिन्द्रादीन्, तद्बहिर्वज्रादींश्च पूजयेदिति। ततः शेषं समापयेत् ।

अथध्वजादिध्यानम् ॥ ध्वजः श्यामः गरुडो अरुणः, निधी श्वेतरक्तवर्णौ सन्ततधारभिः पृष्ठधनपुञ्जौ हेरम्बमातृदुर्गाविष्वक्सेनाधिक्रमभरकतदूर्वा स्वर्णाभाः। लक्ष्मीः सरस्वती च स्वर्णाभे अरुणतरे रतिप्रीत्यौ ॥ कीर्त्तिः कान्तिश्च सिते, तुष्टिः पुष्टिश्च मरकतप्रतिभे। दिव्याङ्गरागभूषणमाल्यदुकूलैरलङ्कृताङ्गलताः। स्मेराननाः स्मरार्त्ताः धृतचामरचारुकरतला एताः।

लब्ध्वाऽमुं मनुमादरेण सितधी–
र्लक्षंजपेद् योषितां–
वार्त्ता कर्ण न दर्शनादिरहितो
मन्त्री गुरूणामपि।
जुहुयाच्च दशांशतो हुताशे
समिधा क्षौद्रघृतेन पायसेन ॥ १५७ ॥
श्रीमद्भवानन्दनिकटवर्त्ती
गोविन्द शर्मा गुरुभाजभव्यः।
उषासकानामुपकारहेतोः
पूजाप्रदीपं कृतवान् विमृष्य ॥ १५८ ॥

इति श्रीभवानन्दरायकारितः महामहोपाध्याय श्रीमद् गोविन्दकृतः पूजाप्रदीपः समाप्त इति ॥

लं० सं० ४३२ फाल्गुनवदि पञ्चम्यां शुक्रे दिने रोहनिग्रामे महामहोपाध्याय श्रीठक्कुर श्रीमधुसूदनस्याज्ञया श्री जनार्दनेन लिखितैषा पुस्तीति ॥ शुभमस्तु ॥

सीतालतावसन्तं कौशल्या—
जलधिवीचिविधुविम्बम्।
दशरथपथिकमरुस्थल
तरुमौलिराममभिरामम् ॥ १५९ ॥

॥ ॐ ॥